समस्याएं अनेक : समाधान एक



मुनि ज्ञान

प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर (राज.) 334005

- समस्याएं अनेक : समाधान एक
- मुनि ज्ञान
- प्रथम संस्करण : जुलाई 2000, 2100 प्रतियां
- मूल्य : 25/-
  रियायती मूल्य (अर्थ सहयोग पश्चात) : 13/-
- अर्थ सहयोगी : श्रीमान सुजानमल वोरा, इन्दौर
- प्रकाशक :
  श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
  समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर-३३४००५
- मुद्रक :
  अमित कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स
  बीकानेर दूरभाष : 547073

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक **"समस्याएं अनेक : समाधान एक"** ओजस्वी वक्ता, स्थविर प्रमुख, विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनिजी द्वारा उपदेशित प्रवचनों का संकलन है। विद्वद्वर्य स्थविर प्रमुख श्री ज्ञान मुनि जी म.सा. जब किसी विषय पर प्रवचन फरमाते हैं तो ऐसा लगता है कि उक्त विषय की सर्वांगीण व्याख्याएं उनके मुखारविन्द से स्वत: प्रवाहित हो रही है। जीवन में जैन दर्शन किस प्रकार ओत प्रोत है, आज के वैज्ञानिक युग में विज्ञान की जो खोज समक्ष आ रही है उससे वीतराग प्रभु श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी के ज्ञान द्वारा जो भाषित किया गया वह पुष्ट हो रहा है। प्रभु द्वारा भाषित वाणी शाश्वत सत्य है।

सद्साहित्य समाज का दर्पण है। प्रस्तुत पुस्तक सद् साहित्य के खजाने में अनमोल खजाना है। प्रवाह भी ऐसा प्रभावी है कि पढ़ना प्रारंभ करने पर सम्पूर्ण किये बिना सन्तुष्टि नहीं होती।

परम पूज्य आचार्य श्री १००८ श्री नानालालजी म.सा., शास्त्रज्ञ तरुण तपस्वी युवाचार्य पूज्य श्री रामलालजी म.सा. (सम्प्रति आचार्य श्री) द्वारा जो जिनशासन प्रभावना हो रही है वह अद्वितीय है। श्रद्धेय स्थविर प्रमुख श्री ज्ञानमुनि जी द्वारा अपने प्रवचनों द्वारा जो धर्म प्रभावना हो रही है वह अत्यन्त प्रभावशाली है। प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री इसका ज्वलंत प्रमाण है। आशा है सुधी पाठक पुस्तक से प्रेरणा प्राप्त करेंगे। वास्तव में कृति का आंकलन सुधी पाठक वर्ग ही है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अर्थ सहयोगी इन्दौर के श्री सुजानमलजी वोरा हैं। आपके उदारतापूर्वक अर्थ सहयोग से श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ की साहित्य समिति द्वारा यह कृति आपको प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता है। यह पुस्तक आपके विचारों को उद्वेलित कर सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र की ओर प्रेरित करेगी। ऐसा विश्वास है।

निवेदक

शान्तिलाल सांड — अध्यक्ष
सागरमल चपलोत — महामंत्री
गुमानमल चोरड़िया — संयोजक

भंवरलाल कोठारी केशरीचन्द सेठिया मोहनलाल मूथा
धनराज बेताला डा. संजीव भानावत
(सदस्यगण, साहित्य समिति, श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ)

अर्थ सहयोगी परिचय

निरभिमानी व्यक्तित्व के धनी, उदारता, कर्मठ उद्योगपति श्री सुजानमलजी वोरा, इन्दौर के उद्योग जगत में एक कर्मयोगी यशस्वी पुरुष के रूप में विख्यात हैं।

इन्दौर शहर को गौरवान्वित करने वाले श्री वोराजी ने कुशल प्रवन्धन क्षमता को विकसित करके अपने पुरुषार्थ से वोरा-वायर्स, डी.एन.एच. इलेक्ट्रोडस एवं इंटरनेशनल फाउण्ड्री, जैसे वृहद् उद्योगों की स्थापना करके कीर्तिमान स्थापित किया है। श्री वोराजी में औद्योगिक बारीकियों की समझ के साथ व्यावसायिक चातुर्य की भी अद्भुत कुशलता है। बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व के धनी श्री वोराजी में बुद्धि एवं प्रतिभा का ऐसा अपूर्व संगम है कि वे किसी भी क्षेत्र की विभिन्न कार्यवाही एवं व्यवस्था को एकदम समझ लेते हैं और उसे अपनी अनूठी सूझबूझ एवं जवाबदारी से विस्फूर्त करके आपत्तियों का निवारण बड़ी खूबी से करने की क्षमता रखते हैं।

इन सभी विशेषताओं की वजह से उन्होंने उद्योग जगत के विभिन्न क्षेत्रों में काफी लोकप्रियता अर्जित की हैं एवं इसके साथ ही उपराष्ट्रपतिजी से राष्ट्रीय अवार्ड भी प्राप्त किया है।

दृढ़ प्रतिज्ञ, उदार हाथ, मृदुभाषी और अटल निश्चय के धनी श्री वोराजी ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उदारता एवं कर्त्तव्य परायणता का परिचय दिया है। वे सदा से ही सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय आदि क्रियाकलापों को प्राणवान बनाने में तन, मन, धन से योगदान करने में कृत संकल्पित रहते हैं।

सदा ही कर्त्तव्य में रत रहने वाले एवं परोपकारी स्वभाव का आदर्श उपस्थित करने वाले ऐसे समर्पित व्यक्तित्व श्री वोराजी ने न केवल अपने जाति, वंश, परिवार को ही उज्ज्वल बनाया है वरन् धर्म, समाज एवं संघ के उन्नयन एवं विकास में भी अभूतपूर्व योगदान प्रदान करके सामाजिक दायित्व बोध का अद्भुत परिचय भी दिया है।

परम पूज्य स्व. आचार्य श्री नानेश एवं वर्तमान शासनेश परम पूज्य श्री रामेश के शासन के प्रति उनमें अटूट श्रद्धा-निष्ठा, समर्पणा एवं भक्ति भावना रग-रग में भरी हैं। श्री साधुमार्गी जैन समता संघ, इन्दौर को अविस्मरणीय उपलब्धि प्राप्त कराने में श्रीमान वोरा साहब एवं उनके परिवार का अभूतपूर्व योगदान रहा है। उनका अध्यक्षीय काल श्री संघ के लिए वरदान रहा है। सन् १९८७ के परम पूज्य आचार्य श्री नानेश के वर्षावास एवं शेखेकाल में विराजने पर

वोरा साहब एवं उनके परिवार ने जो सेवाएं प्रदान की हैं उसे इन्दौर श्री संघ कभी भुला नही सकता। इसके पश्चात् भी इन्होंने समय समय पर धर्मशासन में समर्पण देकर अपनी अद्भुत धर्मनिष्ठा का परिचय दिया है। श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की मालव क्षेत्रीय समिति के अध्यक्ष पद पर रहकर उन्होंने जो सेवाएं दी हैं वे बड़ी महत्वपूर्ण एवं अविस्मरणीय रही हैं।

इन्दौर श्री संघ के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि तो उनके द्वारा **"समता फाउण्डेशन"** के लिए विशाल भूखंड उपलब्ध कराकर भव्य एवं ऐतिहासिक भवन का निर्माण कराना रही है, जिससे नगर गौरवान्वित हुआ है, इसमें उन्होंने उदारतापूर्वक मुक्तहस्त से दान देकर अपनी अपूर्व धार्मिक निष्ठा का परिचय दिया है। ऐसी त्याग भावना रखने वाले दानी, परोपकारी, समाजसेवी के प्रति संघ कृतज्ञ हैं। श्री सुजानमलजी वोरा की धर्मपत्नी **सुश्राविका श्रीमती कांता वोरा** श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी महिला समिति की राष्ट्रीय अध्यक्षा वर्तमान हैं।

-गजेन्द्र सूर्या, इन्दौर

अनुक्रमणिका

समर्पण

अनासक्त भाव से करे साधना
जीवन अपना नूर करे।
विषम भाव से ऊपर उठकर
समता रस भरपूर भरे॥
देहागार में विदेह भाव से
निजत्व का विकास करे
तिमराच्छादित इस दुनियां में
लोकोत्तर प्रकाश करे।
नानेश गुरु के कर कमलों में
सतत समर्पित करते हैं।
निज पर के हित साधन में,
निरत नित्य जो रहते हैं॥

उदयपुर, पौषधशाला
दिनांक 26.8.99

–मुनि ज्ञान

समस्याएं अनेक : समाधान एक

इस आधुनिक दुनिया में आदमी भौतिक सुख सुविधाओं के बीच जी अवश्य रहा है, पर जिन्दगी का सच्चा आनन्द उसे प्राप्त नहीं हो रहा है, हर आदमी किसी न किसी समस्या को लेकर परेशान सा नजर आता है। अपनी समस्या का समाधान करने के लिए दिन–रात प्रयत्न के बावजूद भी वह उनका स्थायी समाधान नहीं खोज पा रहा है। इन सबको देखते हुए ऐसा लगता है कि उसकी खोज सही दिशा में नहीं हो रही है। जिन्दगी के शाश्वत सत्य की खोज करने के लिए हमें उन व्यक्तियों की जिन्दगी में झांकने का प्रयास करना होगा जिन्होंने समस्याओं का सही समाधान खोजने के लिए अपने कदम आगे बढाए हैं। भगवान महावीर ने अपने लोकोत्तर ज्ञान में दुनियाँ की समस्या का समाधान कर उसे सुखी बनाने के लिए अति संक्षिप्त में सन्देश दिया है कि–

अप्पा कत्ता वि कत्ता य दुहाणाय सुहाणाय।
अप्पा मित्तममितं च दुप्पट्ठिओ सुप्पट्ठिओ।।

आत्मा ही अपने सुख दुःख का कर्त्ता है। भोक्ता है। दुष्कृतों में निरन्तर आत्मा ही अपने लिए शत्रु का और सुकृत्यों में निरत आत्मा ही अपने लिए मित्र का काम करती है।

इन्सान को सुखी बनने के लिए अपने मानसिक तंत्र को स्वस्थ बनाना सर्वाधिक जरूरी है। दुनिया में फूल भी है तो काँटे भी। जहर भी है तो अमृत भी। खुशबू भी है तो दुर्गन्ध भी। याने कि दुनियाँ की हर क्षेत्र के साथ अनुकूल–प्रतिकूल दोनों ही अवस्थाएं जुड़ी हैं। हर इन्सान में सद्गुण भी हैं दुर्गुण भी। ऐसी स्थिति में इन्सान को चाहिए कि किसी भी कार्य को करने से पहले सभी प्रकार से उसकी समीक्षा करके दृढ़ संकल्प के साथ निर्णय करता हुआ अपना कदम आगे बढाएं। उसके बाद कैसा भी परिणाम आए उसकी यह अवधारणा होनी चाहिए कि जो भी हो रहा है वह भी अच्छे के लिए है क्योंकि कई बार प्रतिकूल परिणाम भी एक समय बाद अनुकूल हो जाते हैं और अनुकूल परिणाम भी प्रतिकूल हो जाते हैं।

दुनिया का हर आकार प्रकार परिवर्तनशील है। ऐसी स्थिति में अगर हमें शान्ति से जीना है तो कांटों की तरफ से ध्यान हटाकर फूल की सुगंध की ओर ही ध्यान देना होगा।

सुकरात के जीवन की एक घटना आती है कि वे जितने शान्त और चिन्तनशील दार्शनिक थे। उनकी पत्नी ठीक उससे विपरीत क्रोधी स्वभाव की कर्कशानार थी। फिर भी सुकरात सुखी थे। एक बार जब किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों से बात कर रहे थे उस बीच उनकी पत्नी आयी और आदेशात्मक लहजे में बोली कि भोजन बन चुका है। उसे खा लो। ऐसी असम्मान पूर्ण भाषा सुनकर आगन्तुक जरूर विचार में पड़ गए। पर सुकरात ने सहज भाव से उत्तर दिया कि कुछ ही समय में आ रहा हूँ। लेकिन चंद मिनट बाद भी जब वे न आए तो उसे इतना गुस्सा आया कि अनर्गल बकवास करती हुई उसने घर के आंगन की सफाई का मलिन पानी बाहर न फेंककर सुकरात के सिर पर डाल दिया। तब भी सुकरात ने उसी शांत स्वभाव में मुस्कराते हुए जवाब दिया कि वो बादल किस काम के जो गर्जते तो हैं पर बरसते नहीं। पर मेरी पत्नी तो गर्जती भी है और बरसती भी है। यह सुनकर सभी हंस पड़े। विरोध को विनोद में बदलना सीखें। जिन्दगी प्रसन्नता से भर जाएगी।

हर आदमी में गुण भी होते हैं और दुर्गुण भी। हम उनके गुणों को देखने का प्रयास करें। गुणों को देखकर हम भी गुणी बन जाएंगे। दुर्गुणों को देखकर दुर्गुणी। कर्मयोगी श्री कृष्ण का हमेशा स्वभाव रहा है कि वे दुर्गुणी से दुर्गुणी आदमी में भी गुण देखा करते थे। एक बार रास्ते में उन्हें मरी हुई दुर्गन्धि पूर्ण कुतिया नजर आयी। सभी साथी नाक भौं सिकोड़ रहे थे। तब कृष्ण कुतिया की दंत पक्ति देखकर बोले कि देखो इसके दाँत पक्तिबद्ध और कितने सुन्दर हैं।

इन्सान को चाहिए कि वह अपनी निन्दा के समय क्रुद्ध और प्रशंसा के समय अहंकार न करे। मन का तराजू समतोल रखा जाए। तभी जिन्दगी का सही रस आ सकेगा। जब भी मन की सुइयां इधर उधर झुलने लगती है तव इन्सान की सोच कुण्ठित हो जाती है। समतोल रहने पर सही सोच पैदा हो सकती है। इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री मैकमिलन के जीवन की घटना है। जव वे अफ्रीका के दौरे पर चल रहे थे। तब वहाँ के निवासियों ने रंग भेद की नीति पर खुला प्रदर्शन किया। काले झण्डे दिखाए गए और तख्तियों पर विरोध परख निन्दा लिखी गई। फिर भी मैकमिलन दुःखी नहीं हुए और न गुस्से में

आए। बल्कि शांत भाव से देखते रहे। एक दो व्यक्तियों की तख्ति उलटी थी। तब वे बोले भाईयों कम से कम उन तख्तियों को सीधी कर दो ताकि मैं पढ़ सकूं कि मेरे लिए क्या लिखा है ? मैकमिलन की यह धैर्यता और शांति देखकर विरोधी भी बदल गए और उनके प्रशंसक बन गए। यदि उस समय मैकमिलन क्रोध में आ जाते तो उनका विरोध और भी तीव्र बढ़ जाता। वे भी अशांत हो जाते। निन्दा की तरह प्रशंसा में भी इन्सान को समभाव रखना जरूरी है। तभी विकास हो सकेगा। इटली के फलोरेन्स नामक नगर में एक शिल्पकार था, दोनो तोला। वह इतनी सुन्दर कलाकृतियां बनाता था कि वे देखते ही बनती थी। उसकी कलाकृतियों से प्रभावित होकर फ्रांस के पीसा नगर की ओर से उसे आमंत्रित किया गया। कलाकार वहाँ पहुँचा उसकी वहाँ काफी प्रशंसा हुई। लेकिन वह जल्दी ही इटली चला आया। तब उसके दोस्तों ने उसे कहा कि वहाँ के प्रशंसकों को छोड़ यहाँ क्यों आया। यहाँ तुम्हारी कला के कट्टर आलोचक भी हैं। तब वह बोला कि इसीलिए मैं यहाँ आया हूं क्योंकि आलोचक ही मुझे अपनी कमियां बता सकते हैं। जिससे मेरी कला में निरन्तर निखार आता रहता है। फ्रांस में तो मेरे विकास का रास्ता ही बन्द है। क्योंकि वहाँ सब मेरे प्रशंसक ही हैं, वे मुझे नया रास्ता नहीं बता सकते हैं। दोनो तोलो के इस संदेश ने दुनियां को एक नवीन प्रेरणा दी है।

किसी भी उपलब्धि या प्रशंसा पर अहंकार आदमी के विकास में बाधक बन जाता है। लाभ–अलाभ किसी भी परिस्थिति में इन्सान को अपने मन का सन्तुलन नहीं खोना चाहिए। भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति घनश्यामदास बिड़ला से एक बार एक व्यक्ति ने उनकी सफलता का रहस्य पूछा तो वे बोले मेरी सफलता का मूल रहस्य है, गलत निर्णय। मैंने अपनी जिन्दगी में कई गलत निर्णय लिए जिससे मुझे कई समस्याओं का सामना करना पड़ा लेकिन उन परिणामों ने मुझे बहुत गहरे अनुभव दे दिए। परिणामस्वरूप अब जो निर्णय लेता हूँ वह अधिकांश सही पड़ता है।

आज का आदमी दुःखी इसलिए भी अधिक हो रहा है कि जो भी उसके पास है, उसे न देखकर जो नहीं है उसके लिए परेशान है। वह आदमी कभी सुखी नहीं हो सकता। क्योंकि है वह तो कुछ ही है, और नहीं में अनन्त है। जिन्हें कभी पूरा नहीं किया जा सकता। जो आज सुखी नहीं है, वह कल भी सुखी नहीं बन सकता। इन्सान को चाहिए कि वर्तमान में जैसी भी परिस्थितियाँ हो, उसे हर हाल में सुखी रहना होगा। पानी का गिलास

आधा भरा हुआ है। आधा खाली है। हमें जितना भरा है वह देखना है, खाली नहीं। जिन्दगी में खुशियाँ भी है और गम भी। हम खुशियों में गम की उपेक्षा कर दें। सब सही हो जाएगा। शांति से जीने के लिए एक सन्यासी ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही है— वह बोला कि ऊपर देखता हूँ तो लगता है कि ऊपर जाना है तब झगड़ा क्यों करूं और जब नीचे देखता हूँ तब लगता है सोने बैठने के लिए थोड़ा सा स्थान चाहिए तब क्यों परिग्रही बनूं। आसपास देखता हूँ तो मेरे से भी लोग अधिक दुःखी हैं तब मैं क्यों दुःखी बनूं। यह सोच इन्सान को बहुत हद तक शान्ति दे सकती है। दुनिया का हर पदार्थ हमारी खुशी के लिए बेताब है। लेकिन हमें अपनी दृष्टि विपर्यास को चेन्ज (Change) करना होगा। जब भी जहाँ भी रहे नेगेटिव (Nagative) , निषेधपरक सोच से हटकर पाजिटिव (Positive) विधेयात्मक सोच बनाएं। एक बात और देखी जाती है आदमी अपने दुःख से जितना परेशान नहीं है, उतना वह दूसरे के सुख से परेशान है। चाहे वह गृहस्थ हो या महात्मा। ईर्ष्या ने उसकी शान्ति भंग कर रखी है। मेरी दुकान पर ग्राहक आए या न आए इसकी चिन्ता नहीं है पर पड़ौसी की दुकान पर ग्राहक आते देख वह दुःखी हो उठता है। यही हाल हर क्षेत्र में जीने वाले अधिकांश मनुष्यों का है। जिसके कारण उसके पास सब कुछ होकर भी वह सुखी नहीं बन पा रहा है।

दूसरों की लाईन को अगर छोटा करना है तो कभी उसे मत मिटाइए पर उसके बराबर में एक बड़ी लाईन खींच दीजिए। वह स्वतः छोटी हो जाएगी। किसी भी लाईन को काटकर छोटी करना बुद्धिमता नहीं है। किसी के सुख से परेशान न होकर हमें अपने जीवन–स्तर को आगे बढ़ाने का प्रयास करना है। बल्कि वह भी जीए और हम भी जीएं। "जीओ और जीने दो" के भगवान महावीर के सिद्धान्त को जिन्दगी के साथ संयोजित किया जाय तो स्वतः सभी समस्याओं का समाधान हो जाएगा।



रोगोत्पत्ति का मूल स्रोत :
कमजोर मानसिकता

शरीर में फैलने वाले अधिकांश रोगों का मूल बीज सबसे पहले मन में उत्पन्न होता है। जिस व्यक्ति का विलपावर–आत्मबल कमजोर होता है उसके रोगों का विस्तार शीघ्रता से होता है और जिसका विलपावर मजबूत होता है, उसके रोगों का विस्तार जल्दी से नहीं हो सकता। बल्कि कभी कभी तो वह अपनी सबल मानसिकता के आधार पर अपने रोग के कीटाणुओं को समाप्त करने में सफलता भी पा लेता है।

जहाँ धार्मिकता के क्षेत्र में चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने स्पष्ट रूप में संदिष्ट किया है कि " जहां अन्तो, वहा बाही" जैसा अन्दर होता है वैसा बाहर में होने लगता है।

जिस प्रकार शरीर के बाहर होने वाले फोड़े का मूल कारण भीतरी कीटाणु है, जिन्हें समाप्त करने के लिए चिकित्सक भीतर में औषधियां देते हैं भीतरी कीटाणु समाप्त होने पर बाहरी रोग भी स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने दुनियां के सामने अनेक प्रयोग किये। एक फांसी की सजा वाले व्यक्ति पर उन्होंने प्रयोग किया। उसकी आंख पर पट्टी बांध दी गई और हाथ पर सुई लगादी गई, ऊपर पानी की बोतल लटका दी और नीचे एक भगोना रख दिया। जिसमें ऊपर से पानी की बूंद नली द्वारा नीचे आकर उस भगोने में गिरने लगी। जिससे टप–2 आवाज होने लगी। आने वाले सभी चिकित्सक यह कहने लगे कि अरे इस व्यक्ति का बहुत रक्त बाहर निकल गया है। जिसे वह व्यक्ति सुनता रहा और उसने हकीकत में यह मान लिया कि मेरे शरीर से बहुत रक्त बाहर निकल चुका है। परिणामस्वरूप वह कुछ ही घंटों में समाप्त हो गया। वह व्यक्ति रक्त न निकलने के बावजूद भी मानसिक दौर्बल्य के कारण अपनी जिन्दगी समाप्त कर गया। इसके विपरीत ऐसा भी होता है कि कितनी भी बड़ी बीमारी हो, यदि इन्सान अन्तर मन से निर्भय होकर जीता है तो रोगों के कीटाणु या तो उतने ही रह जाते हैं, या फिर नष्ट हो जाते हैं ?

एक चिकित्सक के दो मित्रें में से एक को खांसी जुकाम था और एक को तीसरे दर्जे का कैंसर। दोनों को देखने के बाद उसने अस्पताल जाकर पर्चियां लिख भेजी, एक को लिखा तुम्हारे तीसरे दर्जे का कैंसर होने से इलाज नहीं हो सकता, और दूसरे को लिखा कि तुम्हारे खांसी जुकाम है, जिसके लिये दवा की आवश्यकता नहीं। गर्म–गर्म गुड़राव का उपयोग किया जाय। दोनों पर "माई–डीयर" लिखा था। नाम किसी का नहीं था। कम्पाउण्डर द्वारा पर्चे उलट फेर हो गये। सर्दी–जुकाम वाले ने जब पर्चा पढ़ा तो उसे लगा कि मेरे तो कैंसर है और वह घबरा गया, शरीर में भयंकर वेदना हो गई। उसकी कैंसर की मानसिकता ने उसके तन बदन में अस्वस्थता उत्पन्न कर दी और कैंसर वाला खुश हो गया, मेरे तो कोई बीमारी ही नहीं है। मामूली सर्दी जुकाम वाले की भ्रान्ति को डाक्टर ने जाकर ठीक की, तब कहीं जाकर उसकी बीमारी शान्त हो पाई। मानसिकता का यह विश्लेषण यह समझाता है कि इन्सान को कभी भी उसके मन को कमजोर नहीं बनाना चाहिए।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति ही कुछ ऐसी बन गई है कि जब कोई निकट का सम्बन्धी परिचित या मित्र, रोग ग्रस्त हो जाता है तो लोग वहाँ जाकर हम दर्दी प्रकट करने के लिए उसके स्वास्थ्य के प्रति चिन्ता व्यक्त करने लगते हैं। रोग की नाजुकता गंभीरता प्रकट करने लगते हैं। रोग से शरीर का कमजोर होना बतलाते हैं। जमाने भर की उदासीनता चेहरे पर उभार लेते हैं। जिन्दगी से हताश, उदास, निराश होने जैसी बातें उसके सामने की जाती है। रोगी पर उन विचारों का जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। उसकी मानसिकता कमजोर होती चली जाती है। वैसी स्थिति में उसे अच्छे से अच्छा चिकित्सक, बढ़िया से बढ़िया दवा देकर भी ठीक नहीं कर पाता। दवा से भी दुआ ज्यादा काम करती है। यह कहावत, कहावत ही न होकर यथार्थ भी है।

कई व्यक्तियों की यह अवधारणा होती है कि "तन की बीमारी का मन से क्या सम्बम्धी व्यक्ति अन्दर से कुछ भी सोचता है, पर बाहर से व्यवहार अच्छा रखता है तो किसी को कुछ पता नहीं चलता, लेकिन यह अवधारणा यथार्थ नहीं मानी जा सकती। स्थूल दृष्टि से तन का हर परिस्पन्दन मन से संचालित होता है। जब मन से सोचा गया कि मुझे चलना है तो उसके हाथ–पैर अपने आप उस सोच के अनुसार चलने के लिए तैयार हो जाते हैं। जब मन यह सोचले कि रुकना है तो चलता हुआ तन रुक जाता है।

खान–पान, रहन–रहन, जबाब–तलब सभी क्रियायें मन के आदेश से ही होती है। तन और मन का तो अभिन्न सम्बन्ध है। इन्सान जो मन में बुरे विचार रखकर, तन से अच्छा व्यवहार करता है, वह अच्छा व्यवहार भले मात्र व्यवहारिक ही क्यों न हो, पर उस व्यवहारिकता के लिए भी वैसी मानसिकता बनने पर ही वैसा आचरण हो पाता है।

आज चिकित्सा विज्ञान में भी असाध्य समझे जाने वाले रोगों का इलाज मनोविज्ञान से किया जा रहा है। आज के मनोवैज्ञानिकों ने यहां तक सिद्ध कर दिया है कि पानी की मटकी को हाथ में उठाने के बाद अच्छा या बुरा विचार करने पर उस पानी में केमीकली तो नहीं पर गुणात्मक परिवर्तन अवश्य हो जाता है। अमरीकी डाक्टर रूडाल्फ ने ऐसे पानी का प्रयोग वनस्पति पर किया। अच्छे विचार करके, सीचें गये पानी से जल्दी अंकुरण हुआ और बुरे विचार करके सींचे गए पानी से अंकुरण हुआ ही नहीं और हुआ तो पौधे पीछे रूग्ण पाये गये।

आयुर्वेद चिकित्सा के महान् आचार्य आत्रेय से अग्निवेश ने एक बार पूछा कि व्यक्तिगत रोगों का कारण कुपथ्य हो सकता है। लेकिन सामूहिक रोगों का कारण क्या है ? तब आचार्य आत्रेय ने कहा कि सामूहिक रोगों का कारण व्यक्ति के मानसिक कुविचार हैं।

क्रोध की ज्वालामुखी तन मन में आग लगाकर मानसिक अशांति बढ़ा देती है। जिसका प्रभाव शरीर पर विभिन्न रोगों के रूप में उभरने लगता है। जब इन्सान को किसी से ईर्ष्या होने लगती है तो अन्दर ही अन्दर जलने लगता है। जो जलन रक्त चाप, ब्रेन हेमरेज, क्षय रोग जैसी गंभीर बीमारियों की जननी बन जाती है। अहंकार एक ऐसी ग्रन्थी है, उसके भीतर में उभरने वाले सृजनात्मक विचारों को कुण्ठित कर देती है और वह अपने ही अभिमान के कारण दुनियां से प्रताड़ित होकर पीड़ित होता जाता है।

अनैतिक और अमानवीयता से की गई स्वार्थ सिद्धि बाह्य रूप में इन्सान को सुखदायक प्रतीत हो सकती है, पर भीतर से एक ऐसी ग्रन्थी को जन्म देती है जो उसके मन को हर वक्त परेशान किये रहती है। यही कारण है कि अनैतिकता से प्राप्त संपति के साथ ही उस अनैतिक ग्रन्थि से उभर रही अनेक बीमारियां इन्सान को घेर लेती है, अतः तन को स्वस्थ बनाने के लिए मन को स्वस्थ बनाना होगा। मानसिक अशांति के कीटाणुओं को बाहर निकालना होगा। तभी जाकर वह स्वस्थ बन सकेगा।

आज के युग में तन के उपचार की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है किन्तु मानसिक अस्वस्थता के उपचार के बिना तन का उपचार क्षणिक स्वस्थता ही दे सकता है। स्थायी स्वस्थता के लिए मन का विश्लेषण कर उसकी कमजोरी को बाहर निकालना होगा।

अमेरिका का अरबपति जोन्स मानसिक कुंठाओं के कारण विक्षिप्त हो गया। जिसके कारण शरीर में अनेक रोग फैल गए। बहुतों से इलाज कराने पर भी स्वस्थ नहीं हो सका। तब सुप्रसिद्ध मनोचिकित्सक डाक्टर प्लेमिंग के पास पहुंचा। डाक्टर प्लेमिंग ने पूछा– क्या ? आपको मनोचिकित्सा पर विश्वास है। तब जोन्स ने जबाब दिया, तभी तो आया हूं। किन्तु अब तक दसों मनोवैज्ञानिकों से इलाज करा चुका हूं, पर ठीक नहीं हो पाया। प्लेमिंग ने कहा– तब तो तुम्हारा यहाँ भी इलाज नहीं होगा, चले जाओ ! जोन्स को अन्दर ही अन्दर गुस्सा तो बहुत आया, पर वह कर कुछ नहीं सका। विवश था इलाज जो कराना था। कुछ दिन बाद वह फिर डा. के पास आया। तो डा. के प्राइवेट सेक्रेटरी ने उसे बाहर से ही तीन दिन बाद आने का कहकर निकाल दिया। इस धनपति को अपनी जिन्दगी में पहली बार कोई इस प्रकार टरकाने वाला मिला। जोन्स तीन दिन बाद फिर गया तो डाक्टर ने उससे पूछा क्या सचमुच तुम इस व्यथा से मुक्ति पाना चाहते हो। बस फिर गुस्सा आगया जोन्स को और वह चिल्लाने लगा– तो क्या में झक मारने आया हूँ। डा. प्लेमिंग बोला– जाओ, मैं इलाज नहीं करूँगा। जोन्स को अपनी जिन्दगी में पहली बार ऐसे झटके लग रहे थे। आज तक पैसे के बल पर वह सब कुछ करता आया था। जोन्स कुछ दिन बाद फिर गया। अब उसको पैसे का अभिमान व मानसिक रोग दूर हो चुका था। बड़ी सरलता से उसने डाक्टर से बातचीत की। तब डाक्टर ने कहा– मिस्टर जोन्स ! तुम अपने हाथ से एक मकान बनाओ, बस ठीक हो जाओगे और वह वैसा करके ठीक भी हो गया है। यह है मानसिक रोग जिसे दूर करने के लिए मानसिक कुंठाओं को दूर करना होगा। बड़े बड़े संन्यासी लोग मानसिक रोगों को दूर करने के लिए प्रयास करते हैं। आजकल शल्य चिकित्सा करने से पहले डाक्टर भी हार्ट परीक्षण इसीलिए करते हैं। मानसिकता की सबलता हर क्षेत्र में आवश्यक है। उसमें भी स्वस्थता के लिए तो पहले आवश्यक है।



सुख और सम्मान का शत्रु-अहंकार

आजकल इन्सान झूठे अहंकार से अधिक लिप्त बनता जा रहा है। यदि कोई उसकी प्रशंसा करता है तो वह खुश हो जाता है और यदि उसकी कोई निन्दा करता है तो वह नाराज, रुष्ट हो जाता है। यह स्थिति उसके आत्म विकास में बाधक है। प्रशंसा से अलिप्तता और निन्दा में आत्मन्वेशण की स्थिति ही उसके जीवन को ऊपर उठा सकती है।

सर्वप्रथम तो यह सोचना आवश्यक है कि अहंकार किस पर किया जाय। जो वस्तु हमारी हो, उसी पर ही तो अहंकार आएगा। जैसे कोई व्यक्ति होटल में ठहर जाय और यह सोचले की यह होटल मेरी है। कोई व्यक्ति प्लेन में बैठ जाय और यह सोच ले की यह प्लेन मेरी है। तो यह झूठा अहंकार उसे हास्यास्पद बना देता है। ठीक इसी प्रकार जो व्यक्ति इन संसार की वस्तुओं पर भी अपना आधिपत्य जमा लेता है। यह मकान मेरा है, यह गाड़ी मेरी है, सोना चांदी मेरा है। आदि ममकार से पैदा होने वाला अहंकार भी झूठा है। क्योंकि दुनिया की कोई भी वस्तु हकीकत में हमारी नहीं है, फिर भी उन वस्तुओं पर मेरे पन के भाव से पैदा होने वाला अहंकार भी झूठा अहंकार है।

धन, दौलत, मकान, परिवार सभी यहीं रह जाते हैं। इन्सान यहां से उठा लिया जाता है। स्वामी बदलते रहते हैं, वस्तुएं यहीं रह जाती हैं। आज तक कोई भी इन्सान इन्हें नहीं ले जा सका। फिर क्यों झूठा अभिमान करके आदमी परेशान हो रहा है।

पराई वस्तुओं का अभिमान इन्सान को कभी भी महान् नहीं बना सकता। क्योंकि उन वस्तुओं के हटते ही उसका अभिमान भी क्षीण हो जाता है और वही दुःखी बनता चला जाता है। इन्सान को मान–अपमान, सम्मान से हटकर अन्तर ध्यान में जीने का प्रयास करना चाहिए।

यदि किसी आदमी का हास करना हो तो उसका एक तरीका यह भी अपनाया जाता है कि जितने उसमें गुण नहीं है, उससे ज्यादा गा दिये जांय। जैसे–किसी को कार चलाना पूरा नहीं आता था, उसे कह दिया, तुम तो कार चलाने में बहुत होशियार हो, बहुत तेजी से चलाते हो। बस फिर क्या था ! उस आदमी को अभिमान आं गया और जब कार चलाने लगा तो सोचा– कार

तेज चलाना है, नहीं तो सामने वाला क्या समझेगा कि इसे कार चलाना नहीं आता। कार तेज चलाई, संभली नहीं और एक्सीडेन्ट हो गया। यह है अहंकार का परिणाम। किसी से कह दिया कि अरे आप हजारों का व्यापार करते हो। आप तो इज्जतदार आदमी हो, लाखों का व्यापार करना चाहिए। मामूली व्यापार शोभा नहीं देता। फिर क्या था, वह अपनी इज्जत अहंकार में आ गया और बिना समझे ही लाखों का व्यापार शुरु कर दिया और घाटे में आ गया। कोई महिला शॉपिंग करने जाती है। साथ में उसकी सहेली है। खरीददारी करते वक्त वह सोचती है कि मामूली पैसे की चीज खरीदूंगी तो यह सहेली क्या समझेगी। अपनी झूठी इज्जत के पीछे वह भारी मूल्य वाली वस्तु खरीद लाती है, चाहे वह कोई काम की न हो, या बच्चों का खिलौना ही हो। पर इस अहंकार के पीछे वह अपनी अर्थ व्यवस्था को बिगाड़ देती है। अहंकारी व्यक्ति के चेहरे की मासूमियत और शालीनता भी समाप्त हो जाती है। उसके स्थान पर कठोरता, रूक्षता और बदरंगता छाने लगती है।

झूठी शान इन्सान की जिन्दगी को दुःख के महासागर में डूबो देती है। एक ऐसा परिवार देखा गया जिसने अपना खान–पान, रहन–सहन सब कुछ खर्चीला उच्चस्तरीय बना रखा था। जबकि इन्कम (Income) इतनी नहीं थी। उसके परिवार में एक लड़की की शादी हुई। उन्हें अपनी इज्जत आबरु याने कि झूठा अभिमान बनाए रखने के लिए कर्ज लेकर के भी भारी डेकोरेशन (Decoration) आडम्बर के साथ बेटी का विवाह करना पड़ा। किन्तु उसका परिणाम इतना घातक आया कि उसका व्यापार ठप्प हो गया। परिवार भारी कर्ज से दब गया। ऐसा अहंकार किस काम का जो आदमी को पतन की गहराई में फैंक दे। जहां से निकलना भी मुश्किल हो जाय।

सत्ता में रहने वाले मिनिस्टर (Minister) को जब चुनाव लड़ना हो तो गली–गली में घूम कर अदने से अदने व्यक्ति को भी हाथ जोड़ कर विनम्रता के साथ यह कहते हुए पाए जाते हैं कि वोट हमें देना है। किन्तु वही जब चुनाव जीत जाते हैं और भाग्य भरोसे मिनिस्टर बन जाते हैं तो फिर उनके लिए एयरकंडीशन (Aircondition) गाड़ी से बाहर निकलना भी तकलीफ देह हो जाता है। उन गलियों में उन्हें अब बदबू आने लगती हैं। वे आदिवासी घृणा के पात्र बन जाते हैं। उनकी आंखें नीचे देखना बंद सी कर देती है। कड़ी सुरक्षा व्यवस्था के बीच विशाल काफिले को लेकर वे अपनी शान शौकत से ही जीने लगते हैं। अब उनसे मिलना तो क्या, देखना भी पब्लिक (Public)

के लिए असंभव होने लगता है। लेकिन सत्ता के अहंकार में वे लोग भूल जाते हैं कि एक दिन वापस फुटपाथ (Footpath) पर भी आना पड़ सकता है। मयूर अपने रंग बिरंगे सुन्दर रूप को देखकर गर्व से अपनी गर्दन ऊंची कर लेता है पर जब उसकी दृष्टि अपने बदरंग पैरों पर पड़ने लगती है तो वह आंखों से आंसू बहाता है।

अहंकारी इन्सानों की भी यही स्थिति बनने लगती है। सत्ताधारी यदि सत्ता से हटकर जैसी विनम्रता रखते हैं और वोट मांगते हैं वैसी ही विनम्रता बनाये रखे तो उन्हें फुटपाथ पर आना ही न पड़े वे भूल जाते हैं यह शान शौकत, तुम्हारी नहीं पब्लिक की देन है। वह जब चाहे तब सत्ता पलट सकती है जो कि आज की राजनीति के हालात् होता रहा है। भौतिक वस्तुओं के पीछे अहंकार करने वाला इन्सान हंसी का पात्र तो बनता ही है साथ ही वह किसी का प्रिय पात्र भी नहीं बन पाता। कितनी भी सत्ता आ जाये पर जनता का दिल सत्ता से नहीं सरलता, विनम्रता से जीता जा सकता है।

फ्रांस का सम्राट नेपोलियन एक बार कहीं जा रहा था, उसके मन्त्रीगण भी उसके साथ ही थे। सामने से एक देहाती व्यक्ति आया, नेपोलियन को सामने आते देखकर उसने अपने हाथ जोड़कर पूर्ण विनम्रता के साथ प्रणाम किया। नेपोलियन ने भी अपना टोप उतारकर उसे प्रणाम किया। किन्तु साथ चलने वाले अधिकारियों को नेपोलियन का झुकना अच्छा नहीं लगा। उन्होंने नेपोलियन से कहा भी आप जैसे महान् सम्राट उस भिखारी जैसे– व्यक्ति को प्रणाम करे, यह शोभास्पद नहीं है। तब नेपोलियन ने कहा– किसी भी व्यक्ति की महानता, सभ्यता, विनम्रता से आंकी जाती है न कि अहंकार से। सामने वाला मुझे प्रणाम करे, सभ्यता दिखाये और मैं न झुकूं, यह कैसी महानता, बल्कि न झुककर तो मैं सामने वाले की महानता के स्तर से भी नीचे गिर जाता हूं।

नेपोलियन के इन महान विचारों के सामने सारे अधिकारी नत मस्तक थे। आज का इंसान तुच्छ सत्ता सम्पति के पीछे मदोन्मत्त बन जाता है पर वह यह नहीं सोच पाता है कि यह उन्मत्ता पागलपन एक न एक दिन उसकी जिन्दगी को बर्बाद कर देगी।

युग ऐसा आ गया है कि अब नौकर पर भी मालिक का अहंकार नहीं चलता। आज नौकरों को मालिक की आवश्यकता नहीं है बल्कि मालिकों को नौकरों की आवश्यकता बढ़ रही है।

सम्मान पाना है तो वह अहंकार से प्राप्त नहीं होगा, सम्मान पाने के लिए सम्मान देना होगा। देश का राष्ट्रपति भी जब एक आदिवासी जिसे न बोलना आता है, न पढ़ना, न पहिनना उसके हाथों से माला पहिनता है तो राष्ट्रपति को भी पहले इस आदिवासी के सामने मस्तिष्क झुकाना पड़ता है। तभी उसके गले में माला आती है। यह एक ऐसी प्रतिक्रिया है जो आदमी को महान् बनने के लिए विनम्रता की प्रेरणा देती है।

पण्डित जवाहरलाल नेहरु लोकप्रिय नेता क्यों बने ? इसलिए की वे अपने पद के अहंकार को छोड कर छोटे से छोटे बच्चे से भी अत्यन्त स्नेह एवं प्रेम के साथ बात किया करते थे। जिनका यह स्नेह उन बच्चों, नौजवानों, बुजुर्गों के दिल में एक अमिट छाप छोड़ता चला गया। अहंकारी व्यक्ति का विकास भी रुक जाता है क्योंकि अकड़ने वाला इंसान टूटता ही है। झुकने वाला इन्सान ही जुड़ता है। महान बनता है।

भारी तूफान और झंझावतों में ठूंठ की तरह खड़े वृक्ष उखड़ जाते हैं और झुकने वाली घास उसी रूप में जमी रहती है। भूकम्प के झटकों में चट्टान की तरह खड़ी गगन चुम्बी बिल्डिंग मिट्टी में मिल गई, लेकिन झुकने वाले पेड़ पौधे फिर भी बचे रह गये। इन्सान को चाहिये कि उपलब्धि के साथ भीतर विनम्रता लाना आवश्यक है।

जिस प्रकार लचीली मिट्टी में ही बीज का अंकुरण सही होता है, यदि सख्त जमीन हो तो बीज भी नष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार विनम्रता जिसके भीतर में हो, उसकी ज्ञान कोशिकायें लचीली होने से वह गहराई में सोचने का सामर्थ्य रखती है। लेकिन जिसके भीतर अहंकार की चाहत हो, सख्त जमीन हो तो बोया गया बीज जिस प्रकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार उसकी उपलब्धियां नष्ट हो जाती है। ब्रह्मदत्त चक्रवती का अहंकार उसे ले डूबा। काऊं का खजाना भी नहीं टिका। कहते हैं 40 हाथियों पर जिसके खजाने की चाबियां चला करती थी, उसका भी दुनियां से नाम साफ हो गया।

अतः इन्सान को अपनी उपलब्धियों पर अहंकार न करके विनय और शालीनता से चलने पर ही विकास हो सकता है।

पति–पत्नी में भी परस्पर जब अहंकार टकराने लगता है तब संघर्ष खड़ा हो जाता है। स्वर्ग जैसा घर श्मशान मय बन जाता है। विचारों का आदान प्रदान होना चाहिए। पर वह दधि को मथ कर नवनीत निकालने की तरह होना चाहिए। मथने की प्रक्रिया में एक रस्सी खींची जाती है, एक ढ़ीली

छोड़ दी जाती है, तभी दधि से नवनीत निकलता है इसी प्रकार अहंकार से हटकर परस्पर के विचारों में सम्मानजनक स्थिति होने पर ही शांति रह सकती है।

जैन धर्म के प्रवर्तक तीर्थंकर महावीर ने तो बहुत स्पष्ट शब्दों में अहंकार मोचन की बात कही है। उन्होंने तो हल्के से अहंकार को भी परम मुक्ति के लिए अवरोधक माना है। बाहुबली के एक वर्ष तक निरन्तर खड़े खड़े तप करने के बाद भी जब तक भीतर में समाया अहंकार नहीं गला, तब तक उनकी मोक्ष नहीं हुई, तीर्थंकर महावीर ने अपने प्रथम शिष्य गौतम को अपने अनुयायी आनंद श्रावक से माफी मांगने भेजा था क्योंकि आनंद की बात सत्य थी। जिसे गौतम ने झुठलाया था। उन्होंने साफ शब्दों में कहा था कि सत्य को 'स्वीकार' करने में किसी प्रकार का अहंकार रुकावट पैदा न करे। ऋषि महर्षियों की साधना भी अहंकार के कारण सफल नहीं हो पाती।

क्रोध तो बराबर दिखलाई देने लगता है पर अहंकार जल्दी से दिखलाई नहीं पड़ता। कई बार विनम्रता एवं शिष्टता का व्यवहार रखने वाले भी अहंकार से ही भरे रहते हैं। वे विनय पूर्वक व्यवहार ही इसलिए करते हैं कि लोग उन्हें अच्छा समझे और उनकी प्रशंसा करे, जो कि उनके अहंकार को तुष्ट कर सके।

दुनियां में अहंकार आज तक किसी का नहीं टिका है। बड़े से बड़े शक्तिशाली सत्ताधारी धनीमानी व्यक्तियों को भी भूमिसात होना पड़ा। इसलिए इन्सान को चाहिए कि वह अहंकार से नहीं इन्सानियत एवं सदाचार से जीने का प्रयास करे।



आत्म विश्वास जगाओ : मन चाहो पाओ

आज दुनियां में महत्त्वाकांक्षी इन्सानों की कोई कमी नहीं है। परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि महत्त्वाकांक्षा के अनुसार उन्हें उपलब्धि नहीं होती। आखिर ऐसा कहां अवरोध आ जाता है कि वे जैसा चाहते हैं वैसा उन्हें प्राप्त क्यों नहीं होता। जबकि नीतिकार तो संस्कृत में स्पष्ट कहते हैं कि "यादृशी भावना यस्य सिर्द्धि भवति तादृशी" जिसकी जैसी भावना होती है, वैसी ही उपलब्धि भी उसे अवश्य मिलती है। यदि व्यक्ति की इच्छानुसार ही सब कुछ होने लग जाय तो फिर दुनियां में दुःखी तो कोई रहेगा ही नहीं। या फिर तुच्छ स्वार्थ भावना के कारण इन्सान परस्पर ही एक दूसरे को समाप्त कर डालेगा।

यह सत्य है कि व्यक्ति अपनी इच्छानुसार प्राप्त कर सकता है किन्तु उसे अपनी चाह के अनुसार राह भी बनानी पड़ती है। चाह कुछ और है और बढ़ किसी और राह पर रहा है तो कभी भी चाह फलीभूत नहीं हो सकती। साध्य कुछ और है और साधन कुछ और है तो उन साधनों से साध्य कभी भी नहीं पाया जा सकता। अतः इच्छित फल को पाने के लिए इन्सान को सबसे पहले तत्सम्बन्धित ज्ञान का होना अत्यन्त आवश्यक है।

जिस काम को वह करना चाहता है या जो वह पाना चाहता है, उसे वह अच्छी तरह जान ले। क्या तो वह करना चाहता है ? क्यों करना चाहता है ? उसके करने के बीच क्या अवरोध आ सकते हैं ? उन अपराधों के आने पर उन्हें कैसे हटाया जाय। उस कार्य के करने से क्या उपलब्धि होगी ? और वह उपलब्धि उसके लिए कहां तक उपयोगी सिद्ध होगी ? इन सब प्रश्नों पर इंसान का गहरा चिन्तन आवश्यक है। जब इतने सारे विन्दुओं पर सोच लेता है, तब उसे अपना लक्ष्य स्थिर कर लेना चाहिए। लक्ष्य की स्थिरता के बाद ही तत्सम्बंधित कार्य करने का संकल्प मजबूत होता है। कई बार इन्सान लक्ष्य को पूरा समझ ही नहीं पाता और संकल्प के साथ कार्य करने भी लग जाता है तो वह मद में ही विचलित हो जाता है क्योंकि विना लक्ष्य को अच्छी तरह साधे संकल्प भी मजबूत नहीं रह सकता है।

एक बार एक दार्शनिक अपने शिष्यों के साथ वन यात्रा पर थे तो एक खेत में उनके शिष्यों ने 25–25 फुट के चार खड्डे खुदे हुए देखे तो उन्हें यह समझ में नहीं आया कि यह खड्डे क्यों खोदे गए हैं। उन्होंने दार्शनिक से पूछा तो वे बोले, इस खेत का मालिक किसान भ्रमित लक्ष्य एवं अस्थिर मन का व्यक्ति है। इसने कुए के लिए खड्डे खोदे हैं। पहला खड्डा 25 फुट खोदने के बाद भी जब पानी नहीं आया तो दूसरे तीसरे और चौथे स्थान पर 25–25 फुट सब जगह खोद डाली। पर कहीं पर भी पानी नहीं आया। यदि किसान लक्ष्य का पूरा ज्ञान रखने वाला होता और दृढ़ संकल्प के साथ एक ही स्थान पर खोदता चला जाता तो जो चार स्थानों पर 25–25 फुट खोदा है, वह एक ही स्थान पर खोदा होता तो 100 फीट जितनी मेहनत करनी ही नहीं पड़ती, उससे पहले ही पानी आ सकता था।

आज की दुनियां के अधिसंख्यक इन्सानों का भी ऐसा ही हाल हो रहा है। यही कारण है कि वे चाह करके भी कार्य में सफल नहीं हो पा रहे हैं। भ्रमित लक्ष्य वाले अस्थिर मन होने के कारण वे लक्ष्य बारबार बदलते रहते हैं। जिससे वे किसी भी कार्य में सफल नहीं होते।

इंग्लैण्ड का सर जेम्स मेकिनरास एक माना हुआ विद्वान दार्शनिक होने के बावजूद भी अस्थिर मन के कारण अपनी जिन्दगी में कोई भी आलेख पूरा नहीं लिख पाया क्योंकि लिखते लिखते ही उसके विचार बदल जाया करते थे।

लक्ष्य का स्पष्ट बोध होने के बाद हमेशा संकल्प भी उतना ही मजबूत होना चाहिए कि "देहं पातयामि कार्य साधयामि वा" या तो इस कार्य को सिद्ध कर लूंगा या फिर इस देह का परित्याग कर दूंगा। इस दृढ़ संकल्प के साथ जो व्यक्ति कार्य प्रारंभ करता है तो उसे सफलता अवश्य मिलती है। क्योंकि ऐसा दृढ़ संकल्प, उसके आत्म विश्वास को जगाने लगता है। उसके अचेतन मस्तिष्क में सोई हुई शक्तियां जागृत होने लगती हैं। वह उसे सहयोग देना प्रारंभ करती है, जैसा कि देखा जाता है कि अति क्रोधी व्यक्ति होता है या फिर कोई व्यक्ति जब पागल हो जाता है, उस वक्त जो काम उससे सहज अवस्था में संभव ही न हो, वैसा दुसाध्य कार्य भी वह कर जाता है। वह इसीलिए कि उस वक्त संकल्प की दृढ़ता उसमें एक प्रकार की ऊर्जा को विस्तारित करती चली जाती है। जो एक दुबले–इन्सान में भी बहुत बड़े कर्त्य

को करने की सक्षमता पैदा कर देती है। यही कारण है कि पागल आदमी जो भी करते हैं वो बड़ा अजूबा और आश्चर्यजनक ही करते हैं।

लक्ष्य स्पष्ट होने के साथ ही संकल्प मजबूत होने पर लक्ष्य के प्रति लगाव भी गहरा होना चाहिए। जितना गहरा लगाव–आकर्षण होता है, उतनी शीघ्रता से लक्ष्य की प्राप्ति होती चली जाती है। एक बच्चे को वर्षों पहले देखा हुआ सिनेमा आज भी याद रह जाता है और उसी को कल पढ़ाया गया पाठ आज भी याद नहीं रहता। क्यों ? वह इसलिए कि उसका पढ़ने का लक्ष्य तो है, लक्ष्य के साथ संकल्प भी है, तभी वह स्कूल जाता है, किन्तु अध्ययन के प्रति गहरा लगाव नहीं होने से वह उसे याद नहीं कर पाता। अतः ध्येय के प्रति गहरा लगाव होना भी आवश्यक है। गहरा आकर्षण उसकी अंतरंग सुषुप्त शक्तियों को जागृत करने में अत्यन्त सहायक है।

वैज्ञानिक आइस्टीन के लिए बतलाया जाता है कि वह गणित में आठ बार फेल हुआ। उसे स्कूल से निकाल दिया गया। पारिवारिक सदस्यों ने भी उसे अपमानित किया। तब उसने अपने मन में यह दृढ़तम संकल्प किया था कि जिस कारण मेरा अपमान हो रहा है, मैं उसी में होशियार होकर बताऊंगा। बस फिर क्या था, वे अपने लक्ष्य के प्रति दृढ़ संकल्प गहरे लगाव के साथ समर्पित हो गये तो एक दिन वे पूरे विश्व के गणितज्ञों में अग्रणी बन गए। परमाणु वाद की व्याख्या आईस्टीन की ही सबसे बड़ी देन मानी जाती है।

दुनियां की परवाह किये बिना पढ़ने वाला इन्सान ही लक्ष्य के अनुरूप सफलता पाता है। कोलम्बस जब यात्रा पर निकला था तो लोगों ने उसकी मजाक उड़ाई। तभी उसने अमेरिका को खोज निकाला आज इतिहास के पृष्ठों में कोलम्बस का नाम भी अमर हो गया।

एक अनाथ बच्चा था लिप्टन। किन्तु उसने अपना आत्म विश्वास जगाया और चाय के व्यापार में आगे बढ़ा तो आज पूरे विश्व में उसी के नाम से लिप्टन चाय प्रसिद्ध हो गई।

ग्रीस देश में एक लकड़हारे का बच्चा "पाइथोगोरस" जिसके मन में यह अरमान थे कि मैं डेमोक्रेटिस जैसा विद्वान बनूं। उसका दृढ़ संकल्प रंग लाया। और वह "डेमोक्रेटिस" के पास रहकर ही पूर्ण मनोयोग के साथ अध्ययन करने लगा तो एक दिन वह ग्रीस देश का माना हुआ विद्वान बन गया। आज ज्यामितिशास्त्र (जोमेट्री) का पाइथोगोरस सिद्धान्त उसी के नाम से जाना जाता है।

लंदन की गलियों में घूमने वाले एक अनाथ बच्चे के मन में एक दृढ़ संकल्प, दृढ़ आत्म विश्वास जागृत हुआ मुझे इस देश का सम्राट बनना है। उसे सहयोग प्राप्त हुआ और एक दिन वह लंदन का सम्राट बन ही गया। जिसका नाम था विलिंग्टन।

यह सब आत्मविश्वास को जगाने वाले वे पुरुष हैं जिन्होंने निश्चित मन चाही सिद्धि पाई थी।

आत्मविश्वास को जगाने के लिए संकल्प की दृढ़ता के साथ धैर्य और साहस का होना भी आवश्यक है। यदि व्यक्ति कार्य करते करते ही मध्य में ही अधीर हो जाय तो वह मन चाही सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। धैर्य और साहस के साथ बढ़ने वाले इन्सान की भीतरी शक्तियां व्यवस्थित रूप से सक्रियता के साथ चलने लगती है। अधीर व्यक्ति की चिन्तन क्षमता दबने लगती है। उसे रास्ता सही नजर नहीं आता। ऐसा व्यक्ति उन्मार्ग में जाकर भटक जाता है। धैर्य और साहस के साथ चलने वाला इन्सान एक न एक दिन सफलता पाता ही है। अमेरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन को सफलता पाने के लिए जिन्दगी में जबर्दस्त संघर्ष करना पड़ा। फिर भी घबराये नहीं, बल्कि दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते रहे, तभी वे राष्ट्रपति बन सके। कहते हैं कि लिंकन ने 1829 में व्यापार किया, उसमें भारी नुकसान हुआ। सन् 1832 में लेजिस्लेचर का चुनाव लड़ा। उसमें हार गए। सन् 1833 में फिर व्यापार तो उसमें भी नुकसान हुआ। सन् 1834 में फिर नये जोश के साथ लेजिस्लेचर का चुनाव लड़ा तो फिर हार हो गई। इधर सन् 1835 में लिंकन की पत्नी मर गई और 1836 में लिंकन स्वयं स्नायु रोग से ग्रस्त हो गये। जिन्दगी में इतनी बार हारने के बाद भी उस साहसी धैर्यशाली वीर ने सफलता की राह न छोड़ी। वे बढ़ते ही गए आगे। 1838 में स्पीकर का चुनाव लड़ा तो उसमें भी हार गए। सन् 1843 में लेड अफसर की नियुक्ति में हारे। सन् 1846 में, 1848 में कांग्रेस के चुनाव में भी हार हुई। इसी प्रकार सन् 1855 में सीनेट के चुनाव मे भी लिंकन की हार हुई। इतनी जबर्दस्त हार के बाद भी लिंकन अपने पथ पर डटे रहे। साहस और धैर्य को उन्होंने नहीं छोड़ा, लक्ष्य के प्रति दृढ़ संकल्प और धैर्य पूर्ण समर्पण के साथ वे झूके हुए थे। यही कारण था कि उनका आत्मविश्वास काम लाया और उन्होंने सन् 1860 में प्रेसीडेन्ट का चुनाव लड़ा और इस बार विजय श्री ने उनके चरण चूम लिये। वे एक शक्तिशाली देश अमेरीका के राष्ट्रपति बन गए। 30 वर्ष

के लगातार संघर्ष के बाद उन्होंने मन चाही विजय प्राप्त कर ली। अगर यही संघर्ष किसी सामान्य इन्सान के साथ हुआ होता तो वह कभी का मैदान छोड़ देता या फिर उसका हार्ट फेल हो गया होता।

इन्सान के लिए कोई भी कार्य अनहोना नहीं है, जिसमें उसकी सफलता संदिग्ध है। सफलता अगर किसी का वरण करती है तो वह इंसान ही है। किन्तु इंसान का कमजोर दिल ही उसे असफल बनाता है। जबकि उसके आत्मविश्वास को जागृत करने के लिए भारतीय दर्शनों में स्थान–स्थान पर मानवीय अतुल शक्ति का दिग्दर्शन करवाया गया है। जैसे दर्शन में कहा है "अप्पा सो परमप्पा" आत्मा ही परमात्मा है। जब आत्मा अपने ऊपर आए विभाव तत्त्वों को अलग कर देती है, तब उसका परमात्म रूप उभर कर सामने आ जाता है। वेदान्त में भी बताया है "यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे, यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे" जो कि पिण्ड में है वही सारे ब्रह्माण्ड में है और जो ब्रह्माण्ड में है वही एक पिण्ड में है। जब पिण्ड का ही व्यापक रूप ब्रह्माण्ड है तो ब्रह्माण्ड की कोई भी सिद्धि मानव के लिए असंभव नहीं रह जाती। मानव का आत्म विश्वास जागृत करने के लिए यह बतलाया गया है ताकि वह विश्व की अचिन्त्य शक्तियों को देखकर अपना आत्मविश्वास न खोदे। बल्कि सहजभाव में दृढ़ आत्म विश्वास के साथ आगे बढ़ता चला जाय। अवश्य उसे सिद्धि प्राप्त होगी।

जब सम्राट पद्मनाभ पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी को उठा ले गया था तो पाण्डव उससे लड़ने गए। तब उन्होंने मन में सोचा था कि "अम्हे वा पउमनाभे वा" या तो हम रहेंगे या पद्मनाभ रहेगा। उन्होंने पद्मनाभ की शक्ति को भी अपने बराबर स्वीकार कर लिया था। उसका भीतरी आत्म विश्वास कमजोर था। वे यह मान गए थे कि पद्मनाभ के साथ युद्ध में जीतना बहुत मुश्किल है। इस कमजोर आत्मविश्वास का ही परिणाम था कि पाण्डव, पद्मनाभ के सामने नहीं टिक सके और द्रौपदी को लाए बिना ही लौट आए तब ही श्री कृष्ण गए थे। उन्होंने उस समय अपने मन में यह निश्चित किया था "अम्हे वा न उमनाभे" मैं ही जीतूंगा, पद्मनाभ नहीं जीतेगा। इस दृढ़ आत्म विश्वास के साथ वे गए तो आखिर पद्मनाभ को पीछे हटना पड़ा और श्री कृष्ण द्रौपदी को सुरक्षित ले आए। इन्सान का आत्मविश्वास उसकी सुषुप्त शक्तियों को जागृत करने वाला बनता है। इन्सान अनन्त शक्तियों का स्वामी अवश्य है, वह चाहे सो पा सकता है। पर उसकी पहचान उसे न होने

से वह बुझदिल, कमजोर होता जा रहा है। यही कारण है कि अधिसंख्यक इन्सान इस दुनियां में पशु की तरह जिन्दगी जीकर समाप्त होते जा रहे हैं।

लार्ड कैम्प वैल विद्यार्थी थे, तब उन्होंने लिखा था कि सफलता का कोई भी अवसर प्राप्त करने के लिए मुझे दूसरे की अपेक्षा अधिक परिश्रम करना चाहिए। जब मेरे साथी थियेटर में हो तब मुझे कमरे में रहना चाहिए। जब वे सो रहे हो, तब मुझे पढ़ने में लीन होना चाहिए। जब वे सैर–सपाटे के लिए गांव गए तो तब मुझे शहर में रह कर कार्य करना चाहिए।

आत्मविश्वास के साथ ही कार्य के प्रति एकाग्रता का होना भी आवश्यक है। जब व्यक्ति पूर्ण मनोयोग पूर्वक कार्य के प्रति समर्पित हो जाता है तो सफलता पा ही लेता है।

तीर्थंकर महावीर के संन्यास जीवन में भारी उपसर्ग परीषह आये। कहते हैं इतने कष्ट तो किसी अन्य व्यक्ति के नहीं सुने गये। लेकिन महावीर दृढ़ आत्मविश्वास के साथ कष्टों को सहते गए। अवरोधों को पार करते चले गए तो एक दिन चरम परम समाधि को पा गए। अतः लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भीतरी आत्मविश्वास को जगाना अत्यन्त आवश्यक है।



आत्मलीन कैसे बनें ?

केशीगौतम की आत्मलीनता की महिमा प्रकट होते हुए भी उसे समझना अथवा समझ पाना अत्यन्त कठिन है, वैसे भी जब तक हम स्वयं आत्मलीन न बनें तब तक उनकी आत्मलीनता की प्रेरणा और श्रद्धा का विषय तो बन सकंती है, अनुभव में नहीं आ सकती और जब तक अनुभव में न आए तब तक उसकी सार्थकता क्या ? इसलिये आत्मा से जुड़ने का प्रयास करें। हम आत्मलीन कैसे बनें ? हमारे अधिकतर अध्यवसाय इन्द्रिय लीन होते हैं, कषायलीन होते हैं, आत्मलीन कम होते हैं। लेकिन जो इस बात को अच्छी तरह समझ लेंगे उन्हें आत्मलीन बनते देरी नहीं लगेगी। आत्मलीन बनने के लिए ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं है। केवल भीतर में थोड़ा परिवर्तन आना चाहिए। अगर वह आ जाये तो दुनियां में रहते हुए भी हम आत्मलीन हो जायेंगे।

किसी को ध्यान कराया जाता है। ध्यान में मेडिटेशन (Meditation) में क्या होता है ? शरीर वही होता है इन्द्रियां वही होती हैं पर उन्हें आत्मलीन बनाने को कोशिश की जाती है। क्षण भर भी ध्यान में लीन हो जायें तो जो आनन्दानुभूति होती है वह दुनियां का कोई भी पदार्थ नहीं दे सकता। उसके लिये इन्द्रियों से सम्बन्ध काटना ही होगा।

कुछ दोस्त संध्या के समय नाव में बैठकर नाव को खे रहे थे। रात भर घुमाते रहे सोचा बहुत दूर पहुंच गये होंगे पर ज्योंही पहली किरण निकली देखा तो वहीं के वहीं है। इसका क्या कारण था ? खोज करने पर पता चला कि लंगर नहीं खोला गया था। लंगर खोले बिना कितने ही बल्ले चला लें मंजिल तय नहीं होगी।

हम आत्मलीनता की बातें जरूर करते हैं, पर इन्द्रियों के विषय नहीं छोड़ते हैं, कषायों को नहीं छोड़ते हैं। जब तक विषय–कषाय नहीं छूटेंगे, परिवर्तन होने वाला नहीं है।

आपने पुण्डरिक–कुण्डरिक की घटना सुनी होगी। पुण्डरिक ने दीक्षा ग्रहण की बीमारी के कारण अपने भाई की नगरी में रुके। इलाज से स्वस्थ होने के बाद भी आसक्ति के कारण विचरण नहीं किया। भाई इस बात को

समझ गया, सोचा उन्हें संयम में स्थिर करना चाहिये। इसलिये संयम के तप त्याग के बहुत गुण गाए। मुनि ने सोचा भाई तो संयम के इतने गुण गा रहा है अतः मैं इससे संयम छोड़ने की बात कैसे कहूं।

वह वहां से अन्यत्र चले गये पर इन्द्रियलीनता के कारण पुनः आ गए। भाई उस बात को समझ गया। यह सोचकर मेरे घर की, खानदान की बदनामी न हो, मुनि से वेश बदला। मुनि को राजा बना, स्वयं मुनि बन गया और कुछ ही दिनों में आत्म कल्याण कर सद्गति में चला गया। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि जहां आत्मलीन न हो वहीं सारे रगड़े झगड़े खड़े होते हैं।

आप घर दुकान कहीं भी देखिये मेडिटेशन (Meditation) हर वक्त हो सकता है। आधा घण्टा बैठने से ही नहीं। ध्यान हर क्षण चलता है। दुर्ध्यान या शुभ ध्यान।

हमें आर्त्त–रौद्र ध्यान छोड़कर धर्म ध्यान में लीन होना चाहिये। आत्मलीन हो गये तो खाते–पीते, सोते हर समय प्रक्रिया में धर्मध्यान रहेगा।

आपने सुना होगा श्रीमद् रायचन्द के सम्बन्ध में। वे हीरे के व्यापारी थे। ऐसा बतलाया जाता है कि उन्होंने किसी से हीरे खरीदने का जिन भावों में सौदा किया उस भाव से हीरे के भाव कई गुणा बढ़ गये जिससे बेचने वालों को भारी नुकसान और रायचन्द को भारी लाभ होने वाला था।

आपके सामने ऐसा प्रसंग आ जाये तो..............? सामने वाले गरीब हैं फिर भी सोचेंगे, होगा गरीब हमें क्या मतलब ? अगर भाव ज्यादा बढ़ं जाते तो मेरे से ज्यादा कमाता या नहीं ? यह तो मेरी किस्मत है। मैं तो ज्यादा मुनाफा लूंगा। पर श्रीमद् रायचन्द ऐसे नहीं थे। उन्होंने सामने वाले व्यापारी को बुलाया और सौदे के कागजात मंगवाये। उसने कहा–"मेरे पास कागजात हैं और जैसा सौदा हुआ है, वैसा ही मैं करूंगा चाहे कितना भी मुझे नुकसान उठाना पड़े। वैसे कागजात तो आपके पास ही हैं।" रायचन्द ने कहा, मुझे अभी सौदे के कागजात लाकर दो। वह लाया। रायचन्द ने दोनों कागजात लिये और फाड़ दिये।

व्यापारी अवाक्, यह क्या किया ? उस समय रायचन्द बोले– "रायचन्द दूध तो पी सकता है पर खून नहीं।" "इसमें तुम्हें कितनी तकलीफ होगी ऐसा धन मुझे नहीं चाहिये।" और सौदा समाप्त हो गया। ऐसे कितने व्यक्ति मिलेंगे ? आज तो खून चूसने वाले ज्यादा मिल जायेंगे। इस तथ्य को समझें, यदि समझ में आ जाये तो हम व्यापार में भी आत्मलीन हो सकते हैं।

आत्मलीन कैसे बनें ?

केशीगौतम की आत्मलीनता की महिमा प्रकट होते हुए भी उसे समझना अथवा समझ पाना अत्यन्त कठिन है, वैसे भी जब तक हम स्वयं आत्मलीन न बनें तब तक उनकी आत्मलीनता की प्रेरणा और श्रद्धा का विषय तो बन सकंती है, अनुभव में नहीं आ सकती और जब तक अनुभव में न आए तब तक उसकी सार्थकता क्या ? इसलिये आत्मा से जुड़ने का प्रयास करें। हम आत्मलीन कैसे बनें ? हमारे अधिकतर अध्यवसाय इन्द्रिय लीन होते हैं, कषायलीन होते हैं, आत्मलीन कम होते हैं। लेकिन जो इस बात को अच्छी तरह समझ लेंगे उन्हें आत्मलीन बनते देरी नहीं लगेगी। आत्मलीन बनने के लिए ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं है। केवल भीतर में थोड़ा परिवर्तन आना चाहिए। अगर वह आ जाये तो दुनियां में रहते हुए भी हम आत्मलीन हो जायेंगे।

किसी को ध्यान कराया जाता है। ध्यान में मेडिटेशन (Meditation) में क्या होता है ? शरीर वही होता है इन्द्रियां वही होती हैं पर उन्हें आत्मलीन बनाने को कोशिश की जाती है। क्षण भर भी ध्यान में लीन हो जायें तो जो आनन्दानुभूति होती है वह दुनियां का कोई भी पदार्थ नहीं दे सकता। उसके लिये इन्द्रियों से सम्बन्ध काटना ही होगा।

कुछ दोस्त संध्या के समय नाव में बैठकर नाव को खे रहे थे। रात भर घुमाते रहे सोचा बहुत दूर पहुंच गये होंगे पर ज्योंही पहली किरण निकली देखा तो वहीं के वहीं है। इसका क्या कारण था ? खोज करने पर पता चला कि लंगर नहीं खोला गया था। लंगर खोले बिना कितने ही बल्ले चला लें मंजिल तय नहीं होगी।

हम आत्मलीनता की बातें जरूर करते हैं, पर इन्द्रियों के विषय नहीं छोड़ते हैं, कषायों को नहीं छोड़ते हैं। जब तक विषय–कषाय नहीं छूटेंगे, परिवर्तन होने वाला नहीं है।

आपने पुण्डरिक–कुण्डरिक की घटना सुनी होगी। पुण्डरिक ने दीक्षा ग्रहण की बीमारी के कारण अपने भाई की नगरी में रुके। इलाज से स्वस्थ होने के बाद भी आसक्ति के कारण विचरण नहीं किया। भाई इस बात को

समझ गया, सोचा उन्हें संयम में स्थिर करना चाहिये। इसलिये संयम के तप त्याग के बहुत गुण गाए। मुनि ने सोचा भाई तो संयम के इतने गुण गा रहा है अतः मैं इससे संयम छोड़ने की बात कैसे कहूं।

वह वहां से अन्यत्र चले गये पर इन्द्रियलीनता के कारण पुनः आ गए। भाई उस बात को समझ गया। यह सोचकर मेरे घर की, खानदान की बदनामी न हो, मुनि से वेश बदला। मुनि को राजा बना, स्वयं मुनि बन गया और कुछ ही दिनों में आत्म कल्याण कर सद्गति में चला गया। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि जहां आत्मलीन न हो वहीं सारे रगड़े झगड़े खड़े होते हैं।

आप घर दुकान कहीं भी देखिये मेडिटेशन (Meditation) हर वक्त हो सकता है। आधा घण्टा बैठने से ही नहीं। ध्यान हर क्षण चलता है। दुर्ध्यान या शुभ ध्यान।

हमें आर्त्त–रौद्र ध्यान छोड़कर धर्म ध्यान में लीन होना चाहिये। आत्मलीन हो गये तो खाते–पीते, सोते हर समय प्रक्रिया में धर्मध्यान रहेगा।

आपने सुना होगा श्रीमद् रायचन्द के सम्बन्ध में। वे हीरे के व्यापारी थे। ऐसा बतलाया जाता है कि उन्होंने किसी से हीरे खरीदने का जिन भावों में सौदा किया उस भाव से हीरे के भाव कई गुणा बढ़ गये जिससे बेचने वालों को भारी नुकसान और रायचन्द को भारी लाभ होने वाला था।

आपके सामने ऐसा प्रसंग आ जाये तो..............? सामने वाले गरीब हैं फिर भी सोचेंगे, होगा गरीब हमें क्या मतलब ? अगर भाव ज्यादा बढ़ जाते तो मेरे से ज्यादा कमाता या नहीं ? यह तो मेरी किस्मत है। मैं तो ज्यादा मुनाफा लूंगा। पर श्रीमद् रायचन्द ऐसे नहीं थे। उन्होंने सामने वाले व्यापारी को बुलाया और सौदे के कागजात मंगवाये। उसने कहा–"मेरे पास कागजात हैं और जैसा सौदा हुआ है, वैसा ही मैं करूंगा चाहे कितना भी मुझे नुकसान उठाना पड़े। वैसे कागजात तो आपके पास ही हैं।" रायचन्द ने कहा, मुझे अभी सौदे के कागजात लाकर दो। वह लाया। रायचन्द ने दोनों कागजात लिये और फाड़ दिये।

व्यापारी अवाक्, यह क्या किया ? उस समय रायचन्द बोले– "रायचन्द दूध तो पी सकता है पर खून नहीं।" "इसमें तुम्हें कितनी तकलीफ होगी ऐसा धन मुझे नहीं चाहिये।" और सौदा समाप्त हो गया। ऐसे कितने व्यक्ति मिलेंगे ? आज तो खून चूसने वाले ज्यादा मिल जायेंगे। इस तथ्य को समझें, यदि समझ में आ जाये तो हम व्यापार में भी आत्मलीन हो सकते हैं।

एक व्यक्ति साधु के पास गया– "गृहस्थ जीवन में रहते जिन्दगी कैसे जी सकता हूं ?" तब वह साधु बोला– "अमुक सेठ के पास जाओ, तीन दिन तक रहकर आओ।" वह बोला कैसे जाऊंगा। बड़े व्यक्ति के पास मुझे कौन जाने देगा।" मेरा नाम ले लेना कहना संन्यासी ने भेजा है।" चौकीदार से पूछकर अन्दर गया। तीन दिन मैनेजर बनकर रहा, एक दिन भागता हुआ सेठ के पास आया। भारी नुकसान हो गया। विदेश से जहाज आ रहा था। करोड़ों का माल तूफान में कहां गया पता नहीं। करोड़ों का नुकसान और बीमा भी नहीं है। सेठ ने कहा घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह तो व्यापार है उतार–चढ़ाव तो आता ही रहता है। चिल्लाते क्यों हो अपना काम करो। मालिक नहीं घबराएं तुम क्यों परेशान होते हो। तीन दिन बाद बड़ा खुश हो रहा था। फिर आया, भारी प्रोफिट (Profit) क्या पागलों की तरह हरकत करते रहते हो ? कभी हंसना कभी रोना, यह तो पागलों का काम है।

जहाज दूसरे बन्दरगाह में पहुंच गया था। एक करोड़ का माल दो करोड़ में बिक गया। सेठ ने कहा– इसमें क्या है, व्यापार है। आना जाना चलता ही रहता है, सुखी मत बनो। मुनीम समझे या नहीं पर वह युवक समझ गया कि हर परिस्थिति में समभाव कैसे रखा गया। गृहस्थ जीवन कैसे जीयें, तरीका समझ में आ गया। तीन दिन बाद वह युवक पुनः संन्यासी के पास गया वह बोला–मैं समझ गया कि दोनों परिस्थिति में समभाव कैसे रखा जाये, और समभाव से ही गृहस्थ को सुखी बनाया जा सकता है। वह युवक तो समझ गया पर आज के लोग समझे या नहीं ? यदि आत्मलीन बए गए तो नवीन कर्म बंध रुक सकेगा और जो गृहस्थ जीवन में भी आत्मलीन बन जाता है वही सुखी–सन्तुष्ट रह सकता है।

स्व. जवाहराचार्य फरमाते थे कभी–कभी एक कार्य करने की अपेक्षा करवाने में ज्यादा पाप हो जाता है। कभी कराने तो कभी अनुमोदन में भी ज्यादा पाप हो सकता है। उन्होंने उदाहरण देते हुए बताया था।

एक सेठ ने अपने नौकर से दन्तौन मंगवाया। वह गया, सोचा पता नहीं सेठजी कौन सा पसंद करेंगे। अतः भिन्न प्रकार के 5–10–20 काट लाया। सेठ स्वयं लाते तो एक ही लाते, इसमें कितना नुकसान हुआ और कितनी निरर्थक हिंसा हुई। सेठ ने सोचा– मैं नीम का दन्तौन कर रहा हूं वह बढ़िया काम है। इससे मेरे दांत अच्छे हो गये। वह लोगों को वैसा दन्तौन करने की प्रेरणा देता है, अनुमोदन करता है। परिणामस्वरूप लाखों करोड़ों लोगों के

दन्तौन करने का पाप उसे अनुमोदन के कारण लगता है।

सावद्य परामर्शों से सामने वाले का सुधार हो या न हो पर परामर्श देने से आपको अनुमोदन का पाप तो लग ही जायेगा। ऐसे नीम हकीम भी बहुत मिल जाते हैं। सलाह देने वाले जिससे फायदा होने के बजाय भारी नुकसान हो जाता है। यदि आपको परामर्श देना ही है तो सामायिक प्रतिक्रमण करने का दीजिये, पौषध नवकारसी आदि का दीजिये जिससे वचन संवर होगा साथ ही निर्जरा भी होगी, पर ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलेंगे। अधिकतर लोग तो फिजूल बातों का परामर्श देकर भारी कर्म बन्ध कर लेते हैं। ऐसे युवक युवतियां बहुत मिल जायेंगे जो किसी फिल्म तथा उसमें काम करने वाले अभिनेताओं और अभिनेत्रियों की बात कह कर दूसरों को भी उसे देखने की राह पर बढ़ाते हैं। ऐसे स्त्री–पुरुष आत्मलीन नहीं होते, वे भारी कर्म बंध कर लेते हैं। वे यह नहीं सोचते कि इससे उन्हें क्या मिलेगा ? जब मिलने वाला कुछ नहीं तो क्यों फिजूल काम करते हैं ? पराये का विवाह सम्बन्ध कराना श्रावक के लिये अतिचार बताया गया है परन्तु आज हजारों लोग इसी काम में लगे दिखते रहते हैं। अमुक का लड़का, अमुक की लड़की अच्छी है। जैसी सलाह देकर सबंध कराने में सहयोग देते हैं।

जालंधर में एक व्यक्ति कहते हैं उसके पास हर समय 100, 200 युवक– युवतियों के फोटो मिल जायेंगे। वह विवाह की दलाली करता रहता है। हालांकि वह पैसे से सम्पन्न है। परन्तु वह उसकी हॉबी (Hobby) है। कभी–कभी तो वह अपनी तरफ से रुपये भी खर्च देता है। अनेक लोग उससे पूछने भी आते हैं। "लड़का हो तो बताओ।"

खैर वह तो गृहस्थ है, उनकी बात छोड़िये, आजकल साधु भी इस चक्कर में पड़ने लग गये हैं, "देखो अमुक का लड़का अच्छा है और पैसा भी अच्छा है "महाराज जो आत्मलीन होना चाहिये परलीन हो रहे हैं, खुद ने शादी छोड़ी परन्तु दूसरों की करवा रहे हैं। सोचते हैं इससे वे उनके भक्त बन जायेंगे। महाराज हर गांव के प्रत्येक घर की जितनी जानकारी रख सकते हैं, उतनी शायद आप नहीं रख पाते। वे बढ़िया खोज कर सकते हैं, कैसा घर घराना है, क्या आंतरिक स्थिति है, आदि.................।

ऐसे साधु ऊपर से आत्मलीन दीखते हैं परन्तु भीतर से इन्द्रियलीन होते हैं। खुद ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं पर अन्य से अब्रह्मचर्य का सेवन करवाते हैं, उसका अनुमोदन करते हैं। फिर जिस लड़के या लड़की का

सम्बन्ध महाराज करवाते हैं वे तो भोग में उतरेंगे, उनके बच्चे–बच्ची भी होंगे। परिणामस्वरूप अनुमोदन का ही नहीं, करवाने का पाप भी साधु को लगेगा। उन्होंने यदि ऐसे 10–12 जोड़े भी सम्पूर्ण जीवन में तैयार किये हों तो उनके संयोग से जो बच्चे होंगे और आगे की पीढ़िया तैयार होंगी उसका पाप किसे ज्यादा लगेगा ? ऐसा साधु यदि साधु न बनकर गृहस्थ रहता तो पाप सीमित होता। ऐसे महाराज..............आत्मलीन नहीं, इन्द्रियलीन होते हैं। ऐसे व्यक्ति स्वयं तो पतन की राह पर चलते हैं, वे औरों को भी उसी राह पर चलाते हैं। कई ऐसे भोले व्यक्ति भी होते हैं जो साधु से भी पूछ लेते हैं और उसे झंझट में डाल देते हैं। धर्म–ध्यान की नहीं इधर–उधर की बातें करते हैं और साधु को पाप का भागी बनाते हैं।

साधु संत तो घर बार छोड़ घोर तप करते हैं तथा अगणित कष्ट सहनकर त्याग का जीवन स्वीकार करते हैं। परन्तु इन छोटी छोटी बातों में उलझकर अपना संसार बढ़ा लेते हैं। इसलिये केशी गौतम के प्रसंग से साधुओं को संदेश दिया है कि वे जैसे आत्मलीन थे वैसे आत्मलीन तुम भी बनो।

शास्त्र में कहा है– तुम इन सब परिधियों से ऊपर उठो और समाधि में आओ। यदि तुम्हारी साधना–संयम दृढ़ है तो तुम्हारे भक्तों का कल्याण अपने आप हो जायेगा। इसकी आवश्यकता उसे है जिसकी संयम साधना कमजोर हो। जिसकी संयम–साधना मजबूत हो उसे जिसकी प्रकार का मंत्र–तंत्र या जादू टोने करने की आवश्यकता नहीं है। तप–संयम की आराधना करिये। भगवान महावीर ने चमेन्द्र को क्या आशीर्वाद दिया था ? जा तेरी यात्रा सफल हो। इधर अरणक श्रावक वीतराग देव का परम भक्त था। देव ने यात्रा करते हुए अरणक श्रावक की नाव को अपनी अंगुली पर अधर में उठा लिया और बोला, "तू एक बार अपने मुंह से कह दे महावीर झूठे हैं, वीतराग का धर्म झूठा है तो मैं तुम्हें निराबाध यात्रा करने दूंगा नहीं तो पानी में डूबो दूंगा।" ऐसी स्थिति यदि आज के व्यक्ति के साथ हो तो ज्यादातर व्यक्ति कह दे "वीतराग झूठे, झूठे और झूठे।" एक बार क्या तीन बार कह दें, अब तो बचालो। अरणक बोला– मैं ऐसा कदापि नहीं कहता, पर अरणक से अन्य लोग कहने लगे– "भाई ! कह दो न तुम्हारे पीछे हमारी भी जान खतरे में पड़ी है।" इधर देव नाव को और ज्यादा ऊपर ले जा रहा था और सभी घबरा रहे थे। पुनः पुनः देववाणी होने पर भी अरणक कहता रहा

उनका धर्म झूठा नहीं, देव, गुरु और धर्म मेरे रग–रग में बसे हैं। तुम हमें नहीं मारोगे, यह शरीर मरेगा कोई बात नहीं। अगले जन्म में मुझे इससे भी बढ़िया मिल जायेगा। मैं अपने देव, गुरु तथा धर्म का त्याग नहीं कर सकता। मेरी श्रद्धा सम्यक्त्व मजबूत है उसे बदला नहीं जा सकता।"

उसकी आत्मिक शक्ति और सच्ची श्रद्धा से देव भी अभिभूत हो गया और दिव्य कुण्डल युगल देकर उनका सम्मान किया। इसे कहते हैं आत्मलीन। धंधा करते हुए भी वह अरणक श्रावक आत्मलीन था। ऐसे संकट में घबराये नहीं। ऐसी श्रद्धा मजबूत हो तो वह क्या नहीं कर सकता। आप कह देते हैं हम तो दोनों की बात सुनेंगे। फिर जो सत्य लगेगा वहीं करेंगे। बड़े ऊंचे आदमी हो भाई तुम तो न्यायाधीश बन बैठे हो। आज श्रद्धा का प्रदर्शन हो रहा है यहां धर्मसभा में। श्रद्धा आत्मा का विषय है। उसे आत्मा में रमाना सीखें।

राजनीति की स्थिति धर्मनीति में भी हो तो श्रद्धा क्या रही ? धर्म भावना कहां रही ? 10 श्रावकों में अरणक का नाम नहीं, जबकि अरणक के लिये ज्ञातासूत्र में पूरा एक अध्याय भरा है वह कह देता। गजब हो गया मैंने तुम्हारी इतनी सेवा की और श्रावकों में नाम भी नहीं ? ऐसी श्रद्धा अरणक की नहीं थी। वह भगवान् के चरणों में पूर्ण समर्पित था।

हममें तप, जप, संयम कुछ न भी हो पर हमारी श्रद्धा यदि मजबूत है तो उस श्रद्धा के माध्यम से तीर्थंकर भी बन सकते हैं। महाराजा श्रेणिक और श्री कृष्ण ने तप, जप नहीं किया, एक नवकारसी भी नहीं की। फिर भी तीर्थंकर गौत्र बांध लिया। अतः सुश्रद्धा के साथ इन्द्रिय और कषाय से हटकर आत्मलीन बनें।



धर्म और विज्ञान

(स्थिति स्पष्ट है कि धर्म और विज्ञान का सम्यक् ज्ञान होने पर दोनों में स्वयंमेव एक हितकारी संतुलन बन जाएगा। एल्विन टाफलर के ये शब्द कि आज के वैज्ञानिक से यदि पूछा जाए कि उसका लक्ष्य क्या है, तो वह यह कहता हुआ पाया जाएगा कि हम एक ऐसी रेलगाड़ी में बैठे हैं, जिसका एक्सीलेटर (गतिउद्दीपक) तो निरन्तर दबता जा रहा है, किन्तु जिसके ब्रेक पर हमारा कोई काबू नहीं है। पता नहीं, क्या होने को है ?)

विश्व का प्रत्येक प्रज्ञाशील मानव शान्ति की खोज में अनवरत प्रयत्नशील है। खोज की इस लालसा के पीछे मानवों ने अनेक साधन ईजाद–आविष्कृत किये हैं। जिस मानव के पास कुछ नहीं था, जो एक जंगली पशु से भी बदतर जीवन जीता था, उस मानव ने आश्चर्यजनक प्रगति की है। बाहरी साधनों से तो वह लैस हो गया है। पर भीतर विकास की ओर उसका ध्यान काफी कम हो गया है। यही कारण है कि वह इतना सब होने के बावजूद अशान्त और उद्विग्न है।

सुख पाने के लिए भौतिक साधनों के आविष्कार से भी कहीं अधिक आवश्यक है आध्यात्मिक विकास। भौतिक दृष्टि से उसने शरीर की छोटी से छोटी आवश्यकता की पूर्ति के लिए नये–नये आविष्कार कर लिये हैं। उसने क्या नहीं बना लिया है, हर अंग की सुविधा के लिए ? इतना ही नही बल्कि शरीर को कम से कम कष्ट हो इसके लिए मानव जैसा ही एक यन्त्र मानव रोबॉट (Robot) तैयार कर लिया है जो उसकी बहुत बड़ी आवश्यकता को पूर्ण कर देता है। जिस वस्तु की आवश्यकता हो लेटे–लेटे या बैठे–बैठे बटन दबाइये तुरन्त हाजिर हो जाती है। रोबॉट मानव के इशारे पर शीघ्र ही बड़े–बड़े कार्य व्यवस्थित रूप में समन्न कर देता है। कहते हैं दत्सून जैसी कम्पनियां केवल 18 व्यक्तियों के सहारे रोबॉट की सहायता से प्रतिदिन 2000 कारों का निर्माण करती है। टेक्सास इन्स्ट्रूमेन्ट्स हेलविट एण्ड पेकार्ड जैसे प्रतिष्ठानों में आज भी 'आदमी' नाम का कोई प्राणी काम नहीं करता है।

आज मानव द्वारा निर्मित जड़ यन्त्रों से ही अधिकांश कार्य हो रहा है। अब तो मनुष्य को ज्यादा सोच–विचार करने की भी आवश्यकता नहीं है

क्योंकि विचारों को भी कम्प्यूटर (Computer) की स्मृति में भर दो और चाहे जब पुनः प्राप्त कर लो। नख से शिख तक व्यक्ति को आराम देने के लिए इतने अधिक साधनों के आविष्कृत होने पर भी उसे जो शान्ति प्राप्त होनी चाहिये वह नहीं हो सकी है, आखिर कारण क्या है ?

समाधान के लिए हमें भगवान् महावीर के सिद्धान्तों की ओर देखना होगा। उन्होंने इसका सुन्दर हल प्रस्तुत किया है। 'आचारांग' में उनकी वाणी मुखरित हुई है "जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया" अर्थात् जो आत्मा है वही विज्ञानवान है, जो विज्ञानवान है वही आत्मा है। उन्होंने आत्मा और विज्ञान दोनों के बीच अभेद सम्बन्ध प्रतिपादित किया है क्योंकि वर्तमान में जितना भी भौतिक विकास परिलक्षित है वह सब आत्मा के विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान पर ही आधारित है। अगर आत्म विज्ञान सक्रिय न हो तो भौतिकता से सम्बन्धित एक भी विकास चरण सामने नहीं आ सकता। आज जितना जो कुछ नजर पड़ रहा है, उसके मूल में आत्म विज्ञान ही है, इसीलिए कहते हैं कि आत्मा और विज्ञान में अभेद सम्बन्ध है।

विज्ञान के जड़त्व सम्बन्धी सारे आविष्कार आत्म ज्ञान पर आधारित है। अगर आत्म सत्ता नहीं है, तो कुछ भी नहीं हो सकता। भौतिकी विज्ञान वेत्ताओं ने आत्मज्ञान की मौलिक सत्ता को छोड़ कर केवल जड़त्व के विकास को ही प्रधानता दी है। वे जड़त्व के विकास में ही निरन्तर आगे बढ़े हैं किन्तु जब आविष्कृत साधनों से उन्हें शान्ति नहीं मिली तब वे मानने लगे कि जड़ता के पीछे भी कोई महासत्ता है जिसके कारण सारा कार्य चल रहा है। वह महासत्ता कैसी है ? बस यहीं इस बिन्दु पर जन्म होता है मनोविज्ञान और परामनोविज्ञान का। अणु विज्ञान के मर्मज्ञ अल्बर्ट आइन्स्टीन ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है कि मुझे विश्वास हो गया कि इस जड़ प्रकृति के भीतर भी एक विकासशील चेतना कार्य कर रही है।

सर ए. एस. एडिंग्टन ने भी यही कहा कि भौतिक पदार्थों के भीतर एक चेतना शक्ति काम कर रही है। ऐसे अनेक वैज्ञानिकों के अन्वेषणों ने मनोविज्ञान को बड़ी तेज गति दी है। मनोवैज्ञानिक आत्मा की परमसत्ता को विशेष सक्रिय करने के लिए पुरुषार्थशील बनें। उनके पुरुषार्थ ने रंग दिखाया और बिना किन्हीं भौतिक साधनों के अनेक आविष्कार सामने आये।

बताया गया है कि रूस में मास्को के तिफिलस नगर में परामनोविज्ञानी फलादोव ने टेलीपैथिक (Telepathic) सम्प्रेषण के माध्यम से करीब डेढ़ हजार

मील दूर बैठे व्यक्ति को सुला दिया और सोये हुए को जगा दिया। वैज्ञानिकों को यह देख बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने जब इसकी गहन छान–बीन की तब उन्हें विश्वास हो गया कि भौतिक साधनों से परे भी कोई महासत्ता (आत्मा) है जो भौतिक साधनों से कई गुना आगे है। संकल्प शक्ति (विल पावर) के ऐसे एक नहीं अनेक चमत्कार सामने आये हैं। क्रेमलिन में स्टालिन के सामने वैज्ञानिक वुल्फमेसिंग ने ऐसे अनेक चमत्कार दिखलाये थे। स्टालिन को तब बहुत आश्चर्य हुआ, जब उनके निवास स्थान पर रात्रि के बारह बजे वुल्फमेसिंग आ खड़ा हुआ। उसने कहा– तुम यहां कैसे आ गये, जबकि मेरे रहने के अनेक कमरे हैं ? कमरे के बाहर सुरक्षा दल तैनात है उस सुरक्षा बल को भी मालूम नहीं है कि मैं किस कमरे में हूँ तब तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ ? क्या सुरक्षा कर्मियों ने तुम्हें भीतर आते हुए नहीं रोका ?

वुल्फमेसिंग बोला– स्टालिन ! बात तुम्हारी सच है किन्तु यह सब मैंने अपनी संकल्प शक्ति के आधार पर किया है। यह तुम जानते हो कि तुमने उस विशिष्ट व्यक्ति बेरिया को 'क्रेमलिन' में कही भी जाने की छूट दे रखी है। मैंने उसी का फायदा उठाया है। मैंने अपने मन में यह निश्चित किया कि 'आइ एम नॉट वुल्फमेसिंग, आइ एम बेरिया'। संकल्प की इस मजबूती के कारण मेरा बाह्य आभा मण्डल ऐसा तैयार हो गया कि मैं तुम्हारे सुरक्षा कर्मियों को बेरिया ही नजर आया, तब वे मुझे कैसे पकड़ते ? दूसरी बात मैंने अपने मन में निर्णय कर लिया कि 'मैं सीधा स्टालिन के पास पहुँचूं तो इस संकल्प ने स्वतः चालित की भांति मुझे तुम्हारे पास पहुँचा दिया। वुल्फमेसिंग ने संकल्प शक्ति के ऐसे कई प्रयोग जनता के सामने प्रस्तुत किये।

चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में भी वैज्ञानिक बेतिस्लाव कापका ने ऐसे अनेक प्रयोगों से भौतिकी वैज्ञानिकों को आत्मा की सत्ता को मानने के लिए बाध्य कर दिया। वह केवल अपने संकल्प से पक्षियों को दूर बैठे ही मार गिराता था।

इस प्रकार विज्ञान जो विशेष रूप से जड़ तत्त्वों को ही प्रमुखता देता था, धीरे–धीरे धर्म की मौलिक व्याख्या को, आत्मा से जुड़ी है, भी मानने लगा है। उसकी खोज में भी वह निरन्तर प्रयत्नशील है। इधर धर्म जिसकी सारी व्याख्या करीब–करीब अध्यात्म पर टिकी है, ने भी जड़ तत्त्वों को प्रासंगिक रूप से प्रतिपादित किया है। भगवान् महावीर के सिद्धान्तों में स्थान–स्थान पर जड़ तत्त्वों की भी पर्याप्त चर्चा आयी है।

जिस प्रकार भगवान् ने जड़ तत्त्वों में पृथ्वीकायिक जीव प्रतिपादित किये हैं, उसी तरह वैज्ञानिक एच.टी. बर्सटापेन ने भी कहा है कि पृथ्वी के एक कण में लाखों जीव हैं। विदेश में स्थित न्यूगिनि पर्वत को आज भी बढ़ता हुआ स्वीकार करते हैं। महावीर ने सचित पानी में असंख्यात जीव बतलाये हैं। वैज्ञानिक स्केवेसिवि ने भी पानी की एक बूंद में 36,450 जीव कहे हैं। यद्यपि महावीर की दृष्टि में वे पानी के जीव नहीं हैं, त्रस जीव हैं। उनकी दृष्टि में तो एक बूंद पानी, असंख्य जलीय जीवों का पिंड है, फिर भी वैज्ञानिक उस सिद्धान्त के निकट पहुँचते जा रहे हैं। वायु में भी भगवान् महावीर ने असंख्य जीव बतलाये हैं। विज्ञान भी आज कह रहा है कि सुई की छिद्र में जितनी जगह है उतने स्थान में वायु के लाखों जीव हैं जिन्हें थेक्सस के नाम से पुकारते हैं।

वनस्पति के सजीत्व का वर्णन तो जैनधर्म में खुल कर आया है, जिसे डॉ. जगदीशचन्द्र वसु ने जनता के सामने स्पष्ट कर दिया है। इसके अतिरिक्त भी जैन दर्शन में परमाणु की अत्यन्त सूक्ष्म एवं गम्भीर विवेचना हुई है। वैज्ञानिकों ने भी परमाणु की गहन खोज की है किन्तु अधिकांश ने उसका विध्वंसात्मक रूप ही प्रतिपादित किया है। दूसरी ओर जैनदर्शन ने उसके सृजनात्मक पक्ष पर भी प्रकाश डाला है। जिस परमाणु से हजारों लाखों प्राणियों को मारा जा सकता है, उस परमाणु से मरते हुए रोगों से आक्रान्त व्यक्तियों को बचाया भी जा सकता है, उन्हें स्वस्थ भी किया जा सकता है। ऐसे–ऐसे रसायनों को मिला कर अणु बम तैयार किये जा सकते हैं, जिनसे जिस किसी क्षेत्र में कोई भी रोग वायुमण्डल में फैलकर मानवों को, प्राणियों को पीड़ित कर रहा हो तो उस क्षेत्र में उसके विलोम परमाणुओं से बनें अणु बम का प्रयोग करने से संक्रामक परमाणु शान्त हो सकते हैं और मानवों की रक्षा हो सकती है, किन्तु दुर्भाग्य से इस ओर आज के वैज्ञानिकों का ध्यान बहुत कम है। अल्बर्ट आइन्स्टाइन की 'थिअरी आफ रिलेटिविटी (Theory of Relatavity) (सापेक्षता सिद्धान्त) भगवान् महावीर के स्याद्वाद से बहुत मेल खाती है।

जैन धर्म में शब्द (ध्वनि) को भी पुद्‌गल (Matter) (मेटर) के रूप में प्रतिपादित किया है और यह स्पष्ट किया है कि उसे सुना भी जा सकता है। आज के भौतिक विज्ञान ने टी.वी., रेडियो, ट्रान्समीटर (वायरलेस) जैसे साधन ईजाद कर इस बात को अब बखूबी स्वीकार कर लिया है। विचारों से

होने वाले आभा–माण्डलिक परिवर्तनों के चित्र भी आज वैज्ञानिकों ने ले लिये हैं। आज का टेलीपैथिक सम्प्रेषण अगर कहा जाए तो महावीर के सिद्धान्त में वर्णित अभिग्रह की व्याख्या के बहुत नजदीक है।

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित बीसियों सिद्धान्तों को आज के विज्ञान ने पुष्ट कर दिया है किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि जैन धर्म के सिद्धान्त विज्ञान पर आधारित हैं। वे तो अपने आप में पूर्ण हैं ही किन्तु कहने का तात्पर्य इतना ही है कि जैन धर्म का आधुनिक विज्ञान के साथ काफी सामंजस्य है। जहां आकर धर्म और विज्ञान में और विज्ञान धर्म में प्रवेश कर गया है। इस सामंजस्य के होते हुए भी दोनों में बड़ा भेद है। आधुनिकतावादी, जो धर्म की गहराइयों को नहीं समझते, मानते हैं कि धर्म तो आँखे मूंद कर मानने की वस्तु है और विज्ञान आँखें खोलकर दिखाने की, अतः वे धर्म को उपेक्षित कर विज्ञान को सहज ही स्वीकार कर लेते हैं। उनकी यह धारणा सही नहीं है। जैन धर्म ने भी आँखें मूंद कर कोई बात मानने के लिए नहीं कहा है। जैनधर्म की हर बात अनुभूति की गहराइयों से गुजर कर ही प्रस्तुत की गयी है। इसीलिए उसकी वैज्ञानिक अवस्था में कोई अन्तर्विरोध नहीं है। किन्तु करें क्या ? आज का व्यक्ति एक ही पहिये से अपने जीवन रथ को हाँकने का प्रयास कर रहा है, इसलिए वह स्थान स्थान पर व्यथित और खिन्न हो रहा है। कोई रथ एक पहिये से नहीं चल सकता। जीवन रथ को गति देने के लिए धर्म एवं विज्ञान दोनों पहियों की आवश्यकता है, साथ ही चाहिये सामन्जस्य। जब तक इन दोनों के बीच कोई रचनात्मक सामन्जस्य नहीं होगा, तब तक कुछ नहीं हो सकेगा। धर्म रहित विज्ञान ने उन्नति तो बहुत की है, किन्तु उसके विस्फोटक नतीजे ही अधिक सामने आये हैं। जिस विज्ञान की उन्नति से मानव को शान्ति मिलनी चाहिये, वह उसे और अधिक अशान्त बनाये हुए है। जिस विज्ञान को मानव ने जीवन विकास के लिए होना चाहिए, वह उसे निरन्तर रसातल की ओर ले जा रहा है। आये दिन विज्ञान के विध्वंसक अणु विकास के कारण व्यक्ति भयाक्रान्त हो रहा है, क्योंकि नागासाकी और हीरोशिमा के काण्ड का उपयोग दूसरों को मारने के लिए कर रहा है। वे उसके लिए भी घातक हैं। दूसरों को मारने वाला भी शान्ति से जी नहीं सकता, क्योंकि वर्तमान युग में भौतिक विज्ञान के विकास ने बड़ा भयानक रूप ग्रहण कर लिया है। विज्ञान के इस पथभ्रष्ट रूप को सही राह पर लाने के लिए महावीर का सिद्धान्त 'जिओ और जीने दो' की आवश्यकता

है। स्वयं जीओ और जीने के दूसरों के अधिकार को मत छीनो। यदि हम दूसरों का अधिकार छीनते हैं तो निश्चित ही एक दिन हमारा अधिकार भी छीन लिया जाएगा। यही हो भी रहा है, इसलिए विज्ञान विकसित होकर भी एक खतरनाक मोड़ पर आ गया है।

घटना अमेरिका की है। थियोडोर रुजवेल्ट (1858–1919) की (जो पहले सेनापति था और बाद में राष्ट्रपति बना) पत्नी एक बार पागलखाना देखने गयी। पागल खाने का संचालक अनुपस्थित था, अतः वह सोच रही थी कि इतने में एक फूर्तीले ग्रेज्युएट (Graduate) युवक ने कहा आइये मैं बतलाये देता हूं। उसकी रौबीली आवाज सुनकर वह उसके पीछे हो गयी। उसने बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रत्येक पागल का परिचय कराया। उसके इस शालीन व्यवहार से श्रीमती रुजवेल्ट बहुत अभिभूत हो उठी और बोली– तुम कौन हो और यहाँ कैसे हो ? युवक बोला– मैं पागल हूं। भर्ती हूँ। यह सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा– तुम्हें कौन पागल कह सकता है ? तब वह बोला– यही तो मैं भी कह रहा हूँ कि मैं पागल नहीं हूँ और बात समझता भी हूँ। फिर भी ये मुझे छोड़ते नहीं हैं। मेहरबानी करके मुझे आप यहाँ से छुड़वा दीजिये, क्योंकि आप भी देख रही है कि मैं पागल नहीं हूँ।

इस पर श्रीमती रुजवेल्ट ने कहा– ठीक हैं, मैं घर पहुँच कर अपने पति से निवेदन करूँगी कि वे तुम्हें मुक्त करवा दें।

युवक बड़ा प्रसन्न हुआ। बातें करते करते दोनों पागल खाने से सीढ़ियाँ उतरने लगे। श्रीमती रुजवेल्ट आगे थी और युवक पीछे। युवक ने धक्का मारते हुए कहा–ध्यान रखना। भूलना मत। अपने पति से कहना कि वह मुझे अवश्य मुक्त करवादें। उन्हें अब समझ में आया कि युवक को पागलखाने में क्यों बंदी बनाया गया। सोचने लगी सब कुछ सही है फिर भी इसकी इस हरकत ने इसे पागल साबित कर दिया है। वे बोली– बस अब सारा राज समझ में आ गया है। जो हाल उस पागल का है, वही हाल आज विज्ञान का है। विज्ञान इतना विकसित हो कर भी कुछ बातें ऐसी नासमझी में कर रहा है कि उसका दुष्प्रभाव समूची मानव जाति पर पड़ रहा है। जब तक 'पागल–पन का यह भूत' मन से नहीं निकलेगा और स्वयं के जीने के साथ दूसरों को जीने के अधिकार के विषय में नहीं सोचा जा सकेगा, तब तक मानव इतना अधिक विकसित होकर भी शान्ति से नहीं जी सकेगा।

अमेरिका की ही एक घटना पढ़ने को मिली कि वहाँ के एक पांच सितारा होटल की पन्द्रहवीं मंजिल से एक व्यक्ति ने कूदकर आत्महत्या कर ली। जब मामले की जाँच पड़ताल की गयी तो उसके कमरे में उसी के हाथ का लिखा एक पत्र मिला जिसमें लिखा था–मैंने जो कुछ चाहा, मिल गया। अच्छी शिक्षा, अच्छी नौकरी, अच्छी पत्नी। सब कुछ मुझे मिल गया। अब मेरे जीवन में जीने की कोई चाह नहीं है, अतः मैं आत्महत्या कर रहा हूँ।

यह रिपोर्ट क्या सिद्ध कर रही है ? स्पष्ट है कि उस व्यक्ति के दिमाग में सिर्फ भौतिक विकास की ही एक तस्वीर थी। उसने केवल बाहर को ही सब कुछ माना। जीवन को एक ही तुला पर तौला, इसलिए यह स्थिति बनी। यदि उसे आत्मधर्म का जरा भी इल्म होता तो यह स्थिति नहीं बनती।

उपलब्धि बाहर से कुछ नहीं, जो भी है वह सब भीतर से है। भीतर से जिसने पा लिया, वह बाहर कुछ पाये, न पाये, कोई फर्क नहीं पड़ता। उस व्यक्ति की तरह कइयों की स्थिति ऐसी ही बनती जा रही है। जब तक विज्ञान पर धर्म का नियन्त्रण नहीं होगा, तब तक हाल यही रहेगा। आज के विज्ञान की रगों में यदि धर्म का रक्त संचारित किया जाए तो उसके सही नतीजे निकल सकेंगे। विज्ञान को सही मायने में समझने के लिए तथा धर्म के साथ उसका तालमेल बिठाने के लिए एक ऐसे प्रज्ञा–पुरुष की आवश्यकता है, जो सही स्थिति उत्पन्न कर सके। भारतीय संस्कृति वैसे भी धर्म–प्रधान संस्कृति रही है। यहाँ त्यागियों और योगियों का प्रधान्य रहा है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए ऐसा लगता है कि भारतीयों पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा है। उन पर भौतिकता हावी होती जा रही है। अगर यही स्थिति रही तो अमेरिका में घटने वाली घटनाएं यहाँ भी होने लगेगी। इससे पहिले कि ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति आये हमें वैसी तैयारी कर लेनी है, जो सम्यक्त्व और सामंजस्य पैदा कर सके ताकि हम अशान्ति और क्लेश से बच सकें।

घटना है कि कहीं पति–पत्नी में गरमागरम बहस हो रही थी। दोनों जोर–जोर से बोल रहे थे। उनके इस शोरगुल को सुनकर एक पड़ौसी चला आया और उन्हें परस्पर लड़ते देख बोला– भाई बात क्या है ? आप लड़ क्यों रहे हैं ? इस पर पत्नी ने कहा– देखिये जी ! मैं कहती हूँ कि मैं अपने लड़के को डॉक्टर बनाऊँगी क्योंकि मैं बीमार बनी रहती हूँ। चूँकि जब घर में ही डॉक्टर हो जाएगा तब मुझे कहीं और जाना नहीं पड़ेगा। वह घर बैठे ही

इलाज कर देगा। डॉक्टरी से पैसा भी कमा लेगा। इतने में पति बीच में ही बोल पड़े– नहीं साहब, मैं तो लड़के को वकील बनाना चाहता हूँ। क्योंकि मेरा पेशा वकालात का है। वह मुझे सहयोग देगा और पैसा भी कमा सकेगा। बस इसी बात को लेकर हममें झगड़ा हो रहा है।

समझदार पड़ौसी ने कहा– ठीक है आप लोग निर्णय करने से पहिले अपने बेटे को बुलाये और उससे पूछें कि आखिर वह खुद क्या बनना चाहता है? डाक्टर या वकील ? जो वह चाहेगा महत्त्वपूर्ण वही होगा। इस पर दोनों बोल उठे– भाई साहब ! अभी तो लड़का पैदा ही नहीं हुआ है, किससे पूछें ? पड़ौसी मुस्कराकर लौट गया।

यह तो थी उन दोनों की अज्ञानता कि वे अकारण झगड़ रहे थे, पर आज के अधिकसंख्य लोग भी न तो धर्म को पूरी तरह जान पाये हैं और न विज्ञान के सदुपयोग की पूरी जानकारी हमारे पास है। इसीलिए परस्पर संघर्ष की स्थिति बनी हुई है। ऐसी विषम स्थिति में मानव मात्र में ऐसा विवेक जगाना होगा कि वे एक दूसरे को समझे और एक दूसरे के नजदीक आये। अच्छा तो यह हो कि हम विज्ञान को धर्म की कसौटी पर कसें और धर्म को विज्ञान की, ताकि कोई रास्ता बन सके। प्रो. हेनरी के वे शब्द कि जो शख्स यह सोचता है कि विज्ञान और धर्म में कोई वास्तविक विरोध है उसे मनोविज्ञान का कम ज्ञान है, या वह धर्म से अनजान है।

उक्त स्थिति का स्पष्ट तकादा है कि धर्म और विज्ञान का सम्यक् ज्ञान होने पर दोनों में स्वयंमेव एक संतुलन बन जाएगा। एल्विन टॉफलर के ये शब्द कि आज के वैज्ञानिक से अगर पूछा जाए कि उसका लक्ष्य क्या है तो वह यह कहता हुआ पाया जाएगा कि हम एक ऐसी रेलगाड़ी में बैठे हैं जिसका एकस्लरेटर (गति–उद्दीपन) तो निरन्तर दबता जा रहा है किन्तु जिसके ब्रेक पर हमारा कोई काबू नहीं है पता नहीं क्या होने को है ?

भौतिक विज्ञान का हाल आज यही है। वह आविष्कार तो धड़ल्ले से किये जा रहे हैं किन्तु उनके इस्तेमाल पर उसका कोई काबू नहीं है। इस ओर उसका कोई ध्यान ही नहीं है।

सही स्थिति में ऐसे आविष्कारों से हम शान्ति कैसे प्राप्त कर सकेंगे ? अगर शान्ति पाना है तो बिना ब्रेक के विज्ञान रथ पर हमें धर्म या नीति का ब्रेक लगाना होगा। 'जियो और जीने दो' के सिद्धान्त को पुनरुज्जीवित करना होगा।

विज्ञान और धर्म के सामंजस्य की सार्थकता को समझते हुए यदि व्यवहारिक जीवन में उसका संतुलित उपयोग किया जाएगा तो वह दिन दूर नहीं है जब नरक जैसी भयानक इस दुनियां में स्वर्ग उतर आये। मनुष्य के लिए असंभव कुछ भी नहीं है किन्तु आवश्यकता है सही दिशा में सम्यक् पुरुषार्थ की।



संवत्सरी की विश्व के लिये उपयोगिता

संवत्सरी पर्व, जैनियों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पर्व है। इस दिन लाखों करोड़ों जैनी पूर्ण रूप से अनशन रख सभी प्रकार के भोजन का परित्याग करके बीते वर्ष में हुई भूलों की शुद्धि करते हुए सभी वैर भावों को भूलाकर संपूर्ण प्राणी वर्ग से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

संवत्सरी पर्व एक ऐसा पर्व है जिसके माध्यम से सम्पूर्ण विश्व के साथ टैलीपेथी (Telepathy) मानसिक रूप से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। जैन धर्म के प्रवर्तक भगवान् महावीर ने ढाई हजार वर्ष पहले ही यह स्पष्ट रूप से उद्घोषित कर दिया था कि किसी भी मानसिक दृष्टि से की गई हिंसा भी हिंसा की कोटि में आती है। इसलिए संवत्सरी के दिन करोड़ों जैनी संध्या के समय एक साथ निम्न सूत्र के उच्चारण के द्वारा विश्व के साथ मैत्री संबंध स्थापित करते हैं–

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ति मे सव्व भूएसु, वैरं मज्झं न केणइ।।

संसार की समस्त आत्माओं से क्षमायाचना करता हूँ। वे सभी जीव मुझे क्षमा प्रदान करें। मेरा समस्त आत्माओं के साथ मैत्री भाव है, किसी के साथ भी वैरभाव नहीं है। सभी का कल्याण हो, हित हो, मंगल हो।

उपवास के साथ किया गया करोड़ों जैनियों का यह चिन्तन विश्व में मानसिक पुद्गलों की दृष्टि से एक शुद्ध पर्यावरण का सृजन करता है जिससे विश्व में जीने वाले सभी इंसान, उसमें भी भारतीय जनजीवन के लिए मानसिक शांति हेतु वह वरदान सिद्ध होता है।

आज भारत एक गरीब देश माना जाता है लेकिन यहाँ भी जनता के पास जितनी मानसिक शान्ति है उतनी, इससे कई गुना अधिक ऐश्वर्य सम्पन्न देशों की जनता के पास नहीं है। इसका कारण है कि वहाँ इस प्रकार का अध्यात्म ऊर्जा को बहाने वाला कोई पर्व प्रचलित नहीं है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि आप जिस प्रकार का चिन्तन दूसरों के प्रति करोगे, उसका प्रभाव अदृश्य रूप में सम्बन्धित व्यक्ति पर पड़ेगा। मनोवैज्ञानिक जगत् में इस पर अनेक प्रयोग हो चुके हैं। मास्को के त्रिफिलिस नगर में वैज्ञानिक फलादोव ने

अपने मन के चिन्तन के बल पर 1500 किलोमीटर दूर स्थित व्यक्ति से टैलीपैथी (Telepathy) संप्रेषण करके बैठे हुए उस व्यक्ति को सुला दिया और सोये हुए व्यक्ति को जगा दिया था। इसी प्रकार अरब देश में एक यूरीलंगर नामक व्यक्ति हुआ जिसने मन की सोच से सामने पड़ी पत्थर की मूर्ति को अपने कन्धे पर बैठने के लिए विवश कर दिया। चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में बेतिस्लाव काक्का ने अपने मानसिक संकल्प के बल पर पक्षियों की प्राण ऊर्जा खींचकर वैज्ञानिक जगत् में एक चमत्कार सा कर दिया था।

इसी तरह निकोलिएव एवं कामिनिएव के टैलीपैथी (Telepathy) संप्रेषण के तो अनेक उदाहरण हैं।

ये सब घटनाएँ इस बात का प्रमाण है कि हम जिस किसी प्रकार का चिन्तन करते हैं उसका प्रभाव सम्बन्धित व्यक्ति पर अवश्य होता है। सब जैनी लोग 24 घंटे निराहार रहकर एक साथ प्रभु से प्रार्थना करते हैं। सभी आत्माओं के प्रति हित एवं कल्याण की कामना करते हैं, उसके शुद्ध परमाणु पूरे विश्व में प्रसारित होकर प्राणियों को बहुत हद तक मानसिक शान्ति प्रदान करते हैं।

वर्तमान युग में व्याप्त ध्वनि प्रदूषण एवं वायु प्रदूषण से भी ज्यादा खतरनाक बनता जा रहा है– मानसिक प्रदूषण। विश्व के करीब 5 अरब लोगों में से अधिसंख्यक लोगों के विचार दिन के 24 घंटों में से ज्यादातर समय में हिंसात्मक, द्वेषपूर्ण, स्वार्थपूर्ण, मोहपूर्ण ही अधिक मिलेंगे। जिन विचारों से सना परमाणु– मण्डल पूरे विश्व में फैलकर अशांति का, मानसिक तनाव का वातावरण सृजित कर रहा है। ऐसे वातावरण को दूर करने में संवत्सरी पर्व का बहुत बड़ा योगदान है। जब हिंसापूर्ण विचारों से हिंसात्मक स्थिति, मोहपूर्ण विचारों से मोहात्मक भाव, विषमतापूर्ण विचारों से वैमनस्य फैल सकता है तो अहिंसा, समता, मैत्रीपूर्ण विचारों से निश्चितरूपेण शान्ति का संचार होता है।

अमेरिका के न्यूयार्क शहर की सरकारी स्टेट बैंक में एक ऐसी ही महत्त्वपूर्ण घटना घटी थी। जिसका "न्यूयार्क टाइम्स" पत्रिका में प्रकाशन भी हुआ था। स्टेट बैंक के छः काउण्टरों से प्रतिदिन करोड़ों का लेनदेन होता था। लेकिन सबसे ज्यादा भीड़ मिस्टर लोम्यु जॉन के काउण्टर पर ही लगी रहती थी। प्रतिदिन ऐसा देखकर बैंक मैनेजर को आश्चर्य हुआ कि अन्य

काउण्टरों के खाली होने पर भी सबसे ज्यादा भीड़ लोम्यु जॉन के काउण्टर पर ही क्यों ? लोग क्यों नहीं दूसरे काउण्टरों से अपना लेनदेन कर लेते हैं ? क्यों यहीं घण्टों घण्टों खड़े रहकर अपना समय बरबाद कर रहे हैं ? मैनेजर ने भीड़ में से एक व्यक्ति को अपने ऑफिस में बुलाकर इसका कारण पूछा तो वह बोला–"लोम्यु जॉन के हाथ से पैसा लेने पर वह पैसा हमें बरकत देता है। ऐसा हमने कई बार अनुभव करके देखा है।" मैनेजर को यह बात नहीं जँची। उसने दूसरे व्यक्ति को बुलाकर भी यही बात पूछी कि तुम इसी काउण्टर से लेन देन क्यों करते हो। तब उसने कहा कि इस व्यक्ति से पैसा लेने पर हमारे सारे काम सरल हो जाते हैं। तीसरे व्यक्ति से पूछा तो उसने बताया–" एक बार इस लोम्यु जॉन से पैसा लिया, पर्स में रखा, अचानक वह पर्स खो गया तथा फिर सही सलामत वापिस मिल गया।" चौथे व्यक्ति से पूछा तो वह कहने लगा–" मैं वैश्यागामी था। पर एक दिन जब लोम्यु जॉन के काउण्टर से पैसा लिया और वैश्यालय जाने लगा, यकायक मेरा विचार बदल गया, मैंने वेश्या के यहाँ जाना ही छोड़ दिया। स्वप्न में मुझे संकेत मिला कि यह चमत्कार बैंक के कैशियर का है।"

मैनेजर ने उस भीड़ में से एक महिला को भी बुलाया, जिसका नाम था रीटा हेबर्थ। उससे भी वही सवाल पूछा तो वह कहने लगी– मैं अपने पति को छोड़कर अपने प्रेमी के बहकावे में आकर बैंक से अपना सारा पैसा लेकर भागने जा रही थी। लोम्यु जॉन के हाथों से पैसा लेते ही मेरा दिमाग घूम गया। अन्दर से कोई आवाज आई– तुम्हारा प्रेमी तुम्हारा पैसा खर्च हो जाने पर तुम्हें धोखा देगा, फिर तुम क्या करोगी ?" तुरन्त ही मैंने वे रुपये वापस बैंक में जमा करवाये और शीघ्र घर चली आई। यह चमत्कार बैंक के कैशियर का है।

इतना सब कुछ सुन लेने के बाद मैंनेजर ने लोम्यु जॉन को ही बुलाकर पूछा कि तुम्हारे काउण्टर पर इतनी भीड़ खड़ी रहने का राज क्या है। लोम्यु जॉन ने कहा– इसका राज तो मुझे पता नहीं। पर मैं वर्षों से ही हर इन्सान से मिलते वक्त एक ही भावना भाता हूँ– " मे गॉड ब्लेस यू।" (May God Bless you) अर्थात् भगवान् तुम्हारा कल्याण करे। मेरी यह कामना काउण्टर पर व्यक्तियों को रुपये देते व लेते वक्त भी बनी रहती है। बस, इसके अलावा मैं कुछ नहीं जानता।

बैंक मैनेजर यह समझ गया कि लोम्यु जॉन की शुभ भावना का ही परिणाम है कि सामने वाले के दूषित विचार भी सही बन जाते हैं। उसके बाद तो बैंक मैनेजर ने "मे गॉड ब्लेस यू" यह वाक्य मुख्य बैंक द्वार, खिड़कियों व आलमारियों आदि पर लिखवा दिया ताकि इसे पढ़कर सभी के विचारों में पवित्रता आए।

ये सब घटनाएँ इस बात का पक्का प्रमाण देती है कि आपके शुभ विचार सामने वाले को किस हद तक प्रभावित कर रहे हैं। जब एक व्यक्ति की सोच भी इतनी प्रभावी हो सकती है तो संवत्सरी पर्व के दिन तो लाखों जैनी अनशन रखकर एक साथ विश्वमैत्री का चिन्तन करते हैं। जिसका पूरे विश्व में प्रभाव क्यों नहीं पड़ेगा ? इस तरह जैनियों का संवत्सरी पर्व व्यक्तिगत हित के लिए ही न होकर सम्पूर्ण विश्व के हित के लिए है।

जिस प्रकार वायु प्रदूषण से विश्व को बचाने हेतु वनस्पति का संरक्षण आवश्यक है और यही कारण है कि हर देश की सरकार अधिक से अधिक पेड़ लगाने के लिए जनता को प्रेरणा दे रही है। उसी प्रकार मानसिक प्रदूषण से विश्व की रक्षा के लिए संवत्सरी पर्व को विश्व व्यापी स्तर पर मनाना जरूरी है।

जैन शास्त्रों में संवत्सरी पर्व मनाने का विधान चातुर्मास प्रारम्भ से पचासवें दिन का है। भाद्रशुक्ला पंचमी के दिन संवत्सरी मनाई जाती है किन्तु कभी तिथि घट बढ़ के कारण संवत्सरी आगे–पीछे भी हो जाती है। इस विषयक मत–विभिन्ता के कारण जैनमतावलम्बियों में यह संवत्सरी पर्व अलग अलग दिनों में दो–तीन बार मनाया जाता है। इससे इसकी एकरूपता विखंडित हो रही है। समस्त जैन समाज को चााहिए कि वे अपना–अपना आग्रह छोड़कर संगठित होकर एक ही दिन संवत्सरी मनाएँ।

इस वर्ष संवत्सरी 9 सितम्बर को मनाई जा रही है। उससे पहले 2 सितम्बर से पर्यूषण पर्व प्रारंभ हो रहा है। सात दिन संवत्सरी पर्व को मनाने के लिए पूर्वाभ्यासं रूप में हैं, आठवें दिन संवत्सरी मनाई जाती है। इसीलिए इस पर्व को अष्टाह्विका पर्व भी कहते हैं। आईये, आप और हम सभी विश्वशान्ति के प्रतीक इस पर्व पर प्रभु से प्रार्थना करलें कि हे प्रभु ! विश्व में अधिक से अधिक अहिंसा का प्रसार हो। सभी शान्ति के साथ रहें। प्रेम से रहें। नैतिकता मानवता का उत्थान हो। परस्पर प्रेम, वात्सल्य, समता, सहिष्णुता का विस्तार हो। 

तीर्थंकर महावीर और उनका क्रान्ति पथ

भगवान् महावीर का जन्म ईसा पूर्व छट्ठी शताब्दी में हुआ था। उस वक्त चीन में लाओत्से और कांगफर्यूल्सी, यूनान में पाइथोगोरस, अफलातून और सुकरात, इरान में जरथुष्ट, फिलिस्तीन में जिरेमिया और इर्जाकेल जैसे प्रबुद्ध विचारक भी हुए थे।

जिस समय भारत में महावीर का आविर्भाव हुआ था, उस समय देश विचित्र हालात् के दौर में गुजर रहा था। धर्म के नाम पर यज्ञों में नर एवं पशुओं की हिंसा की जा रही थी "स्त्री शुद्रौना धीयतां" स्त्री और शुद्र को शास्त्र पढ़ने का ही अधिकार नहीं था। जिन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता था। जातिवाद का जबर्दस्त बोल बाला था। धर्म गुणात्मक न रहकर व्यक्ति पूजक वं निस्सार क्रियाकाण्डों से विकृत बनता जा रहा था। मानवीय दास प्रथा भी खुलकर सामने आ रही थी। सामन्त शाही शासन ने देश को भयाक्रान्त बना रखा था। ऐसे विचित्र वातावरण के बीच भगवान महावीर का जन्म हुआ था। वे कुण्डलपुर के निवासी थे, उनकी माता का नाम त्रिशला और पिता का नाम सिद्धार्थ था। जिनके पास भौतिक ऐश्वर्य की किसी भी प्रकार की कमी नहीं होने पर भी उनके अन्तर में एक विचित्र प्रकार की रिक्तता की अनुभूति होती रहती थी। जिसकी संपूर्ति बाह्य साधनों से संभव नहीं थी। वह तो आन्तरिक चेतना के विकास से ही पूर्ण की जा सकती थी। बस यही एक कारण था कि महावीर ने सब कुछ परित्याग करके पूर्ण साधनामय जीवन स्वीकार कर लिया था। निरन्तर 12½ वर्ष की साधना के अनन्तर उन्होंने समाधि के चरम छोर पर पहुंच कर परमज्ञान प्राप्त कर लिया था।

परमज्ञान की उपलब्धि के साथ ही जब उन्होंने दुनियां के चारों तरफ देखा तो अनन्तानन्त आत्माओं को अज्ञान के कारण उत्पीड़ित, अशांत एवं क्लेश के वातावरण में जीते देखा। तब उनके अन्दर करुणा स्त्रोत फूट पड़ा। वह करुणा इतनी उमड़ी, इतनी उमड़ी कि वे एक पल भी गंवाए बिना उन आत्माओं को सुखमय बनाने के लिए जीवन के शाश्वत सत्यों को उद्घाटित करने वाली जनसन्तापहारी, महामंगलकारी देशना प्रारंभ की। जब देशना देना प्रारंभ हुआ। फिर रुकना क्या था। प्रभु महावीर ने गांव–गांव, नगर–नगर

जाकर देशनाएं प्रदान की, वे अपनी जिन्दगी के अन्तिम क्षणों तक देशना देते ही रहे। उन्होंने जन्मना जाति के स्थान पर कर्मणा जाति को प्रधानता दी। कहा ही नहीं, अपितु करके दिखाया। अपने धर्म संघ में प्रभु ने अभय कुमार जैसे बुद्धि के निधान क्षत्रियवंशी राजकुमार को, इन्द्रभूति जैसे क्रियाकाण्डी ब्राह्मण को, शालिभद्र जैसे ऐश्वर्यशाली वैश्य को, हरकेशी जैसे चाण्डाल को एक समान अधिकार प्रदान किया। तात्कालीन युग में यह एक ऐसी क्रान्ति थी जो विशुद्ध चेतना, सम्पूर्ण निर्भीकता एवं अमित साहस के बिना कथमपि संभव नहीं थी। दासता के बंधन में बन्धी चन्दनबाला जैसी महिला को भी बंधन से मुक्तकर धर्म संघ में स्थान प्रदान कर नारी की दासता पर करारा प्रहार किया। हिंसक यज्ञ के स्थान पर अहिंसक यज्ञ की प्रतिष्ठा की। सबको अपने ही अस्तित्व के साथ जीने की उद्घोषणा की। क्रान्ति के इस तुमुल शंखनाद का भी तीव्र विरोध हुआ। किन्तु भगवान महावीर तो पूर्ण निर्भीकता के साथ आगे बढ़ते चले गये। आखिर क्रान्ति के स्वर, मानव समाज के बीच अपनी उपयोगिता की प्रतिष्ठा बनाते चले गए। यदि क्रान्ति सत्य के अटल सिद्धान्तों पर खड़ी हो तो अवश्य ही वह विस्तार को पाती चली जाती है। जिस क्रांति के पीछे सिद्धान्त कम, स्वार्थ ज्यादा हो, वह क्रान्ति सही क्रांति नहीं मानी जाती। ऐसी क्रान्तियां समय के साथ ही विलुप्त होती चली जाती है।

भक्त, भक्त ही रहेगा वह भगवान् नहीं बन सकता। इस अवधारणा से हटकर महावीर ने स्पष्ट रूप से उद्घोषित किया कि भक्त भगवान बन सकता है। इतना ही नहीं उन्होंने आगे कहा कि भक्त ही भगवान बनता है। हर आत्मा में परमात्मा की शक्ति सन्निहित है। आवश्यकता है सत्पुरुषार्थ की, जिसके बल पर परमात्म रूप उजागर किया जा सकता है।

उन्होंने तात्कालीन युग में चल रही व्यक्ति पूजा पर जबर्दस्त तरीके से प्रहार करते हुए, गुण पूजा को प्रतिष्ठापित किया। महावीर ने यहां तक कहा कि तुम मुझे भी मत पूजो। मुझमें रहे वीतरागत्व को पूजो। जहां भी तुम्हें वीतरागत्व नजर आए उसे ही तुम पूजो। व्यक्ति पूजा खतरनाक हो सकती है इसलिए महामंत्र नवकार के अन्दर किसी का भी नाम न देकर मात्र गुणों की उपासना की बात कही है। आज धर्म के नाम पर जितना भी विभाजीकरण हो रहा है वह गुण पूजा को गौण करके व्यक्ति पूजा को प्रधानता देने के कारण हो रहा है।

महावीर ने हिंसा की क्रूर भावना को जड़ मूल से उखाड़ने के लिए अहिंसा का तुमुल उद्घोष किया था। उन्होंने कहा कि हिंसा चाहे धर्म के नाम से की जाय या अधर्म के नाम पर हिंसा तो हिंसा ही रहेगी। यह भी सुनिश्चित है कि रक्त से सना कपड़ा, रक्त से कभी नहीं धुल सकता। हिंसा से उत्पन्न होने वाली क्रूरता को हिंसा से कभी भी नहीं मिटाया जा सकता। उसे तो अहिंसा से ही समाप्त किया जा सकता है। यही कारण था कि उन्होंने चलते फिरते पशु–पक्षी और मनुष्यों की रक्षा की ही बात नहीं की, अपितु पृथ्वी, पानी आदि का भी संस्पर्श नहीं करते। आज के वैज्ञानिकों ने भी पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि में जीवत्व को प्रमाणित किया है। महावीर के द्वारा प्रतिपादित एक नहीं अनेकों सिद्धान्त मात्र श्रद्धा का कारण ही न होकर वैज्ञानिक ढंग से भी सिद्ध है। महावीर का यह संदेश **"जीओ और जीने दो।"** जितना सा भी जीवन में उतार लिया जाय तो भी जिन्दगी के सारे संघर्ष समाप्त हो सकते हैं। सारे राष्ट्र शांति से, निर्भयता के साथ जी सकते हैं।

महावीर ने आचरणीय सूत्रों में मुख्य रूप से पांच सूत्र बतलाए हैं–"अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह"। उनका कहना है कि धर्म सहज रूप से पलता है या पाला नहीं जाता है। अहिंसा के लिए पुरुषार्थ की जितनी आवश्यकता नहीं है, जितनी की हिंसा के लिए आवश्यकता है। हिंसा की जाती है, उनके लिए विकल्प बनाने पड़ते हैं, जबकि अहिंसा तो स्वतः ही पल रही है। झूठ बोलने के लिए विकल्प बनाने पड़ते हैं, बहुत सोचना पड़ता है, जबकि सत्य अपने आप प्रस्फुटित होता है। बच्चा विकल्प नहीं बना सकता, इसलिए वह सत्य ही बोलता है। चोरी करनी पड़ती है, पर अचौर्य धर्म अपने आप पलता है। ब्रह्मचर्य स्वतः ही पलता जाता है, जबकि सेक्स (अब्रह्मचर्य) में उतरना पड़ता है। अपरिग्रही तो व्यक्ति होता ही है। परिग्रही बनने के लिए सारे ताम–जाम एकत्रित करने पड़ते हैं। अहिंसा, सत्य, आदि धर्म तो आत्मा के सहज गुण हैं, इसलिए वे आत्मा के साथ ही रहते हैं, और जब तक उनकी साथ में रहने की स्थिति बनी रहती है, आत्मा शांत–प्रशान्त रहती है। जब भी इन्सान हिंसा, असत्य आदि करने लगता है, तब तब उसमें दुःख और अशांति बढ़ने लगती है। आप देखेंगे, यदि व्यक्ति अहिंसा, सत्य में जितना संयम रहता है, उतना हिंसा, असत्य आदि में नहीं रहता है। हिंसा आदि तो कुछ क्षण के लिए ही वह करता है, बाकी अहिंसा आदि धर्म ही उसके साथ रहते हैं क्योंकि वही उसके मौलिक गुण है। पानी का स्वभाव शीतल रहता

है, अतः ठण्डा ही रहता है। किन्तु जब आग का सम्पर्क लगता है तो उष्ण हो जाता है। जो पानी शीतलता देने वाला था, वह दूसरों को जलाने लगता है किन्तु ज्यों ही पानी से उष्णता हट जाती है तो वह पुनः शीतल हो जाता है। महावीर ने स्वभाव में जीना ही धर्म बतलाया है।

राष्ट्र संत विनोबा भावे ने एक बार स्व. जैनाचार्य श्री गणेशीलाल जी म.सा. को कहा था कि जैनी नाम धराने वाले महावीर के अनुयायी तो कम होंगे पर महावीर के सिद्धान्तों को मानने वालों की दुनियां में कोई कमी नहीं है। उन्होंने कहा कि महावीर के अहिंसा आदि सिद्धान्त तो दूध में मिश्री की तरह पूरे विश्व में मिले हुए हैं। जिस प्रकार दूध में मिश्री अलग से दिखाई नहीं देती, पर दूध को तो मीठा कर देती है, उसी प्रकार महावीर के सिद्धान्त मानने वालों की तो कोई कमी नहीं है, पर महावीर के नाम धारी अनुयायी जैनियों की कमी हो सकती है।

महावीर कभी भी वर्ण से बंधे हुए नहीं रहे। वे संपूर्ण मानवजाति से ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के प्राणी जगत् से जुड़े हुए हैं। यही कारण है कि उनके धर्म संघ में सभी जाति–पांति के लोगों को निराबाध रूप से प्रवेश दिया जाता था। उनकी देशना, देव–दानव–मानव ही नहीं, पशु–पक्षी, सर्प–नेवले–शेर–बकरी भी शत्रुता के भावों को भूलकर मैत्री भाव के साथ उपपात में बैठकर सुनते थे। परम शांति का अनुभव करते थे। महावीर स्वयं काश्यप गौत्रीय क्षत्रिय थे। ये ही नहीं, जैनियों के चौबीस ही तीर्थंकर क्षत्रिय हुए हैं। महावीर के सारे ही गणधर ब्राह्मण थे। किन्तु आज महावीर के धर्म को जातिवाद के साथ जोड़ने वाले महावीर के साथ बहुत बड़ा अन्याय कर रहे हैं। महावीर का अस्तित्व विश्व व्यापी अस्तित्व रहा है। उनके हृदय में विश्व के समस्त प्राणियों पर समान रूप से प्रेम भाव था। रजनीश ने साफ शब्दों में कहा है "महावीर से ज्यादा गैर साम्प्रदायिक चित खोजना कठिन है। क्योंकि सारी पृथ्वी पर ऐसा दूसरा आदमी नहीं हुआ, जिसके पास इतना गैर साम्प्रदायिक चित्त हो।"

तीर्थंकर महावीर ने एक महत्त्वपूर्ण संकेत यह भी दिया था कि "पाप से डरो–पापी से नहीं।" यही कारण था कि उनके साधु संघ में छः पुरुष और एक स्त्री की हत्या करने वाले अर्जुनमाली को भी स्थान मिला। भयंकरतम चोरियां करने वाला रोहिणेय चोर, प्रभव चोर को भी प्रवेश मिला। वर्षों तक कोशा वेश्या के प्रकोष्ठ में रहने वाले स्थूलिभद्र को भी सम्मान के साथ प्रवेश

दिया गया क्योंकि उनका जीवन बदल चुका था। वे महावीर के उपदेश से संपूर्ण रूप से सदाचारी बन चुके थे।

सारे ही विग्रह और विवादों को समाप्त कर समन्वय मूलक जिन्दगी जीने के लिए महावीर ने अनेकान्तवाद बनाम स्याद्वाद का सिद्धांत दुनियां के सामने प्रस्तुत किया। जिसे सहज रूप से समझ पाना उस समय के सामान्य इन्सानों के बूते से बाहर था। कई दार्शनिकों ने तो महावीर के स्याद्वाद को संशयवाद कहकर के अपमानित करने का भी प्रयास किया। जबकि वह संशयवाद न होकर संशय को उच्छिन्न कर वस्तु सत्य को स्पष्ट करने वाला विलक्षण दर्शन है। महावीर ने कहा– सत्य को संपूर्ण रूप से समझने के लिए सत्यांशों को भी समझना जरूरी है। जब तक सत्य के अंशों को नहीं समझा जायेगा, तब तक सत्य को भी नहीं समझा जा सकता है। महावीर ने सत्य को समझने के लिए सात कोण बतलाए हैं– 1. स्यात् है भी 2. स्यात् नहीं भी 3. स्यात् है भी, नहीं भी 4. स्यात् अनिवर्चनीय है 5. स्यात् है और अनिवर्चनीय है 6. स्यात् नहीं है और अनिर्वचनीय है 7. स्यात् है भी, नहीं भी और अनिवर्चनीय है।

सामान्यतया समाज में जो झगड़ा या विवाद होता है, वह एकांगी दृष्टिकोण को लेकर होता है। यदि विवाद के समस्त पहलुओं को अच्छी तरह से समझाया जाय और मिथ्या अंशों को छोड़कर, सत्यांशों को पकड़ा जाय तो कभी संघर्ष होवे ही नहीं। आइंस्टीन का रिलेटिविटि (सापेक्षवाद) महावीर के अनेकान्तवाद पर ही टिका हुआ है। आचार में अहिंसा और विचारों में अनेकान्त की प्रतिष्ठा कर महावीर ने मानवीय चेतना को अन्दर बाहर दोनों तरफ से झकझोरा है। यह जैन समाज का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि जिसके पास विवादों को समाप्त करने वाला अनेकान्त दर्शन होने पर भी वह विवाद के कटघरों में खड़ा है।

महावीर ने जो कुछ कहा, पहले उसे अपनी जिन्दगी की प्रयोगशाला में प्रयोग करके कहा है। कहने के पहले वे उस पर जीते थे। उनके मन में दुष्टों से प्रतिकार था। प्रतिशोध की भावना न होकर उनके दिलों को बदलना ही उनका ध्येय था। चण्डकौशिक जैसे सर्प के विष को अमृत में रुपान्तरित कर महावीर ने शत्रुता को भी मित्रता में परिणित कर दिया था। ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण उनकी जिन्दगी के साथ जुड़े हुए हैं।

महावीर का ज्ञान और उनका धर्म का प्रवर्तन कुछ विलक्षण ही प्रकार का था। उन्होंने आत्म जिज्ञासुओं को कभी भी अपना अनुगामी बनने की प्रेरणा नहीं दी। उन्होंने अनुगामी नहीं, सहगामी बनने के लिए कहा। उनका सदा यह कहना रहा है कि तुम मेरे पीछे मत चलो, बल्कि मेरे साथ चलो। अनुगामी नहीं सहगामी बनो। कार को चलाने के लिए व्यक्ति को चालक के बराबर बैठना होता है, तभी वह खुद ड्राईवर बन सकता है। विद्यार्थी को अध्यापक की पूजा या प्रशंसा नहीं करनी होती है। बल्कि वह जो पढ़ाता है उसे आत्मसात् करना होता है। अध्यापक की पढ़ाई के साथ पढ़ाई करनी होती है। ऐसा विद्यार्थी ही एक दिन अध्यापक बन जाता है। यही कारण था कि महावीर ने भक्तों को भगवान् बनाने के लिए अनुगामी नहीं सहगामी बनने के लिए कहा था। किन्तु दुःख इस बात का है कि आज भी अधिसंख्यक व्यक्ति, महावीर की सहगामी बात को न समझकर, उनके साथ न चलकर उनकी मात्र पूजा में ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री मान बैठे हैं। ऐसे व्यक्ति महावीर कैसे बन सकते हैं। महावीर बनने के लिए सहगामी बनना होगा। महावीर बनने के लिए महावीर के साथ चलना होगा। भगवान महावीर का निर्वाण कार्तिक मास की अमावस्या की रात्रि में हुआ था। जिस समय चारों तरफ घोर अंधेरा ही अंधेरा था। उस समय प्रभु की आत्मा अवशेष कर्मों को भी क्षय करके दीप रूप इस शरीर से ऊपर उठकर केवल ज्योति रूप पूर्ण प्रकाशमय हो गई। क्योंकि ज्योति जब तक दिये से रहती है तब तक दिये तले अंधेरा रहता है। किन्तु वही ज्योति जब दीये में ऊपर उठ जाती है तब अंधेरा समाप्त हो जाता है। केवल प्रकाश रह जाता है। महावीर की आत्मा अमावस्या की रात्रि को सर्व कर्म मुक्त हो शाश्वत सिद्धि पा गई थी। मृत्यु को भी महोत्सव के रूप में मनाया गया। घर–घर दीप जलाये गये क्योंकि प्रभु परम पदम जो पा चुके थे। जब तक इन्सान कामनाओं में, विषय वासनाओं में, राग द्वेष प्रवंचनाओं में उलझा रहेगा तब तक उसके दीप के नीचे अंधेरा रहेगा। सुख के साथ दुःख बना ही रहेगा। जिस दिन भी वह इन उपाधियों से सर्वथा दूर हट जाएगा, उस दिन वह दुःख रहित सुख को प्राप्त कर लेगा। इसलिए दीपावली को बाहरी दीपों को प्रज्वलित न कर आत्मा के दीप को प्रज्वलित करने का प्रयास करें।

महावीर को निर्वाण हुए 2500 वर्ष से भी कुछ अधिक वर्ष हो गए हैं। महावीर इतिहास की दृष्टि से अतीत के युग की घटना हो सकती है। किन्तु

भव्य साधकों के लिए वह अतीत की न होकर अनागत (भविष्य) की घटना ही है। क्योंकि वह भी अपनी जिन्दगी के किसी भी क्षण में वहां पहुंचेंगे, जहां महावीर पंहुचे थे। तब तक महावीर को सही रूप में सभी दृष्टियों से समझ भी नहीं सकते क्योंकि उस अनुभूति को हम कैसे समझ सकते हैं, जो हमें कभी हुई ही नहीं है। महावीर को समझने के लिए महावीर बनना होगा और महावीर बनने के लिए स्वयं को समझना होगा।



समता से ही विश्व शान्ति

समता का सीधा अर्थ यदि लिया जाए तो स्पष्ट होगा कि अपने समान ही संसार की समस्त आत्माओं के साथ एक रूप व्यवहार है। जिसकी चरम परिणति पर ही आत्मा में परम रूप की अभिव्यक्ति होती है एवं जिसे परमात्मा के नाम से अभिसंज्ञित किया जा सकता है। आत्मा से परमात्मा तक पहुँचने के लिए उस आत्मा को संसार की समग्र आत्माओं के साथ आत्मीय संबंध कायम करना होता है, उसी संबंध के विकास की क्रमिक प्रक्रिया का वर्णन समता दर्शन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

वास्तव में वर्तमान में जहां कहीं भी दृष्टिपात किया जाता है तो यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि आज व्यक्ति से लेकर विश्व तक अशान्ति या द्वन्द्व की स्थिति छाई हुई है और उसके मूल में विषमता ही एक मात्र कारण है, चाहे कोई व्यक्ति हो या समाज या चाहे राष्ट्र, लगभग सभी के मन में यह स्वार्थ की भावना गहराती जा रही है कि दुनियां में मैं ही रहूं, मेरा ही अस्तित्व रहे, अन्य किसी को वह पसन्द नहीं करता है। आज मानव अपने इस छोटे से जीवन की स्वार्थ पूर्ति के लिए हजारों का हनन करने में जरा भी नहीं हिचकिचाता है। इस तुच्छ अमानवीय भावना ने सर्वत्र अशान्ति का साम्राज्य फैला दिया है। भाई–भाई में, बाप–बेटे में, पति–पत्नी में, ननद–भौजाई में एक परिवार का दूसरे परिवार से, एक समाज का दूसरे समाज से, एक धर्म का दूसरे धर्म से और एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से यदि कोई झगड़ा होता है तो वह सिर्फ इस तुच्छ भावना के कारण होता है कि मैं तुमसे बड़ा हूं, तुम मेरे अधीनस्थ रहो, या फिर तुम्हारी वस्तुएं तुम्हारी नहीं होकर मेरी हैं, दुनियां में तुम्हारा कोई अस्तित्व ही नही है, दुनियां में मैं ही रहना चाहता हूँ। इस तुच्छ भावना में रमकर मानव ने स्वयं के विनाश को स्वयं ने ही आमंत्रित कर लिया है।

आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर घात लगाये बैठा है, जिसके परिणाम स्वरूप दो बार विश्वयुद्ध की भयंकर बौछार हो चुकी है। फिर भी तृप्ति नहीं हुई है। आज मानव ने ऐसे परमाणु बमों का आविष्कार कर लिया है, जिनके विस्फोट से लाखों–करोड़ों व्यक्तियों की जिन्दगी कुछ ही क्षणों में समाप्त हो

सकती है। वैज्ञानिकों द्वारा बनाए गये इस विश्व जैसे अन्य अनेक विश्व का भी यदि निर्माण किया जाए तो भी उन सारे विश्वों के विनाश की क्षमता के अणुबम आज मानव के पास मौजूद हैं।

हिरोशिमा में डाले गये बम से करीब 65150 मानव मारे गये थे। द्वितीय विश्व युद्ध में करीब ढ़ाई करोड़ आदमी मारे गये थे और बाद में छुटकर युद्धों में भी करीब ढाई करोड़ लोग मारे गये। इस प्रकार पांच करोड़ व्यक्ति मारे गए। वैज्ञानिकी खोज ने बताया है कि बोटुलिज्म जहर का एक ग्राम 70 लाख आदमियों को मार सकता है और अशुद्ध सिटाकेसिस जहर का चौथा ग्राम 7 अरब व्यक्तियों को मार सकता है। ऐसे मारक विष के द्वारा निर्मित अणुबमों का खजाना बड़े–बड़े शक्तिशाली राष्ट्रों के पास विद्यमान है। ऐसी स्थिति में यह विश्व कब किस समय प्रलंयकारी रूप ले ले, यह कहा नहीं जा सकता। न्यूट्रॉन बम के आविष्कारक अमेरिकी वैज्ञानिक सेम्युअल कोहन ने तो तीसरे विश्व युद्ध की भी घोषणा कर दी थी। उनके अनुसार 1985 से 1999 के बीच कभी भी विश्व युद्ध छिड़ सकता है। जिसमें अरब–इजराइल, भारत–पाकिस्तान, चीन, दक्षिण अफ्रीका विशेष रूप से लड़ेंगे। रूस और अमेरिका परोक्ष रूप में रहेंगे। बमों का भी व्यापक स्तर पर प्रयोग होगा। यह घोषणा मानवीय चेतना को भयाक्रांत बनाने वाली बनी। इस बीच हिन्दुस्तान पाकिस्तान में करगिल को लेकर अघोषित युद्ध तो हो ही चुका। यदि विचारों में समता नहीं आई तो युद्ध की आग भड़कते क्या समय लगेगा।

इस स्वार्थपरता ने समुचित मानव जाति को विनाश के ऐसे कंगार पर ला खड़ा किया है कि यदि इनसे वापस रिवर्स (पीछे) नहीं हुए तो विनाश अवश्यंभावी है। ऐसी स्थिति में यदि मानवी चेतना ने नवीन अंगड़ाई नहीं ली तो यह विनाश का रूप कितना उग्र रूप धारण कर लेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।

आज भारत देश की स्वयं की दशा भी बड़ी दयनीय बनी हुई है। वोट की राजनीति में चंद व्यक्तियों के स्वार्थ के कारण हजारों हजार निर्दोष व्यक्ति पिसते चले जा रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में आचार्य देव द्वारा प्रतिपादित विश्व शांति का अमोघ उपाय समता दर्शन की नितांत आवश्यकता है। समता दर्शन डूबते हुए जनजीवन की एक मात्र पतवार बन सकती है। यद्यपि समता का महत्त्व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी समझा गया है, तभी सन् 1987 का वर्ष समता वर्ष के नाम से घोषित किया गया था तथापि उस घोषणा के साथ समता का

सकरात्मक रूप न आने के कारण विषमता का उन्मूलन नहीं हो पा रहा है। यह सत्य है कि भोजन के उद्घोष से भूख शान्त नहीं होगी, परन्तु उस उद्घोष के साथ ही भोजन ग्रहण किया जाएगा और वह भोजन आंतरिक रासायनिक परिवर्तन के साथ परिवर्तित होता हुआ खल भाग, रस भाग आदि में विभाजित होकर यथायोग्य रूप से सभी इन्द्रियों के पास पहुंचेगा, तभी शरीर में तेजस्विता आ सकती है। वैसे ही समता दर्शन के सिद्धांतों को स्वीकार करने मात्र से ही विषमताओं का उन्मूलन नहीं हो सकता है, उस समता को जीवन में सकारात्मक रूप से यथाशक्ति उतारना होगा, तभी शांति का सही स्वरूप आ सकेगा।

समता दर्शन को व्यक्ति से लेकर विश्व तक सकारात्मक रूप देने के लिए आचार्य देव ने चार सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं– 1. समता सिद्धान्त दर्शन 2. समता जीवन् दर्शन 3. समता आत्म दर्शन 4. समता परमात्म दर्शन। जिनका विस्तृत वर्णन तो ' समता दर्शन एवं व्यवहार' नामक ग्रन्थ में किया गया है तथापि यहां आपकी जिज्ञासा का समाधान देने के लिए संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत कर देता हूं।

समता सिद्धांत दर्शन– किसी भी वस्तु को अपनाने से पहले उसकी उपयोगिता और अनुपयोगिता के बारे में चिंतन–मनन कर तदनन्तर अवधारणा आवश्यक होता है। किसी अनुपयोगी वस्तु को ग्रहण कर भी लिया जाता है तो उसे समय के प्रवाह के साथ छोड़ भी दिया जाता है। अतः जिस किसी वस्तु को अपनाना है तो उसकी पूर्ण समीक्षा करने के पश्चात् ही अपनाना उपयुक्त रहेगा। समता को जीवन में अपनाने के पूर्व उसके सिद्धांतों को उपयोगी माना जाए। इस बात को दृढ़ संकल्प के साथ स्वीकार किया जाए कि समता दर्शन हमारे लिए पूर्ण रूप से उपयोगी है एवं इसे अपनाने पर ही आत्म–शांति प्राप्त हो सकती है।

यह सत्य है कि जिसे हम अन्तर चेतना से स्वीकार कर लेते हैं, तदनुसार की गई गति सही प्रगति में रूपांतरित होती है।

वर्तमान में आधुनिक युवा और युवतियाँ जो सिनेमा आदि देखते हैं, उनके मन में या मस्तिष्क में वहां का गीत अच्छी प्रकार से जम जाता है और वे जहाँ तहां भी जाते हैं उसे गुनगुनाते रहते हैं। जिसका भान कभी–कभी उन्हें भी नहीं रहता है। ठीक इसी प्रकार समता से व्यक्ति से लेकर विश्व तक की शांति तभी संभव है जब समता को हम उसी रुचि के साथ माने। तभी

वह व्यवहारिक स्तर पर सकारात्मक रूप से उभरेगी। समता का व्यवहारिक रूप है– सम सोंचे, सम मानें, सम देखें, सम जानें और सम ही करने का प्रयास करें। जीवन में प्रत्येक कार्य में समता का होना परम आवश्यक है। दूसरों के अस्तित्व को भी हमें हमारे अस्तित्व के समान स्वीकार करना होगा। समता–सिद्धान्त दर्शन के कुछ प्रावधान – 1. समग्र आत्मीय शक्तियों के सम्यक् सर्वांगीण विकास को सर्वत्र सम्मुख रखना। 2. समस्त दुष्ट वृत्तियों के त्यागपूर्वक सत्साधना में पूर्ण विश्वास रखना। 3. समस्त प्राणीवर्ग का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करना 4. समस्त जीवनोपयोगी वस्तुओं के यथायोग्य समवितरण पर विश्वास रखना 5. गुण एवं कर्म के आधार पर प्राणियों के श्रेणी विभाग में विश्वास रखना। 6. द्रव्य सम्पति व सत्ता प्रधान व्यवस्था के स्थान पर चेतना एवं कर्त्तव्यनिष्ठा को प्रमुखता प्रदान करना।

समता जीवन दर्शन – सिद्धान्त रूप से समता को ग्रहण अथवा स्वीकार कर लेने पर व्यवहारिक जीवन में भी समता सहज ही आने लगती है। जिस प्रकार यदि मिट्टी के घट में पानी है तो उसकी शीतलता, तरलता स्वयंमेव बाहर आ जाती है। समता जीवन दर्शन व्यक्ति के व्यवहारिक जीवन को विषमता से हटाकर समता में परिवर्तित करता है। सबके लिए एक और एक के लिए सब, जीओ और जीने दो के सिद्धान्त को जीवन में उतारना समता जीवन दर्शन है। इसके लिए निम्न प्रावधान हैं– 1. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और सापेक्षतावाद को जीवन में उतारना। 2. जिस पद पर जीवन रहे, उसी पद की मर्यादा को प्रामाणिकता के साथ जीवन में उतारना।

समता जीवन दर्शन में प्रवेश पाने वाला व्यक्ति जुआ, मांस, शराब, चोरी, शिकार, परस्त्रीगमन, वैश्यागमन इन सात कुव्यसनों के परित्याग के साथ अपने जीवन को अधिकाधिक प्रामाणिकता, नैतिकता, मानवता व धार्मिकता से परिपूर्ण बनाने में समर्थ होता है। सापेक्षवाद से अपने मानस को स्वस्थ रखता हुआ अन्यों की ग्रन्थियों को भी विमोचित कर देता है।

समता आत्म-दर्शन– समता जीवन दर्शन से भी साधना की चेतना जब ऊपर उठने लगती है, तब वह समता आत्म दर्शन की स्थिति में आती है। समता जीवन दर्शन में तो वह परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को समतामय बनाने में सहयोगी बनाती है। परन्तु आत्म–दर्शन में वह स्वयं की चेतना के अन्तर्गत अमूल्य शक्ति स्फुलिंगों को स्फुरित करने के लिए आत्मस्थ

साधना में तल्लीन बनने लगती है। आत्म–साधक पुरुष जड़ चेतना का स्वरूप समझकर जड़त्व की राग–द्वेष की परिणति से विलग रहने लगता है, क्योंकि उसे यह अन्तरप्रज्ञा से ज्ञात हो जाता है कि इस क्षण भंगुर दुनियां में कुछ भी स्थायी नहीं है। जब सभी परिवर्तनशील हैं तो राग–द्वेष उत्पन्न करके अपने आत्मपतन के साथ ही, दुनियां की दृष्टि में अपने आपको हास्यास्पद क्यों बनाया जाए। समता आत्म दर्शन के निम्न प्रावधान हैं– 1. प्रातः काल सूर्योदय से पहिले कम से कम एक घण्टा आत्म दर्शन के लिए निर्धारित करना। 2. जिस समय में घण्टा नियुक्त किया जाए, नित्य उसी समय हमेशा ध्यान लगाकर साधना करना। 3. साधना के समय में पापकारी वृत्तियों से अलग हटकर सत्वृत्तियों को स्वयं के आचरण में लाना। 4. समस्त प्राणीवर्ग को अपनी आत्मा के तुल्य समझना। आत्म साधक पुरुष स्वयं के लिए अन्य किसी को भी कष्ट नहीं देता। वह अन्य समग्र आत्माओं को अपने तुल्य समझ कर ही उसके साथ व्यवहार करता है। उसकी यह मान्यता सदा बनी रहती है कि किसी का भी हनन स्वयं का हनन है।

समता परमात्म दर्शन– जब आत्म साधक पुरुष संसार की समस्त आत्माओं को अपनी आत्मा के समान ही समझकर व्यवहार करने लगता है तब उसका परमात्म स्वरूप प्रकट होने लगता है क्योंकि ऐसा साधक राग–द्वेष और तेरे–मेरे की भावना से सम्पूर्णतः ऊपर उठकर वीतरागी बन जाता है। परमात्म साधक के प्रज्ञालोक में सम्पूर्ण विश्व आलोकित हो जाता है। परमात्म साधक स्वयं के चरम विकास के साथ ही अन्यात्माओं के विकास में भी सहयोगी बन जाता है।

21 सूत्रीय योजना – इन चार सोपानों को मूल बनाकर आचार्य प्रवर ने समता समाज सर्जना पर विशेष प्रकाश डाला है। विषमता से विषाक्त विश्व में अमृत का संचार करने के लिए समता दर्शन को अपनाना ही होगा। जब तक हम दूसरों के अस्तित्व को सुरक्षित रखने की ओर प्रयत्नशील नहीं बनेंगे तब तक हमारी अस्तित्व की सुरक्षा नहीं रह सकती है। समता समाज रचना के लिए आचार्य प्रवर ने 21 सूत्रीय योजना को भी प्रस्तुत किया है। वे 21 सूत्र निम्न हैं–

1. ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म आदि की सुव्यवस्था अर्थात् तत्संबंधी सामाजिक नियमों का पालन करना। उसमें कोई कुव्यवस्था पैदा नहीं करना और कुव्यवस्था पैदा करने वालों का सहयोगी नहीं बनना। 2. अनावश्यक

हिंसा का परित्याग करना तथा आवश्यक हिंसा की अवस्था में भी व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र आदि की सुरक्षा की भावना रखना तथा विवशता से होने वाली हिंसा के प्रति लाचारी के भाव या अनुभव करना न कि प्रसन्नता। 3. झूठी गवाही नहीं देना, स्त्री–पुरुष, पशु–धन, भूमि आदि के लिए झूठ नहीं बोलना। 4. वस्तुओं में मिलावट करके धोखे से नहीं बेचना। 5. ताला तोड़कर चाबी लगाकर कोई वस्तु नहीं चुराना। 6. परस्त्री गमन का त्याग करना, स्वस्त्री के साथ भी अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना। 7. व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के प्रति दायित्व निर्वाह के आवश्यक अनुपात से अधिक धन–धान्य पर अधिकार रखना। आवश्यकता से अधिक धन–धान्य होने की स्थिति में जरूरतमंदों को समभाव से वितरण करने की भावना रखना। 8. लेन–देन एवं व्यवसाय आदि की सीमा एवं मात्रा को अपनी समर्थतानुसार मर्यादित रखना। 9. स्वयं के परिवार के, समाज के और राष्ट्र के चरित्र पर कलंक लगने जैसा कोई कर्म नहीं करना। 10 आध्यात्मिक जीवन के निर्माणार्थ नैतिक संचेतना एवं तदनुरूप सत्प्रवृत्ति का ध्यान रखना। 11. मानव जाति के गुण कर्म के अनुसार वर्गीकरण पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए किसी भी व्यक्ति से राग और द्वेष नहीं रखना। 12. संयम की मर्यादाओं का पालन करना एवं अनुशासन भंग करने वालों को अहिंसक तरीके से सहयोग से सुधारना। परन्तु द्वेष की भावना नहीं लाना। 13. पदाधिकारों का दुरुपयोग नहीं करना। 14. कर्त्तव्य पालन का पूरा ध्यान रखना एवं विभिन्न सत्ता में आसक्त लोलुप नहीं होना। 15. सत्ता व सम्पति को मानव सेवा का साधन मानना न कि साध्य। 16. सामाजिंक व राष्ट्रीयता को सद्चरित्र पूर्वक भावात्मक एकता का महत्त्व देना। 17. जनतन्त्र का दुरुपयोग नहीं करना। 18. दहेज, बिंटी, तिलक टीका आदि की मांग सौदेबाजी तथा प्रदर्शन नहीं करना। 19. सादगी में विश्वास रखना एवं बुरे रीति–रिवाजों का परित्याग करना। 20. चरित्र निर्माण पूर्वक धार्मिक शिक्षण पर बल देना और नित्य प्रति कम से कम एक घण्टा धार्मिक प्रक्रियाओं द्वारा स्वाध्याय, चिंतन, मनन आदि करना। 21. समता दर्शन के आधार पर सुसमाज व्यवस्था पर विश्वास रखना।

समता के इस स्वरूप को व्यक्तिगत रूप से अपने जीवन में उतारने के लिए हमें इन बातों का विशेष रूप से ध्यान रखकर आगे बढ़ना चाहिए। समता का सर्वप्रथम पक्ष यह है कि 'जीओ और जीने दो' अर्थात् तुम भी जीओ और दूसरा यदि जी रहा है तो तुम उसे भी जीने दो। उसके जीवन में तुम

साधना में तल्लीन बनने लगती है। आत्म–साधक पुरुष जड़ चेतना का स्वरूप समझकर जड़त्व की राग–द्वेष की परिणति से विलग रहने लगता है, क्योंकि उसे यह अन्तरप्रज्ञा से ज्ञात हो जाता है कि इस क्षण भंगुर दुनियां में कुछ भी स्थायी नहीं है। जब सभी परिवर्तनशील हैं तो राग–द्वेष उत्पन्न करके अपने आत्मपतन के साथ ही, दुनियां की दृष्टि में अपने आपको हास्यास्पद क्यों बनाया जाए। समता आत्म दर्शन के निम्न प्रावधान हैं– 1. प्रातः काल सूर्योदय से पहिले कम से कम एक घण्टा आत्म दर्शन के लिए निर्धारित करना। 2. जिस समय में घण्टा नियुक्त किया जाए, नित्य उसी समय हमेशा ध्यान लगाकर साधना करना। 3. साधना के समय में पापकारी वृत्तियों से अलग हटकर सत्वृत्तियों को स्वयं के आचरण में लाना। 4. समस्त प्राणीवर्ग को अपनी आत्मा के तुल्य समझना। आत्म साधक पुरुष स्वयं के लिए अन्य किसी को भी कष्ट नहीं देता। वह अन्य समग्र आत्माओं को अपने तुल्य समझ कर ही उसके साथ व्यवहार करता है। उसकी यह मान्यता सदा बनी रहती है कि किसी का भी हनन स्वयं का हनन है।

समता परमात्म दर्शन– जब आत्म साधक पुरुष संसार की समस्त आत्माओं को अपनी आत्मा के समान ही समझकर व्यवहार करने लगता है तब उसका परमात्म स्वरूप प्रकट होने लगता है क्योंकि ऐसा साधक राग–द्वेष और तेरे–मेरे की भावना से सम्पूर्णतः ऊपर उठकर वीतरागी बन जाता है। परमात्म साधक के प्रज्ञालोक में सम्पूर्ण विश्व आलोकित हो जाता है। परमात्म साधक स्वयं के चरम विकास के साथ ही अन्यात्माओं के विकास में भी सहयोगी बन जाता है।

21 सूत्रीय योजना – इन चार सोपानों को मूल बनाकर आचार्य प्रवर ने समता समाज सर्जना पर विशेष प्रकाश डाला है। विषमता से विषाक्त विश्व में अमृत का संचार करने के लिए समता दर्शन को अपनाना ही होगा। जब तक हम दूसरों के अस्तित्व को सुरक्षित रखने की और प्रयत्नशील नहीं बनेंगे तब तक हमारी अस्तित्व की सुरक्षा नहीं रह सकती है। समता समाज रचना के लिए आचार्य प्रवर ने 21 सूत्रीय योजना को भी प्रस्तुत किया है। वे 21 सूत्र निम्न हैं–

1. ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म आदि की सुव्यवस्था अर्थात् तत्संबंधी सामाजिक नियमों का पालन करना। उसमें कोई कुव्यवस्था पैदा नहीं करना और कुव्यवस्था पैदा करने वालों का सहयोगी नहीं बनना। 2. अनावश्यक

हिंसा का परित्याग करना तथा आवश्यक हिंसा की अवस्था में भी व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र आदि की सुरक्षा की भावना रखना तथा विवशता से होने वाली हिंसा के प्रति लाचारी के भाव या अनुभव करना न कि प्रसन्नता। 3. झूठी गवाही नहीं देना, स्त्री–पुरुष, पशु–धन, भूमि आदि के लिए झूठ नहीं बोलना। 4. वस्तुओं में मिलावट करके धोखे से नहीं बेचना। 5. ताला तोड़कर चाबी लगाकर कोई वस्तु नहीं चुराना। 6. परस्त्री गमन का त्याग करना, स्वस्त्री के साथ भी अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना। 7. व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के प्रति दायित्व निर्वाह के आवश्यक अनुपात से अधिक धन–धान्य पर अधिकार रखना। आवश्यकता से अधिक धन–धान्य होने की स्थिति में जरूरतमंदों को समभाव से विंतरण करने की भावना रखना। 8. लेन–देन एवं व्यवसाय आदि की सीमा एवं मात्रा को अपनी समर्थतानुसार मर्यादित रखना। 9. स्वयं के परिवार के, समाज के और राष्ट्र के चरित्र पर कलंक लगने जैसा कोई कर्म नहीं करना। 10 आध्यात्मिक जीवन के निर्माणार्थ नैतिक संचेतना एवं तदनुरूप सत्प्रवृत्ति का ध्यान रखना। 11. मानव जाति के गुण कर्म के अनुसार वर्गीकरण पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए किसी भी व्यक्ति से राग और द्वेष नहीं रखना। 12. संयम की मर्यादाओं का पालन करना एवं अनुशासन भंग करने वालों को अहिंसक तरीके से सहयोग से सुधारना। परन्तु द्वेष की भावना नहीं लाना। 13. पदाधिकारों का दुरुपयोग नहीं करना। 14. कर्त्तव्य पालन का पूरा ध्यान रखना एवं विभिन्न सत्ता में आसक्त लोलुप नहीं होना। 15. सत्ता व सम्पति को मानव सेवा का साधन मानना न कि साध्य। 16. सामाजिंक व राष्ट्रीयता को सद्चरित्र पूर्वक भावात्मक एकता का महत्त्व देना। 17. जनतन्त्र का दुरुपयोग नहीं करना। 18. दहेज, बिंटी, तिलक टीका आदि की मांग सौदेबाजी तथा प्रदर्शन नहीं करना। 19. सादगी में विश्वास रखना एवं बुरे रीति–रिवाजों का परित्याग करना। 20. चरित्र निर्माण पूर्वक धार्मिक शिक्षण पर बल देना और नित्य प्रति कम से कम एक घण्टा धार्मिक प्रक्रियाओं द्वारा स्वाध्याय, चिंतन, मनन आदि करना। 21. समता दर्शन के आधार पर सुसमाज व्यवस्था पर विश्वास रखना।

समता के इस स्वरूप को व्यक्तिगत रूप से अपने जीवन में उतारने के लिए हमें इन बातों का विशेष रूप से ध्यान रखकर आगे बढ़ना चाहिए। समता का सर्वप्रथम पक्ष यह है कि 'जीओ और जीने दो' अर्थात् तुम भी जीओ और दूसरा यदि जी रहा है तो तुम उसे भी जीने दो। उसके जीवन में तुम

किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप मत करो।

समता का द्वितीय पक्ष होगा, जो तुम्हें जीने का अधिकार दे, उसे तुम भी जीने का अधिकार दो, यदि तुम्हें कोई नैतिक सहयोग दे रहा है तो तुम्हारा परम कर्त्तव्य हो जाता है कि तुम भी उसे सहयोग प्रदान करो।

समता का तृतीय पक्ष होगा– जो तुम्हें सहयोग नहीं कर रहा है और जिसे सहयोग की अपेक्षा है और यदि तुम्हारे पास साधन उपलब्ध है तो तुम बिना किसी स्वार्थ के उसका सहयोग करो। यह सहयोग तुम्हारे भीतर एक प्रकार की विशिष्ट आनन्दानुभूति करने वाला होगा।

समता का चतुर्थ पक्ष होगा– दूसरों की सुख–सुविधाओं के लिए बिना किसी अपेक्षा के अपनी सुख–सुविधाओं का विसर्जन कर दो। यह पक्ष आत्मा को समता में निमज्जित करके उसे परम पावन बनाने वाला होगा। जिस प्रकार की धर्मरुचि अणगार ने चींटियों की सुरक्षा के लिए स्वयं को होम दिया था।

समता के इन चार पक्षों को समक्ष रखते हुए चलने पर स्वतः ही समस्याओं का समाधान होता चला जाएगा।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कुछ तो समता की आवाज बुलंद हुई है तभी तो 18.12.1987 के दिन रूस–अमेरिका में परस्पर यह निर्णय हुआ कि मध्य एटमी प्रक्षेपास्त्रों के एक हजार राकेट और 1850 एटम बम दोनों तरफ से नष्ट कर दिये जाएंगे। इस दस्तावेज पर दोनों ही देशों के शीर्ष नेताओं ने हस्ताक्षर किये थे। निःशस्त्रीकरण की यह भावना भी समता का एक आंशिक रूप ही है। पर इतने मात्र से शास्त्रों की भयानकता नहीं टाली जा सकती है। इसके लिए आवश्यक है वह जीओ और जीने दो रूप–समता का पहला पक्ष स्वीकार करें। सभी राष्ट्रों में राष्ट्रीय स्तर पर यह संधि हो जाए कि कोई भी देश किसी पर हमला नहीं करेगा, कोई भी किसी का धन, माल, जमीन आदि हड़पने की कोशिश नहीं करेगा। क्योंकि दुनियां में सभी को जीने का अधिकार है। हम भी जीयें और दूसरों को भी जीने दें। यदि यह पहला सिद्धान्त भी जीवन में स्वीकार कर लिया जाता है तो मानव जाति में एक विशिष्ट आनन्द का संचार हो जाएगा। क्योंकि आज मानव को मानव से जितना डर है उतना अन्य से नहीं। "जीओ और जीने दो" के पक्ष को अपना लेने पर आज जितना भी खर्च शस्त्रों के निर्माण में मानव जाति के विनाश के लिए हो रहा है, वह सर्जन में होने लगेगा। आज जो पड़ौसी देश एक दूसरे

को शत्रु मान रहे हैं, वे मित्र समझने लग जाएंगे। सारी समस्याओं का समाधान होने में देरी नहीं लगेगी। इसके बाद समता के अगले पक्ष को स्वीकार करने पर तो मानव की आन्तरिक व बाहरी दोनों ही समस्याएं विमोचित होकर परम स्वरूप की अभिव्यक्ति होने लगेगी।

चरम तीर्थंकर भगवान महावीर ने अपनी देशना में स्थान–स्थान पर समता की अत्यन्त सुन्दर विवेचना की है।" आचारांग" सूत्र में तो समता को ही धर्म बतलाया गया है– 'समियाए धम्मे' समता ही धर्म है। यदि आपके अन्दर समता के भाव नहीं है, दीन–हीन, अभावग्रस्त जीवों के प्रति सद्‌भाव नहीं है तो आप धर्म को जीवन में नहीं अपना सकते। धर्म को अपनाने के लिए पहले मानवता का आना अनिवार्य है, मानवता समता का ही एक अंश है। 'सूत्रकृतांग' सूत्र में समता को अधिक स्पष्ट करते हुए प्रभु महावीर ने कहा है–

पण्णासमते उ सयाजए, समता धम्ममुदाहरे।
सुहुमे उसया अलुसए, णो कुज्णोमाणी माहने" १,२,२८

प्रज्ञा में समता के आने पर ही साधक समता के अनुसार यत्नवान बनता हुआ समता धर्म की साधना करें। समता साधक अहिंसक भावना में रहता हुआ न क्रोध करे, न ही अभिमान करे।

प्रभु महावीर का यह उद्‌घोष निश्चय ही समता के स्वरूप की सही व्याख्या करता हुआ समता प्रवर्तन की स्थिति को भी स्पष्ट करता है। समता के प्रवर्तन का यथार्थ में वही अधिकारी हो सकता है जो अहिंसक और क्रोध, मान अर्थात् राग–द्वेष से रहित होने की साधना में तल्लीन हो। आचार्य प्रवर ने समता के प्रवर्तन के पूर्व अपने जीवन को ठीक उसी रूप में अहिंसा और वीतराग की साधना में तल्लीन किया था और कर रहे हैं, आपके जीवन के भीतर और बाहर समता लबालब भरी है इसी का परिणाम है कि वर्तमान में तो मानों समता दर्शन आचार्य प्रवर का पर्याय ही बन गया है।

यह तो प्रारम्भ में ही बताया जा चुका है कि समता दर्शन किसी व्यक्ति, जाति, समाज या राष्ट्र से जुड़ा हुआ नहीं है। यह शब्द तो सम्पूर्ण मानव जाति ही नहीं अपितु प्राणी वर्ग से जुड़ा हुआ है। यह किसी एक का धर्म नहीं अपितु समस्त आत्माओं का धर्म है। जो भी समता को अपनाता है, वह उसी से जुड़ जाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि समता उसी की है। वह तो तृषातुर के लिए पानी के समान सभी की है– यद्यपि समता को हर धर्म ने, हर राष्ट्र ने

अपने रूप में स्वीकार किया है, किन्तु उसका देश, काल की परिधियों को लक्ष्य में रखने कर युगानुकूल प्रस्तुतीकरण नहीं होने से वह पूर्ण रूप से व्यवहारिक नहीं बन पा रहा था, इस अभाव की पूर्ति आचार्य प्रवर ने अपने दीर्घकालीन संयम साधना की अनुभूतियों के पश्चात् सर्व व्याधियों की उपशामक समता की संजीवनी प्रस्तुत की है। आवश्यकता है उस औषधि के व्यवस्थित रूप से आसेवन की।



कर्म बंध से कैसे बचें ?

निश्चय नय की दृष्टि से शुद्ध स्वरूपी आत्मा अनंत–अनंत जन्मों से कर्मों में आबद्ध होकर चतुर्गति चौरासी लाख जीवयोनि में भ्रमण कर रहा है। कर्म परमाणु जड़ होते हुए भी चेतन्य से संबंधित होकर चेतनता प्राप्त करते चले जाते हैं और उसी चेतन में अपना असर बताना शुरू कर देते हैं। जिस दुनियां में इंसान जी रहा है वहां कभी दु:खी तो कभी सुखी बन जाता है और अनेक समस्या इन्सानी जिदंगी में उत्पन्न हो जाती है। जिसको बाहर से स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। बाहरी कारण कुछ समझ में नहीं आता, कारण दिखता भी नहीं है। बाहरी कारण एक सदृश होने पर भी किसी के साथ कैसा रूप ले रहा है तो किसी के साथ कैसा रूप ले रहा है ? एक व्यक्ति सिर्फ ठोकर खाकर भी मर जाता है जबकि दूसरे व्यक्ति को पांचवी मंजिल पर से गिर जाने पर भी कुछ नहीं होता। हम मोटे तौर पर सोचते हैं उस मरने वाले के किसी नस विशेष पर चोट लग गयी है पर ऐसी बात नहीं है। दोनों के एक समान चोट लगने पर भी एक आराम से जी रहा है और एक मर गया है। एक ही गाड़ी का एक्सीडेंट (Accident) होने पर उसमें बैठने वाले व्यक्ति में से कोई मर जाता है और कोई नहीं ? जबकि दोनों व्यक्ति एक ही दिशा में एक ही तरफ बैठे हैं फिर भी एक बच जाता है और एक मर जाता है। इस प्रकार एक समान निमित होने पर भी अलग–अलग परिणाम क्यों आते हैं। किसी मरीज का गंभीर आपरेशन (Operation) हो रहा है बचने के चांस (Chance) नहीं वत् होने पर भी बच जाता है और दूसरे व्यक्ति के छोटा आपरेशन हो रहा है बचने की पूरी संभावना है फिर भी मर जाता है। ऐसी स्थिति में यही कहते हैं कि इसका मुकद्दर ही ऐसा था। पर इन विभिन्नताओं का जवाब देता है जैन दर्शन।

कर्म आत्मा के साथ सूक्ष्मता से जुड़ा है। वे कर्म परमाणु पूरे वायुमंडल में सम्मिश्रित है। वे परमाणु आत्म प्रदेशों के साथ भी संस्पर्शित हो रहे हैं जैसे ही आत्मा में मन, वचन, काया का स्पंदन होता है और उस स्पंदन के साथ ही कर्म परमाणु खिंचते हैं और उन्हें जीव कर्म रूपता प्रदान करते हैं। कर्म में चैतन्यता जुड़ने पर एक विशिष्ट शक्ति आती है और चैतन्य को अपने

अनुसार चलाने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेती है। जैसे शराब जब तक बाहर रहती है, तब तक इन्सान पर असर नहीं करती है किन्तु वही जब इन्सान पी लेता है, तब वह असर करने लगती है। कर्म परमाणु भी शक्ति पाकर उसे अपनी तरह से घुमाना शुरू करते हैं। तब आत्मा चाहकर भी अपने अनुसार चल नहीं पाती। निकाचित कर्म उदय में आने पर तो भोगना ही पड़ता है। कर्मों की दो प्रकार की व्यवस्था होती है– पहला निकाचित कर्म व दूसरा अनिकाचित कर्म। निकाचित कर्म की व्याख्या इस प्रकार है–

"निकाच्यते अवश्यवेद्यरूपतया व्यवस्थाप्यते इति निकाचन"

कोई भी शक्ति जिसे टाल नहीं सकती उसे कहते हैं निकाचना कर्म। उसमें उद्वर्तना व अपवर्तना भी काम नहीं आती। जहाँ कोई भी कारण कारगर नहीं होता उसे निकाचना कर्म कहा जाता है। अनिकाचना कर्म वे हैं जो कर्म तप, संयम, ध्यान, स्वाध्याय आदि गुप्त अध्यवसायों के बल पर विपाकोदय से पहले ही प्रदेशोदय से भोग लिये जाते हैं ऐसी स्थिति जिनकी बनती है वह है अनिकाचित कर्म। ज्यादातर तो प्राणी के साथ अनिकाचित कर्म ही जुड़े रहते हैं। ऐसे कर्म तो कोई–कोई ही होते हैं जो बदले न जासके। जैसे– भगवान महावीर के कान में कीले ठोके गये। परिवर्तन नहीं हुआ चाहे कितनी भी तपस्या कर ली, घोर साधना कर ली पर भोगना ही पड़ा। खंदक अणगार के चमड़ी उतारली गयी, इतनी साधना करने पर भी भोगना ही पड़ा, बदलाव नहीं आ सका। ऐसे निकाचना कर्म कम ही होते हैं। वे निकाचन कर्म बांधते कैसे है। जिसके साथ जितना गहरा द्वेष भाव है वहाँ उतनी तेजी से कर्म बंधते हैं। भले आपने हिंसा कम की है पर उसके साथ क्रोध भाव ज्यादा है। भले आपने पाप कम किया है पर राग भाव ज्यादा है। वह भव–भव में भटका देता है।

जब ऋषभदेव का समवशरण लगा उस समय कई व्यक्तियों ने पूछा– हमारी मोक्ष कब होगी। भगवान सभी के प्रश्नानुसार उत्तर दिये जा रहे थे। उसी क्रम में भरत चक्रवर्ती ने भी प्रश्न पूछ लिया कि मेरी मोक्ष कब होगी तो भगवान ने बताया कि तुम्हारी मोक्ष इसी भव में होनी है। उसी सभा में एक मामूली व्यक्ति (सुनार) भी खड़ा हो गया और अपनी मोक्ष के विषय में पूछा– तो भगवान ने फरमाया कि अभी तुम्हारे बहुत भव बाकी है। जबकि सुनार इतना कोई महारंभ का पाप नहीं करता जब कि चक्रवर्ती तो कितने ही युद्ध करते हैं। भले सुनार इतना पाप नहीं करता था पर उसका मोह बहुत ज्यादा

था। उसे राजा के आदेशानुसार तेल का कटोरा भरकर उसके हाथ में देकर उसे पूरे शहर में घुमाया। एक बून्द गिर जाने पर मौत की सजा थी। रास्ते में बेण्ड बाजे बज रहे थे। कई आकर्षक दृश्य थे। मधुर गानों की आवाज कान में आ रही थी फिर भी उसका ध्यान उस तरफ नहीं गया और न ही तेल की एक बूंद भी कटोरे से बाहर आयी। नगर में घूमने के बाद सुनार को जब सम्राट के पास पहुंचाया गया तब सम्राट ने कहा कि जैसे तुम्हारा ध्यान अभी सिर्फ तेल के कटोरे की तरफ केन्द्रित था, वैसे ही सारी दुनियाँ का काम करते हुए भी मेरा ध्यान परमात्मा में है और यह बात भगवान से अगम्य नहीं है अतः उन्होंने मेरे मोक्ष की निर्धारणा कर ली। जितना ज्यादा मोह उतना ही गहरा निकाचन कर्म बंधता है। ऐसा निकाचित बंध न हो उसे टालने के लिए कर्त्तव्य भाव से ही काम करना चाहिये। संसार में व्यक्ति जी रहा है तो बेटे–बेटियां व्यापार आदि सभी काम कर्त्तव्य भाव से करता है, लगाव के साथ नहीं करता है तो जो कर्म बंध हो रहे हैं वे ऐसा नहीं कि वे कर्म उसे भोगना ही पड़ेंगे। इसलिए कहते हैं–

रे समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर्गत न्यारो रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल।।

धाय माता बच्चे को खिलाती, पिलाती, नहलाती है, प्यार करती है, परवरिश करती है। सब कुछ करते हुए भी अन्दर से समझती है यह बच्चा मेरा नहीं है। एक ईमानदार वफादार मुनीम दुकान का सभी काम करते हुए भी अन्दर से समझता है कि यह दुकान मेरी नहीं है। धायमाता व उस ईमानदार वफादार मुनीम की तरह तुम कर्त्तव्य से काम करते रहो तो तुम्हारा सम्यक्दृष्टि भाव तुम्हें आगे बढ़ाता रहेगा। कर्त्तव्य भाव से काम करते हुए भी काम में हो रहे आरंभ की अपेक्षा जो कर्म बंध रहे हैं वे अनिकाचित कर्म ही बचेंगे। ऐसे कर्म थोड़े से पुरुषार्थ से भी दूर हो जाते हैं। शास्त्रों में दो प्रकार के मिट्टी के गोले बतलाये हैं– पहला सूखी मिट्टी का गोला व दूसरा गीली मिट्टी को गोला। सूखे गोले को दिवाल पर फैंका तो वह तुरंत वापस नीचे गिर जायेगा तथा गीली मिट्टी के गोले को दिवाल पर फैंका तो वह गीलेपन के कारण तुरन्त चिपक जाता है। वैसे ही कर्म भी दो तरह के होते हैं। जिस आत्मा में रागद्वेष का जितनी मात्रा में गीलापन चिकनापन है उसके साथ कर्म परमाणु उतनी मात्रा में गाढ़ता के साथ चिपक जाते हैं। यदि चिकनापन

ज्यादा है तो वह मुश्किल से धोया जाता है। सुमुख गाथापति ने सुदत्त अणगार को मासखमण के पारणे में आहार बहराया। उसके लिए कहा "भव परिमिए———" अर्थात् उसने भव परिमित कर लिया। अगर कहें भव कम होते ही नहीं हैं तो फिर कैसे कम कर लिये ? उपर्युक्त उदाहरण से यह प्रमाणित होता है कि भव कम किये जा सकते हैं। दूसरी और भगवान के कानों में कीले ठोके गये–उससे निकाचित कर्म सिद्ध होते हैं। भले शास्त्र में निकाचित शब्द स्पष्ट रूप से नहीं आया हो पर अपन उन सब उदाहरणों से उस बात को पकड़ सकते हैं। कर्म की निकाचितता अनिकाचितता को समझ सकते हैं।

अष्टावक्र ऋषि ने जनक को ब्रह्म के दर्शन करवा दिये थे। जनक के पास जो भी ऋषि महात्मा आते उन सबसे जनक कहते मुझे परमात्मा के दर्शन करवा दो। पर परमात्मा के दर्शन कराएं कैसे ? परमात्मा होते हैं व ऐसे होते हैं– इसे सिद्ध करने की युक्ति दी जा सकती है, तर्क दी जा सकती है पर दिखा कौन सकता है। इतने में अष्टावक्र ऋषि आये उन्हें पूछा तो कहा मैं दिखा सकता हूँ। बोला जनक को ! तुम कब देखना चाहते हो आज देखना चाहते हो या कल देखना चाहते हो या अभी देखना चाहते हो। जनक आश्चर्य चकित हो देखने लगा। यह क्या है ? जनक देखना चाहता था किन्तु यह आशा नहीं थी कि अभी शीघ्र ही दिखाने का भी कोई बोल सकता है। जनक को घबराहट होने लगी पता नहीं क्या होगा। एक बार तो सोचा देखूं या नहीं देखूं ? पता नहीं ये क्या करेंगे और क्या नहीं ? फिर भी हिम्मत की और बोला– मुझे इसी वक्त देखना है। अष्टावक्र ऋषि ने जनक को अपने सामने बिठा दिया और कहा– मैं परमात्मा के दर्शन कराऊंगा। परमात्मा की यात्रा कराऊंगा किन्तु पहली बात यह है कि तुम्हारा तन, मन, धन सब मेरा होगा। तुम्हारा अपना कुछ नहीं होगा। यह सब छोड़ने पर ही परमात्मा के दर्शन हो सकेंगे। (आप घर को छोड़े बिना क्या पौषधशाला आ सकेंगे ? नहीं) अष्टावक्र बोले–जनक सुन ! तुम्हारा कुछ भी नहीं रहेगा। सब कुछ मेरा ही होगा। जनक ने कह दिया– हाँ ! आज से सब कुछ आपका ही होगा। मेरा कुछ भी नहीं रहेगा। अब शीघ्र परमात्मा के दर्शन कराओ। जनक को परमात्मा देखने की अत्यधिक चाह थी अतः हाँ में हाँ मिलाये जा रहे थे। अब अष्टावक्र ऋषि ने मंत्र जाप शुरू किया। उसी समय एक ब्राह्मण आया और बोलने लगा। आप बड़े उदार हैं। आपकी उदारता की प्रशंसा बहुत दूर–दूर तक फैल रही है।

आपके द्वार पर जो भी आता है वह कभी खाली नहीं जाता है। मैं भी परिस्थिति के मारे आपके द्वार पर बड़ी आशा लेकर आया हूँ। मेरी पुत्री की शादी करनी है। जनक ने कहा ठहरो– मैं अभी देता हूँ। बुलाया भण्डारी को, कोषाध्यक्ष को और आदेश दिया इसे 5000 रुपये दे दो। तभी ऋषिवर बोले यह क्या ये पैसे तुम्हारे हैं क्या ? जनक ने कहा– मेरे दरबार में आने वाला कभी खाली नहीं जाता। ऋषि बोले– पर यह दरबार तुम्हारा कहाँ रहा। तुमने तो सब कुछ मेरे को दे दिया था फिर तेरे अधिकार में धन रहा कहाँ। तब जनक के बात समझ में आयी। आज भी ज्यादातर ऐसा होता है कि वादा करते ही तुरन्त भूल जाते हैं।

महाराज के सामने आप बोलते हैं कि– महाराज इस दुनियाँ में कोई वस्तु मेरी नहीं है किन्तु अभी मालूम पड़ जावें कि आपके जूते अमूक व्यक्ति ने चुरा लिये है फिर क्या होगा ? देखिये ! मोह की पकड़ कितनी गहरी है। ऋषि के कहने पर जनक मान गया– हाँ वास्तव में मेरा तो कुछ नहीं रहा ! जनक उठे और जाने लगे तो ऋषि ने कहा– ठहरो कहाँ जाते हो ? जनक ने कहा– परमात्मा के दर्शन बाद में कर लूंगा। पहले मजदूरी करके इस याचक को पैसे देकर आ रहा हूँ। ऋषि ने कहा जिस तन से तुम मजदूरी करोगे उसे तो तुमने पहले ही मुझे दे दिया है तो फिर तुम उस तन से काम कैसे करोगे ? उस तन से वैसा ही काम होगा जैसा मैं कहूंगा। जनक ने सोचा धन मैं दे नहीं सकता, तन से काम नहीं कर सकता। ब्राह्मण को भी खाली लौटने देना नहीं चाहता हूं। क्या करूं ? मन में उद्वेलन मचने लगा। मन में उठ रहे अध्यवसायों के निशान चेहरे पर आने लगे। भाव–भंगिमा चेहरे पर उभरना शुरू हुई। तभी ऋषि ने कहा–जनक गलती कर रहे हो। जनक ने कहा – नहीं। ऋषि बोले जिस मन में तनाव पैदा कर रहे हो वह मन तुम्हारा है क्या ? जनक बोले– हाँ, वह मन भी मेरा तो नहीं है। ऋषि बोले– तो फिर मेरी बिना आज्ञा के संकल्प विकल्प क्यों कर रहे हो ? जब तुम्हारी कोई चीज ही नहीं है तो तुम क्यों इसके पीछे पड़ रहे हो। क्षत्रिय व्यक्ति यदि कोई प्रण कर लेता है तो फिर पीछे नहीं हटता। या तो वह प्रण करता ही नहीं, अगर करता है तो फिर प्राणों के साथ निभाता है। हे जनक ! तूने तन, मन, धन सभी मुझे दे दिया पर कभी तू तन के प्रण को तोड़ रहा है तो कभी मन को वापस ले रहा है तो कभी धन देने को तैयार हो रहा है। जनक ने ऋषि के पांव पकड़ लिये और बोले– मैं कुछ कर भी नहीं सकता, सोच भी नहीं सकता

तो अब मैं करूं क्या ? पहले तन, मन सभी ओर से खाली हो जाओ और उसी समय जनक के द्वारा अन्दर से खाली होने पर ऋषि ने जनक के सिर पर हाथ रखा। तत्काल जनक को सारा ब्रह्मांड नजर आने लगा। जनक कहने लगे मुझे अपूर्व आनन्द की अनुभूति हो रही है। थोड़ी देर बाद ऋषि ने आंख खोलने को कहा पर आंख खोलने की इच्छा ही नहीं हो रही है। बड़ी मुश्किल से आंखें खोली। जनक देख रहा है सारी दुनिया दूसरी हो गयी है, सारी दुनियां परायी नजर आ रही है, दूसरी ओर से सारी दुनियां अपनी नजर आ रही है। तब अष्टावक्र बोले– जिन्दगी में तीन बातों का अवश्य ध्यान रखना 1. जो भी काम करो कर्त्तव्य भाव से करना क्योंकि तेरा तन भी मेरा है और मन भी मेरा है और धन भी मेरा है। तू केवल ईमानदार मुनीम की तरह है। सेठ को बहुत प्रोफिट (Profit) हो गया तो भी मुनीम को बहुत खुशी नहीं तथा अधिक नुकसान हो गया तो भी बहुत दुःख नहीं होता। क्योंकि वह समझता है कि मेरा तो कुछ है ही नहीं। हे जनक ! तुम भी पूरे कर्त्तव्य भाव से काम करना, पर लगाव नहीं रखना है। 2. दूसरी बात है कि दृष्टाभाव से दुनियां को देखो, देखते जाओ किसी पर लगाव मत रखो। आप भी दृष्टाभाव से देखते हो पर कब ? जब आप पिक्चर देखते हो तब पिक्चर (Picture) में कोई मर रहा है– ऐसा देखते हुए आपको दुःख नहीं होता या कोई खुशी की जिन्दगी जी रहा है तो उसे देखकर आपको खुशी नहीं होती। क्योंकि आप जानते हैं कि यह सब तो झूठ है। केवल नाटक है। मान लीजिये उसी पिक्चर में कोई गांवड़िया व्यक्ति बैठा हो और कोई किसी निर्दोष व्यक्ति को मार रहा हो तो उसे गुस्सा आया और नंगी तलवार लेकर भागता है उस हिसंक व्यक्ति को मारने–परदे के पास में। तो उसे आप मूर्ख कहते हैं। इसी प्रकार तुम सारी दुनियां को दृष्टा भाव से देखो। 3. तीसरी बात यह है– निरासक्त भावना से जीओ, खाओ किन्तु आसक्ति भाव मत रखो। जैसा भी भोजन सामने आया बिना प्रतिक्रिया किये समता भाव के साथ खा लो। कपड़ा पहनना है तो जैसा भी पहन लिया वैसा ठीक है। आसक्ति नहीं होना चाहिए।

कहते हैं जनक ने उपर्युक्त तीनों बातों को जीवन के साथ जोड़ लिया और इसी देह में रहते हुए विदेह कहलाये–महर्षि कहलाये।

उत्तराध्ययन सूत्र में नमिराजर्षि का वर्णन आया। उन्होंने इन्द्र से कहा कि–

मिहिलाए इज्झमाणीए न मे इज्झइकंचणं।।

मिथिला के जल जाने पर भी मेरा कुछ भी नहीं जला। आसक्ति के अभाव में वे भी राजर्षि कहलाये।

अगर गृहस्थ जीवन में भी परमात्मा देखना चाहते हो तो अष्टावक्र ऋषि के द्वारा बतायी तीन बातों को अंगीकार करना होगा। केवल भगवान को देखना चाहते हैं पर अन्दर से पूरी तैयारी नहीं है, परमात्मा के साथ पूरा लगाव नहीं है। जब भी जनक की तरह पूर्ण समर्पण होगा तो परमात्मा दिखाने की स्थिति अष्टावक्र की तरह बन सकती है। लेकिन प्रयोग के समय मालूम पड़ता है कि जो प्रतिज्ञा की है, वह जनक की तरह निभेगी या नहीं। अतः कहा जाता है कि जिस साध्य को सिद्ध करना चाहते हो उसमें पूरी तरह से लगो। सम्यक् दृष्टि को सम्यक्पन के साथ पूरी तरह जोड़ना होगा। श्रावक को श्रावकव्रत के प्रति व साधु को पंच महाव्रतों के प्रति पूरी तरह जुड़ना होगा, पूरी तरह से पंच महाव्रतों के प्रति समर्पित हो गया तो यहाँ बैठा–बैठा भी मोक्ष सुख को प्राप्त कर सकता है। शास्त्रकार कहते हैं कि एक वर्ष का दीक्षित साधु सर्वार्थ सिद्ध के सुखों से भी ज्यादा सुख को पा लेता है। किन्तु महाराज तो बन गया पर अहिंसा, महाव्रत, सत्य महाव्रत आदि का पूरी तरह से पालन नहीं करता है। महाव्रतों में टूटन–फूटन चल रही है तो कर्म निर्जरा की अपेक्षा कर्म बंध जायेंगे और वे कर्म आत्मा को पुनः नीचे उतार देंगे। अगर हमें सर्वथा कर्मों को तोड़ना है तो उत्कर्ष भावों के साथ संयम का पालन करना होगा। वे उत्कर्ष भाव एकदम झटका मारते हैं और कर्मों के वृन्द के वृन्द उड़ने शुरू हो जाते हैं। अतः व्यक्ति के कर्मों को काटने के लिए समभाव में आना जरूरी है और निरासक्त भावना से जीने का प्रयास करें तो कर्म बंधन से अलग रह जा सकता है। कर्म किसी को छोड़ते नहीं है जैसा कि भजन की कड़ियों में कहा है–

ब्रह्मा हो या शंकर हो।
मुनि ज्ञान भले तीर्थंकर हो।।
कर्मों के खेल तो न्यारे हैं।।

कर्मों के खेलों को पहचानिये। ये किसी को छोड़ते नहीं है। ऐसी स्थिति में हम अपना आचरण शुद्ध बनाएं, व्यवहार शुद्ध बनाएं, विचार शुद्ध बनाने का प्रयास करें। भले हम कर्मों से आबद्ध हैं फिर भी शुद्ध विचारों से परमात्मा का दर्शन हो सकता है अंधेरी कोठरी में एक छोटा सा दीपक जल गया तो भी

पूरी कोटड़ी को प्रकाशित कर देगा। वैसे ही कर्मों से आबद्ध अवस्था में भी परमात्मा की स्तुति रूप दीपक जल जाये तो भी परमात्मा के दर्शन हो जायेंगे।

अगर हमें कर्मों के बंधन से बचना है तो राग द्वेष को कम करें। बच्चे विडियो गेम (Video Game) खेलते हैं उसमें भी मानसिक हिंसा का प्रसंग बनता है उससे भी कर्म बंध जाते हैं। बच्चों को समझाया जाय तो वे भी कर्म बंधन से बच सकते हैं।



सुख का फूल : खिले आंगन में

उपवन के माली फूलों को बरबाद मत करना।
और तीखे–तीखे शूलों को आबद मत करना।
क्या सोच रहा है–।। टेर।।

प्रज्ञाशील उपासकों ! जिन्दगी में दिखाई देने वाले पदार्थों के अन्दर इन्सान अपनी इच्छानुसार कुछ भी मान्यता बना सकता है। किन्तु शाश्वत सत्य तो यह है एक ही पदार्थ के नेगेटिव (Nagative) पोजेटिव (Positive)दो रूप हुआ करते हैं क्योंकि जैन दर्शन में पुद्गलों के परिवर्तन को स्वीकार किया गया है। दुनियां निरन्तर बदल रही है। बदली दुनियाँ में जो पदार्थ अच्छा नजर आ रहा है वह बुरा भी हो सकता है। अनुकूलता व प्रतिकूलता हर पदार्थ के साथ जुड़ी है। ऐसी स्थिति में जिन पदार्थों से मानव निरन्तर सुख खोजने की कोशिश कर रहे हैं, वे पदार्थ जब तक दूर रहते हैं तब तक उन पर आकर्षण बना रहता है किन्तु वे ही पदार्थ जब पास में आ जाते हैं तो वह स्थिति नहीं रहती है। जिससे आनन्द मिलना चाहिए वे ही दुःख देने वाले बन जाते हैं क्योंकि पदार्थ न स्वयं सुख देने वाला होता है और न दुःख देने वाला होता है। किन्तु मानव स्वयं उसमें सुख दुःख उपचरित करता है। एक ही बात अनुकूल है तो सुखदायी प्रतीत होता है और प्रतिकूल हो तो दुःखदायी प्रतीत होने लगती है। घर में बच्चा पैदा होता है बड़े नाजों नखरों प्यार से उसका पालन होता है। बेटा बड़ा होता है, शादी हो जाती है। मां–बाप की बात मानने को तैयार नहीं होता है। तब वही प्यारा लगने वाला बेटा खारा लगने लगता है। मां–बाप बोलते हैं ऐसा बेटा नहीं होता तो अच्छा था।

दिल्ली में ही एक भाई मिला। वह अपने घर की बहुत सारी बातें सुना रहा था। उसने कहा मेरे बड़े बेटे से झगड़े होते रहते हैं। उस बेटे ने मुझे यहाँ तक कह दिया कि आप मर जाओगे तो कंधा लगाने या जलाने भी नहीं आऊंगा। उस परिवार में वैभव की, पैसे की कमी नहीं है पर बातों ही बातों में झगड़ा हो जाता है। तब मैंने कहा–आखिर वह ऐसा कहता क्यों है ? बेटा नालायक है क्रोध करता है। पर आप तो गुस्सा नहीं करते हो। बाप ने

कहा—वो लड़ेगा तो मैं भी लडूंगा। कहा जाता है पूत कपूत हो जाते हैं। पर मायत कुमायत हो जावे तो घर नहीं चल सकता। उसने गुस्सा किया किन्तु आप शान्त रहें। बेटे की रग–रग में आपका खून दौड़ रहा है। बेटे को झुकाने से पहले आपको झुकना होगा। जब तक हमारा झुकाव नहीं होगा तब तक कितना भी प्रयास कर लो उसे झुकाना मुश्किल है।

एक किराये का मकान है उसमें व्यक्ति को आनन्द नहीं आता है किन्तु सेठ ने उसे बेच दिया और वही मकान आपने खरीद लिया तो आपको बड़ा आनन्द आता है। जबकि कमरा वहीं है, किचन वहीं है, सुविधा वही है पर आनन्द अपूर्व है। क्योंकि नजरिया दृष्टि चेन्ज (Change) हो गई है। यह किचन मेरा, यह कमरा मेरा, यह हाल मेरा भीतर से आनन्द स्फुटित हो रहा है। खुशियां दिल में समा नहीं रही है। 10–12 व्यक्तियों को वह कह देगा। यह मकान अब किराये का नहीं मेरा हो गया है। वस्तु वही, चीज वही, किन्तु दृष्टि चेन्ज (Change) है। अतः अपन सोचते हैं सुख अमुक वस्तु से मिलेगा ऐसी कोई बात नहीं है। पर सही समझ आ जावे तो व्यक्ति जिन्दगी के हर प्रसंग से खुश रह सकता है। जिसको आपने अपना मकान समझा है वह भी सर्वज्ञों की दृष्टि से अपना नहीं है। यह शरीर भी आपका नहीं है। किराये के मकान की दिवार टूट जाये तो आपको दुःख नहीं होगा। किन्तु घर की मकान की दिवाल टूटे तो भयानक दुःख होगा। अर्थात् जिस वस्तु को तुम खरीद रहे हो वही दुःख का प्रोडेक्शन (Production) कर रही हैं। आप किराये की टैक्सी में बैठे हैं उस टैक्सी का टायर पिन्चर हो, टैक्सी टूटे फूटे कुछ भी हो आपको दुःख नहीं होगा। स्वयं की कार में जरा सी खरोंच आ गयी तो ऐसा लगेगा जैसे दिल पर खरोच आ गयी है। प्रभु महावीर कहते हैं आज जो चीज सुख देने वाली है वही कल दुःख देने वाली हो सकती है।

घर के आंगन में यदि सुख का फूल खिलाना है तो बाहरी वस्तुओं से हट अंतरंग को जागृत करना होगा। अन्तर की जागृति हो गयी तो आप किराये के मकान में रहे तो भी वही बात और घर के मकान में रहे तो भी वहीं बात। फटे कपड़े हैं तो भी वही बात व नये कपड़े हैं तो भी वही बात है। अगर बाहरी पदार्थों से ही सुख दुःख आधारित रहा तो वह व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता है। अगर सर्वे किया जाय तो मिलेगा कि व्यक्ति 95 परसेन्ट (Percentage) तो दुःख में ही जीता मिलेगा। आज भी यदि कहा जाए कि आप के कोई दुःख हो तो बता दो। उसका चमत्कारिक साधन है तो सभा में

उपस्थित सभी जन खड़े हो जायेंगे। हमारा यह दुःख है, हमारा यह दुःख है। घर में डॉ. आवे और एक बार की फीस लग गयी अब घर में किसी को भी देखा जा सकता है तो परिवार के सभी सदस्य दिखाने खड़े हो जायेंगे। मेरा सिर दुःख रहा है, मेरे पेट में गड़बड़ हो रही है। आँखों में कैसा कैसा लग रहा है आदि अतः डॉ. ने भी कानून बना लिया है घर में जाकर भी एक सदस्य को देखना है उतनी फीस व दूसरे को देखना है तो उतनी फीस और ऐसी स्थिति में अगर डॉ. कभी कह भी दे कि और किसी को बताना हो तो घर के सदस्य मना कर देंगे और सभी ठीक है क्योंकि बताने से मीटर घूमना चालू हो जाएगा। फ्री में इलाज होता हो तो बीमारी आ जाए किन्तु मीटर घूमे तो नहीं।

व्यक्ति अपने विचारों से ही अपने दिमाग को खराब कर लेता है। दुकान में हमेशा 1000 कमाता है, आज 2000 रु. कमा लिये तो खुश होता है। किन्तु जैसे ही मालूम पड़े कि पड़ौसी ने 4000 रु. कमा लिये तो उसकी खुशी का रस खत्म। पति से लड़झगड़ कर ऊँचे दामों की साड़ी खरीदी। फंक्शन आया। बड़े शोख से पहनकर इठलाती हुई फंक्शन में गयी किन्तु दोस्त की पत्नी उससे भी दुगने दाम वाली साड़ी पहनकर आयी। उसे देखकर उसकी खुशियाँ समाप्त हो गई। अरे यह क्या जिन वस्तुओं के लिए आपने इतनी दौड़ लगायी वे ही दुःख देने वाली बन जाती है। शास्त्रकारों का कहना है कि किसी भी वस्तु को दिल से अपना मानने की कोशिश मत करो, आसक्त मत होवो, लगाव मत रखो। अगर मेरेपन से दूर रहे तो किराये का मकान भी सुखदायी होगा। हम पदार्थ के साथ रहकर भी दूर जीयेंगे तो आंगन में सुख का फूल खिलता रहेगा। अब आप देखिये। बगीचे में फूल खिलता है। सूर्य की किरणों से कमल खिलता हुआ खुशी से झूम उठता है। उसी स्थान पर रात्रि में 10–20 मर्करी ट्यूब लाइट भी लगा दी जाय तो भी उसके प्रकाश से कमल नहीं खिलेगा। मानव धोखा खा सकता है किन्तु फूल को तो ओरिजनल प्रकाश की ही आवश्यकता है। बाहरी पदार्थों का होना या न होना जरूरी नहीं किन्तु भीतर से समझ होना जरूरी है। अगर हमें अपने भीतर में, अपनी जिन्दगी में सुख की अवधारणा पैदा करनी है तो हमें उन पदार्थों को अपने अनुकूल बनाना होगा। हमें फूल के साथ अपने को जोड़ना होगा। पुष्प, शत्रु मित्र सभी को सुगन्ध देता है। चाहे कोई फूल को तोड़े या न तोड़े सभी को सुगन्ध देता है। हम भी पारिवारिक जनों के साथ समन्वय पैदा कर लें तो सुखी हो जाएंगे।

दो भाई थे, दोनों खेती करते थे। काम चल रहा था। पिता स्वर्गवासी हो गये। दोनों भाईयों में बहुत प्रेम था। बड़े भाई ने एक बार बात रखी। अपना स्नेह हमेशा कायम रहे अतः स्नेह के साथ ही अलग हो जाते हैं। बंटवारा हुआ, खेत अलग हो गये, मकान भी अलग हो गये। शान्ति से बंटवारा किया गया था। दोनों अपने–अपने खेत को संभालते थे। दोनों के खेत में अनाज पैदा हुआ। फसल भी कटी। दोनों खेतों में अनाज के ढेर लग गये। बड़ा भाई रात्रि में उठा और खेत का थोड़ा अनाज लेकर छोटे भाई के खेत में डाल आया। छोटा भाई भी उठा। अनाज की बोरी भरी उठाई और अपने बड़े भाई के खेत में खाली कर आया। ऐसा उन्होंने कई बार किया। एक बार दोनों आमने–सामने हो गये। दोनों के कंधों पर अनाज की बोरियाँ थी। छोटे भाई ने कहा–भाई सा. आप यहाँ। बड़े भाई ने कहा भैया इस समय तू यहाँ। दोनों के वचन एक साथ निकले। छोटे भाई ने कहा– मैं सुबह उठता हूँ, देखता हूँ अनाज ज्यादा हो गया। बात समझ में नहीं आई। बड़े भाई ने कहा–मेरे पास तो बहुत अनाज है। बेटा भी बड़ा हो गया। वह भी अलग कमाता है किन्तु तेरे अभी बच्चे छोटे है, कमाई भी इतनी नहीं है और हाथों हाथ दूंगा तो तू लेगा नहीं अतः मैंने रात को डालना ही उपयुक्त समझा। छोटे भाई ने कहा–मेरा परिवार तो छोटा है अतः खर्चा भी कम है। आपका बहुत बड़ा परिवार है। खर्चा भी ज्यादा है यह सोच रात्रि में मैं गुपचुप डालने आया। दोनों ने एक दूसरे की स्नेहमयी भावना को समझा। दोनों एक दूसरे के प्रति समर्पित है। अब उन्हें एक दूसरे के खेत में अनाज डालने की जरूरत नहीं। अंतरंग शान्ति का संचार हुआ। उनमें पदार्थ को पाने या न पाने से जो शान्ति नहीं मिली वह दोनों में पैदा हुए स्नेह से प्राप्त हुई। सुख वह आनन्द दौलत के प्राप्त होने पर भी प्राप्त नहीं होता है। आज तो दो भाई का एक साथ धंधा हो तो उसमें भी कुछ बचाने की कोशिश करेंगे। यह स्वार्थ बुद्धि व्यक्ति भीतर में गहरी उलझती जा रही है। हर व्यक्ति अपना अपना पेट भरता जा रहा है। फिर भाई–भाई की, सगी बहिन की या पिता की चिन्ता नहीं करता। हम दूसरों को अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं। किन्तु दूसरों को अनुकूल बनाने के लिए सहनशीलता समता को रखकर हमें उनके अनुकूल बनना होगा। सामने वाला कुछ भी करे यदि हम उनके अनुकूल बनेंगे तो वह भी अवश्य अपने अनुकूल बनेगा। उनकी भावना चेन्ज होगी।

चण्डकौशिक सर्प–भयंकर जहर उगलने वाला। वह चंडकौशिक हिंसा की भावना लेकर भगवान महावीर के पास पहुंचा। उसने बहुत फुफकार मारी, क्रोध किया किन्तु भगवान महावीर शान्त रहे। यहां तक की डंक मारने पर भी खून के बदले दूध की धारा छोड़ी। बदले में गुस्सा नहीं किया। तब सर्प स्वतः ही शान्त हो गया। भक्ति, मैत्री की भावना फूट पड़ी।

भगवान महावीर कहते हैं– हमें जहरीले व्यक्ति को चेन्ज (Change) करना है तो अमृत की वर्षा कर दो। हमें दूसरों को जोड़ने के लिए क्रोध वैमनस्य की जरूरत नहीं है, प्रेम शान्ति की जरूरत है। हम अनुकूलता पैदा कर लें। एक बहिन व्याख्यान में आयी। ऐसा ही व्याख्यान चल रहा था। अगर हमें दूसरों को बदलना है तो हमें अपने आपको पहले बदलना होगा। हमें अमृत वर्षा करनी होगी। उस बहिन ने बात पकड़ी। वह सरल हृदया थी। सरल व्यक्ति ही बात को पकड़ सकते हैं। नहीं तो सोचते हैं हमारे सुनने का काम है करना तो हमें कुछ और है। महाराज को तो यही सुनाना है पर हमारी स्टेज (Stage) अलग है। हमारी बात को महाराज नहीं समझ सकते। किन्तु सरल आत्मा शीघ्र बात को पकड़ती है। भगवान ने भी कहा है– " सोही उज्जय भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठर।" धर्म सरल आत्मा में ही ठहरता है। उस सरल आत्मा बहिन ने महावीर की बात को केच (Catch) की और अपने आप को वैसा बनाने का सोचा। उस बहिन की देवरानी कुटिल स्वभावी थी। वह हर बार जेठानी से लड़ती झगड़ती थी किन्तु जेठानी ने सोच लिया जहर बदलना है तो अमृत की वर्षा करना होगा। किन्तु देवरानी को जेठानी जरा भी अच्छी नहीं लगती। उसके बच्चे भी अच्छे नहीं लगते। एक बार जेठानी कहीं शादी में गई। बच्चों को देवरानी के पास छोड़ गयी। थोड़ी देर में बच्चा काकी के पास आया और कहने लगा भूख लगी तो वह कहने लगी, तूं पेटू है, भुक्कड़ है, बार–बार भूख लगती है। किन्तु बच्चे को गालियों से मतलब नहीं। उसे तो भूख लग रही थी। बोलता जा रहा था। काकी का पारा चढ़ा और चूल्हे में से जलती लकड़ी निकाली। बच्चे के पांव पर फैंक दी। बच्चा डरकर पीछे हटा। किन्तु लकड़ी पांव पर लग ही गयी। पांव जल गया। बच्चा जोर–जोर से रोने लगा, चिल्लाने लगा।

जेठानी उसी समय घर में आ गयी थी। उसने लकड़ी फैंकते साक्षात् आखों से देख लिया था। ऐसी स्थिति में कैसी समता ! पर कमाल की रही वह औरत। मां के पास बच्चा पहुंचा और कहने लगा– चाची ने मुझे ज़लती

लकड़ी से मारा है। मेरे पैर में जलन हो रही है। जोर–जोर से रोने भी लगा। किन्तु उसकी मां बोली काकी ने मारा ऐसा नहीं लगता तुम्हारी ही कुछ गल्ती होगी बिना गल्ती काकी मार नहीं सकती। तुम्हें भूख लग रही है जाओ चाची तुम्हे खाना खिला देगी। देखते ही देखते बच्चे को उठाकर काकी की गोद में बिठा दिया। काकी अपनी जेठानी की बात सुनकर अन्दर से चेन्ज (Change) हो गयी। आँखों से आँसू आ गये, जेठानी के पैरों में गिर पड़ी। जेठानी ने कहा क्या हो गया तुम्हें ! ऐसा क्यों कर रही हो यह बच्चा तुम्हारा है। काकी और मां बराबर होती है। तुम ही इसे खाना खिलाओ। दिवरानी जी कहती है मेरे से भयंकर गल्ती हुई है। जेठानी कहती है हो गया सो हो गया। भूल जाओ तुम इस बात को। बेटे के पैर में पट्टी बांधी। पापा आये। जेठानी ने सोचा इसके पापा आ रहे हैं बच्चा बोल देगा कि मुझे काकी ने जलती लकड़ी से मारा है तो शायद घर में क्लेश होते देर न लगेगी। बच्चा अभी सोया है उठने से पहले वह अपने पति से बोलती है बच्चा बड़ा नटखट है, चूल्हे के पास जाने से उसका पांव जल गया है। यह तो अच्छा हुआ कि उसकी काकी ने उसको देख लिया और बचा लिया नहीं तो पता नहीं क्या हो जाता। उसके पैर में काकी ने तुरंत ही पट्टी बांधी दी है। छोटे भाई की बहु के प्रति जेठ के दिमाग में बहुत स्थान हो गया। देवरानी यह सब कुछ सुन रही थी। सोच रही थी मेरी जेठानी सच में देवी है। सारा माहौल ही चेन्ज (Change) हो गया। देवरानी स्वतः ही जेठानी के अनुकूल हो गयी। क्या आज भी ऐसी सहनशीलता मिलेगी। आज बच्चों से लेकर बड़ों के बीच कितने संघर्ष हो रहे हैं। बात कुछ हो या ना हो उस बात को बढ़ा चढ़ाकर बतलायी जाती है। जिससे संघर्ष होता है सुख नहीं मिलता।

सोचते है टी.वी, आयेगी सुख मिलेगा, वी. सी. आर. फर्नीचर (Furniture) आदि से सुख मिलेगा किन्तु इनसे सुख मिलने वाला नहीं है। आप झोंपड़ी वाले को देखो या महल वालों को देखो, सभी के अन्दर दुःख है। क्योंकि बाहरी वस्तु से सुख पाने की कोशिश की जा रही है। बाहर की मर्करी लाइटों से फूल खिलाने की कोशिश की जा रही है। फूल को खिलाना है तो अन्दर में समता पैदा करना होगा।

सीलिमोहन एक दार्शनिक हो चुका है उसे उसकी पत्नी झगड़ालु मिली। एक बार बहुत तत्त्व जिज्ञासु घर आये हुए थे। उन्हें समझाने में दार्शनिक को देर हो गयी। जैसे ही दार्शनिक भोजन करने आए। पत्नी ने

झगड़ना चालू कर दिया। झगड़ा करते–करते थाली भी परोस दी। दार्शनिक ने उस थाली को उठाया और पत्नी के सिर पर रख दी। पत्नी ने कहा– यह क्या ? दार्शनिक ने कहा–खाना ठंडा हो चुका है और मैंने सुना है जब व्यक्ति को क्रोध आता है उसका दिमाग गर्म हो जाता है। अतः मैं अपने भोजन को गर्म करना चाह रहा हूँ। ताकि तुम्हें पुनः गर्म करने की तकलीफ भी न पड़ें और मेरा काम भी हो जावे। पत्नी को हंसी आ गयी। उसने सोचा यह भी कोई इन्सान है या देव है। मैं कुछ का कुछ बके जा रही हूँ और इनके दिमाग में कुछ भी नहीं है। वह पति के पैरों में गिर गयी। दार्शनिक ने अमृतमय व्यवहार से अपनी पत्नी के जीवन को बदल दिया। आप भी समझौता करना सीखें। आज हमारे एक पांव में घाव हो जाए तो उसे काट नहीं फेंकेंगे। उसी प्रकार नियति कर्मों से जो मिला है उसी में सन्तोष करें। हमें अपनी समझ को आगे बढ़ाना है ताकि पारिवारिक जनजीवन में शान्ति पैदा हो सके। कभी कभी व्यक्ति फिजुल के विचार पैदा करता है और दुःखी हो जाता है। जैसे ही घर में बेटी पैदा हो कि चिंता चालू हो जाती है और भविष्य की अभी से सोचने बैठ जाते हैं। आदमी ज्यादातर कल के लिए जी रहा है कि कल क्या होगा ? एक पिता के तीन लड़कियाँ थी। एक बी.काम. कर रही थी, एक बी.ए. कर रही थी। एक 10वीं में थी। बाप को नींद नहीं आती। टी.वी. देखे खावे पीवे पर मन नहीं लगता। उदास रहता। पत्नी ने उदासी का कारण पूछा। पति ने बताया दिखता नहीं है क्या ? इनकी शादी करना है 2–2 लाख लगाऊँ तो भी 6 लाख चाहिए। मेरे पास इतना बेलन्स (Balance) नहीं है। आज कल लड़कियों की शादी करना कितना मुश्किल हो गया है। पत्नी ने कहा– पतिदेव ! अभी तो पहली लड़की के भी दो साल की देरी है। दूसरी के चार साल की, तीसरी की शादी में छः साल की देरी है। दो साल में तो बहुत कुछ हो सकता है। पति ने कहा– तूं कुछ नहीं समझती। औरतों का दिमाग बहुत कम होता है। आदमी अपने आप को ही सब कुछ समझता है। औरत की महत्त्वपूर्ण बात को भी नजर अन्दाज कर देता है। चाहे वो सही बात हो तो भी नहीं पकड़ते। पुरुष अपने को ही सब कुछ समझता है। ऐसा ज्यादातर देखा जाता है। आखिर पति को समझाने के लिए एक बार पत्नी उदास होकर सो गयी। पति ने पूछा उदासी क्यों छायी हुई है। वो बोली बहुत चिन्ता है 2000 थालियाँ मांजना है। 10 बोरी गेहूं चुगना है। 1000 बार कचरा निकालना है। हजारों रोटिया सेंकना है। पति ने कहा–यह किसने कह दिया।

पत्नी बोली– आने वाले एक वर्ष में करना है। 15 बर्तन सुबह, 15 बर्तन शाम को। कुल एक वर्ष में कितने हो जायेंगे। एक किलो आटा शाम को एक किलो सुबह गुंदना है। प्रतिदिन दो–तीन बार झाड़ू निकालती हूँ। अब हिसाब लगाइये की कितना काम करना है–मुझे। पति ने कहा– अरे पागल है क्या ? इतना सारा क्या तुझे एक साथ करना है ? धीरे–धीरे करना है। पत्नी ने बोला– तो क्या आपको तीनों लड़कियों की शादी आज करनी है। पहली लड़की की शादी में अभी 2 वर्ष बाकी है, दूसरी के 4 वर्ष व तीसरी के 6 वर्ष बाकी है। 2 वर्ष में तो बहुत कुछ समस्या हल होगी। अगर फिर भी पैसे की आवश्यकता है तो अतिरिक्त काम धन्धा करने की सोचें, मैं भी करूं आप भी करें। बेकार में चिन्ता करने की जरूरत नहीं। तब उसने अपनी सीधी समझ में सोचा। कुछ अलग से धंधा किया तो चाहत से ज्यादा उपलब्धि हुई। चिन्ता मिट गई।

आज सुख का फूल आंगन में खिलाने वाले नहीं दु:ख का फूल खिलाने वाले ज्यादा है। कोई आता है, मंत्र बताओ, पति मेरे को नहीं चाहता है, घर में मेरा अस्तित्व नहीं है। चारों और से धक्के मिलते हैं आदि किन्तु पहले भीतर के तारों को सही करें। सिर्फ ऊपर से बटन दबाने से कुछ नहीं होगा। भीतर के तंत्र को बदलना होगा।

अमेरिका का धनपति जेकुक एक गरीब व्यक्ति था। फिर पैसा खूब कमाया। धनवान बनने के बाद वह सोचा करता कि सम्पत्ति के ऊपर आदमी की प्रसन्नता नहीं रहनी चाहिए। सम्पत्ति तो आज है और कल नहीं। धन अलग है, इन्सानी खुशियाँ अलग है। एक बार जेकुक को व्यापार में बड़ा धक्का लगा। उसके दोस्त लोग संवेदना प्रकट करने एवं सहयोग करने के उद्देश्य से उसके पास आए लेकिन उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि जेकुक के चेहरे पर तो कुछ भी नहीं है। वह बोला– धन तो पहले भी नहीं था। अतः धन महत्त्वपूर्ण नहीं है। प्रसन्नता हर वक्त रहनी चाहिये।

अतः सम्पत्ति के साथ जीना मरना भूल जाओ क्योंकि यह तो नियति कर्मों की देन है। वह हो कर रहेगी। अपने आपको उसके साथ मत जोड़ो। फूल को खिलाने वाला माली भी अच्छा होना चाहिए। माली सही नहीं तो फूल खिल नहीं सकता। इसीलिए कहा है–

उपवन के माली फूलों को बरबाद मत करना
इन तीखे तीखे शूलों को आबाद मत करना।।

जब तक उपवन का माली सही नहीं होगा, तब तक फूल नहीं खिल सकता। वैसे ही बाहरी फेसिलिटी, पदार्थ महत्त्वपूर्ण नहीं है। आत्मा महत्त्वपूर्ण है। हमें सुख का फूल खिलाने आत्मा को जगाना है। सावधान होएं और जागें। भीतरी जागरण के बाद अवश्य शान्ति मिलेगी। आंगन में सुख का फूल खिलेगा। सुख के फूल को खिलाने में ओरिजनल (Original) प्रकाश की आवश्यकता है। उस ओरिजनल प्रकाश को पाने में जिन साधकों ने बाहर को छोड़ा है, वे सुख को प्राप्त कर लेंगे।



कृष्ण की उपयोगिता आज के युग में

श्रद्धाशील उपासकों ! इस संसरणशील संसार में अनन्त आत्माएं 84 लाख जीवयोनि के रूप में अवतरण लेती है और समय के परिपाक के बाद चली जाती हैं। जन्म–मरण की शाश्वत परम्परा आज कल से नहीं अनादिकाल से चली आ रही है। इस परम्परा को वही व्यक्ति उच्छेदित कर सकता है जो अपने आत्मस्वरूप को पहचान कर संसार की समस्त आत्माओं को अपनी आत्मा के समान समझ ले तथा अहिंसक संस्कृति का बिगुल बजा दे। जब तक मानव स्वार्थ में उलझता रहेगा, तब तक यह स्वार्थीय परम्परा जन्म–जन्म तक उलझाती रहेगी। स्वार्थ से मतलब अपनी इच्छा पर अनियंत्रित दौड़ है। भगवान महावीर ने बतलाया–" इच्छा हु अगास समाअणंतिया।" इच्छा आकाश के समान अनन्त होती है। इन अनन्त इच्छाओं को पूरी करने के लिए अनन्त भव भी कर लिए जावे तो इच्छाओं का अंत नहीं आता। अनन्त भव भ्रमण भी इसीलिए हो रहा है कि हमारी अनन्त इच्छाएं चालू हैं। वे हमें परेशान कर रही हैं। हम जन्म ले रहे हैं और इन इच्छाओं की पूर्ति करने भागते हैं किन्तु इच्छाएं पूरी नहीं होती। हम खत्म हो जाते हैं। इच्छा एक ऐसी द्रौपदी का चीर बन गई है जिसका अन्त नहीं किया जा सकता है। हम उस द्रौपदी के चीर को खींचने का प्रयास करते हुए इन्द्रियों पर नियंत्रण करें। आत्मा में अनन्त सुख बतलाया गया है, वह मोक्ष में है। आप कहोगे उस मोक्ष में कौनसा सुख जहाँ खाना–पीना बढ़ियाँ नहीं, हिल स्टेशन (Hill Station) पर घूमना नहीं, फिर क्यों दौड़ लगाई जा रही है ?...........पर आप जो भौतिक सुख पाने के लिए दौड़ लगा रहे हैं किन्तु सुख मिलता है क्या ? सोचते हैं शादी करने के बाद सुख मिलेगा पर 2–4 साल बाद 10 साल बाद पूछो तो यह कहते हुए मिलेंगे कि हम हैरान हो गये, दुःखी हो गये। आप हिल स्टेशन (Hill Station) पर जाते हैं घूमने के लिए दार्जलिंग, नैनिताल, मसूरी जाते हैं पर वहाँ कितने दिन रहेंगे ? 2–4 दिन, 10 दिन, महिना बस ! फिर वहाँ रूकेंगे ? नहीं। क्या उन पंहाड़ों से माथा फोड़े ? यह मन परिवर्तनशील है। कितना भी बाह्य वस्तु से सुख मिल जाय वह सुख देने वाला पदार्थ ही एक सीमा के बाद

दुःख देने वाला हो जायेगा। जानते हैं फिर भी निरन्तर उसके पीछे ही भागते जा रहे हैं। आत्मा की शक्ति कों खर्च करते जा रहे हैं।

द्रौपदी को जब मंच पर ले आया था दुःशासन ! सोच रहा था इसने मेरी इज्जत खराब की है तो इसकी भी सारी सभा के बीच इज्जत खराब की जायेगी। इसको नंगी की जाये। द्रौपदी ने अपने पांचों पतियों के सामने देखा, सभी जमीन की तरफ आँखें गड़ाये बैठे थे। भीष्म पितामह द्रौणाचार्य भी मंच पर बैठे थे। एक से एक धुरन्धर लोग बैठे थे। सभी को द्रौपदी ने अपनी सहायंता के लिए पुकारा। किन्तु वे सभी, कोई नहीं आये, चुप रहे। तब उसने सोचा मेरा कोई सहारा नहीं है। फिर भगवान में ध्यान लगा दिया। "अरिहंताणं, सिद्धाणं" में अपने को लगा दिया। हे प्रभो ! इस समय तुम्हीं मेरे रक्षक हो। तब आत्मा का तार परमात्मा के साथ लग जावे तो फिर कोई ताकत नहीं चलती। दुःशासन द्रौपदी की साड़ी खींचने में लग गया। साड़ी का ढ़ेर लग गया। आश्चर्य हुआ, आखिर ये कपड़ा आ कहाँ से रहा है ? जिसकी सांइयां रक्षा कर रहा है उसका कौन क्या बिगाड़ सकता है ? उसके परमात्मा रक्षक थे। आप सोचते होंगे ये जादू हो गया किन्तु ऐसी बात नहीं है। वैज्ञानिक भी इस बात को मानने के लिए तैयार हैं। अब तो सौर ऊर्जा से मशीनें चल रही है। अब सौर ऊर्जा से ही आपकी मशीनें ठीक होने लग जायेगी। जैसे सौर ऊर्जा इस वायुमण्डल में फैली हुई है वैसे ही परमात्मा की ऊर्जा पूरे वायुमंडल में फैली हुई है। जैसे लन्दन से कोई कार्यक्रम रिलीज होता है और यहाँ बटन दबाते ही चित्र सहित आवाज टी.वी. पर आ जायेगी। वायुमंडल में जैसे चित्र व शब्द घूम रहे हैं। वैसे ही परमात्मा की अनन्त शक्ति वायुमंडल में घूम रही है। पर बटन को ऑन (On) करो। द्रौपदी ने बटन को ऑन (On) कर दिया और परमात्मा में लगन लगा दी। वायुमंडल में फैली उस विशिष्ट ऊर्जा के परिणामस्वरूप कपड़ा लम्बा बना। ये तो ठीक है कि कपड़ा ही लम्बा बना पर परमात्मा की पूरे वायुमंडल में फैली हुई अनन्त शक्ति से कुछ का कुछ बना सकता हैं। बड़ी—बड़ी मशीनें तैयार हो सकती है। बस बटन को ऑन (On) करने की जरूरत है। आप सोचेंगे जिस समय द्रौपदी के द्वारा पाण्डवों को याद किया गया था उसी समय कृष्ण ने क्यों नहीं रक्षा कर दी ? पर नहीं क्योंकि उस वक्त द्रौपदी को यह विश्वास था कि उसे बचाने वाले उसके पांच पति और कृष्ण देव हैं। इसलिए पूर्ण समर्पणा के साथ परमात्मा की पुकार नहीं हो पाई। पर यहाँ तो वह पूरी तरह निराश होकर

पूर्ण समर्पणा के भक्ति कर रही थी। परमात्मा को विशुद्ध भावों से याद करना होगा, तभी कार्य होगा। परमात्मा के साथ एक ही लौ लगानी होगी। टी.वी. के दो स्विज एक साथ नहीं दबते हैं। अगर दबाते हैं तो घरड़–घरड़ की आवाज आयेगी। इसलिए एक समय में एक ही बटन दबाना होगा। आधुनिक कई लोग तो हाथ में परमात्मा की माला भी ले लेते हैं, बातें भी कर लेते हैं, टी.वी. भी देख लेते हैं, किन्तु उससे सिर्फ आवाज ही आती रहेगी। सही प्रतिफल, सही कार्य नहीं होगा। आज के युग में भी कई घटनाएं घट रही है जो व्यक्ति विशुद्ध भाव से परमात्मा के साथ जुड़ जाता है उसका स्क्रीन परचाहे जैसा चलचित्र आ सकता है। हमें परमात्मा वाला बटन दबाना है तभी मशीनें सही चल सकती है। इस स्क्रीन को सही चलाने के लिए ध्यान दीजिये श्री कृष्ण के जीवन पर।

द्रौपदी को जिस समय पद्मनाभ उठाकर ले गया कृष्ण ने पाण्डवों को ललकारा। अरे ! एक व्यक्ति भी अपनी पत्नी की रक्षा कर लेता है तो तुम तो पांच–पांच बैठे हो। वे लड़ने गये और संकल्प किया–" अम्हे वा पद्मना भेवा" हम रहेंगे या पद्मनाभ रहेगा और युद्ध में भिड़ गये। देखते ही देखते पाण्डवों की ध्वजा–पताकाएँ उड़ा दी गई। रथ तोड़ दिये। हालात् यह हो गये कि अब पाण्डवों को ही मार देंगे। पाण्डव युद्ध से वापस आए श्री कृष्ण के पास। श्री कृष्ण ने कहा– अरे अर्जुन ! गांडवी धनुष हाथ में उठा लो। तो धरती थर्रा जावे। इसी प्रकार तुम पांचों में अपार शक्ति है फिर भी हार कैसे गये ? संकल्प जो कमजोर था। शत्रु को भी सबल मान लेने से शक्ति कमजोर हो गई। लेकिन जब कृष्ण लड़ने गये तब संकल्प लिया– "अम्हे वा न पद्मनाभे"। मैं ही जीतूंगा पद्मनाभ नहीं। उत्साह से युद्ध किया। पीछे नहीं हटे और महापद्म को हरा दिया। जीत के नगाड़े बज गये। आप में ताकत है या नहीं यह जितना महत्त्वपूर्ण नहीं उतना संकल्प मजबूत होना जरूरी है।

व्यापारी व्यापार करने से पहले सोचे कि हानि होगी या लाभ तो वह निश्चित ही फैल हो जायेगा। विद्यार्थी सोचे कि मैं पास होऊंगा या फैल तो वह फैल ही होगा। गाड़ी का ड्राइवर सोचे कि पता नहीं गाड़ी इधर–उधर भिड़ जाए तो उसकी गाड़ी एक्सीडेन्ट हो ही जायेगी। ऐसी सम्भावना ज्यादा है किन्तु आप देखते हैं, समर्थ ड्राइवर कितने आराम से स्पीड से गाड़ी चला लेता है। अस्थिर दिमाग वाला परिवार भी नहीं चला सकता है। उसके परिवार में हमेशा की चक चक होती रहेगी। सामाजिक जीवन में भी स्थिर

दिमाग की आवश्यकता है। वैसे ही तुम्हारा मन अस्थिर है तो परमात्मा सहायक नहीं बन सकता।

श्री कृष्ण ने दुर्योधन को कहा कि पाण्डवों को 5 गाँव दे दो किन्तु जिसके पास सम्पत्ति आ जाए तो उसे घमंड भी आ जाता है। दुर्योधन कहने लगा– मैं एक सुई की नोक के बराबर भी जमीन नहीं दूंगा और दुर्योधन ने श्री कृष्ण को भी बंदी बनाने की कोशिश की। किन्तु बंदी बनाने वालों की हिम्मत कहाँ जो श्री कृष्ण के हाथ लगा दे। किन्तु जब हाथ लगाने का प्रयास किया तब स्पष्ट हो गया कि अब इस वंश का पतन चालू है। श्री कृष्ण समझ गये कि यह युद्ध अब चालू होगा ही। युद्ध की स्थिति होने पर श्री कृष्ण की सहायता लेने दुर्योधन व पाण्डव दोनों पहुंचे। दुर्योधन अपने आप को बड़ा समझकर सिर की तरफ बैठा और अर्जुन पैरों में। श्री कृष्ण जैसे ही उठे और अर्जुन दिखाई दिये। पूछा– कैसे क्यों आना हुआ ? तब अर्जुन ने कहा–आपका सहयोग लेने आया हूँ। दुर्योधन ने उस बात को सुना और सोचा कहीं इसे वचन नहीं दे दे। अतः बीच में ही बोला कि मैं भी सहायता लेने आया हूँ। श्री कृष्ण ने कहा– मुझे तो पहले अर्जुन दिखाई दिये। अर्जुन के द्वारा मांग पहले हुई अतः मुझे उसको सहायता देनी होगी। दुर्योधन बोले नहीं मुझे सहायता देनी होगी। मैं पहले से बैठा हूँ। तब श्री कृष्ण ने सोचा लड़ाई हो सकती है अतः बीच का रास्ता निकाला कि मेरे पास दो शक्तियां है। एक तो विशाल सेना है और दूसरा मैं अकेला। बोलो तुम्हें क्या चाहिए ? किन्तु यह प्रश्न भी पहले अर्जुन को पूछा जायेगा। वही पहले मांगेगा क्योंकि मैंने पहले उसे देखा है। कोई तो कहते हैं कि दुर्योधन बीच में ही बोल उठा– मुझे तो सेना ही चाहिए। अर्जुन ने तो श्री कृष्ण को ही मांगा। उन दोनों की वही इच्छा थी जो पूर्ति हो गयी। अर्जुन ने तो सीधी मेन–शक्ति को ही पकड़ा। मूल रिमोट (Remote) को ही पकड़ा। आपने देखा होगा। राष्ट्रपति के पास में एक बॉक्स होता है उसमें रिमोट कंट्रोल होता है। उसमें सेना के ऑटोमेटिक जितने भी वाहन हैं वे बटन दबाते ही सारे चालू हो जाते हैं। प्राईमिनिस्टर (Prime Minister) तो कोई भी होगा तो चलेगा किन्तु राष्ट्रपति बहुत समझदार बनता है। वह सनकी हो तो सारे देश को तबाह कर सकता है। यों कहने को तो राष्ट्रपति के पास कुछ भी नहीं पर सबसे बड़ी ताकत तो उन्हीं के पास होती है। आपके सामने भी दुनियाँ की दौलत भी है व परमात्मा भी है। आपको कह दिया जाए कि दोनों में (परमात्मा व दौलत) से कुछ भी ले लो। आप हमारे

सामने बैठे हो अतः कह दोगे कि परमात्मा चाहिए किन्तु स्थानक से नीचे जाने पर क्या दिखेगा ? दुकानें व धन। दुकान पर बैठे हैं छोटी छोटी बातों में भगवान की सौगन्ध खा जाओगे। कहाँ है आपकी दृष्टि में परमात्मा का महत्त्व।

दुर्योधन की सारी सम्पत्ति यहीं रह गई वह मर गया। वैसे ही हम भी चले जायेंगे। महल धन सब यहीं रह जायेंगे। हमें वास्तव में कर्मों पर विजय पाना है आत्मिक शान्ति को वरना है तो रिमोट कंट्रोल (परमात्मा) को पकड़ना होगा।

अगर आपकी आत्मा स्ट्रोंग (Strong) हो जाए तो आप अपनी संकल्प शक्ति के सहारे कुछ भी कर सकते हैं। संकल्प शक्ति के सहारे से दूर बैठे व्यक्ति को सोने हेतु, बैठने हेतु, जगने हेतु विवश कर सकते हैं। सोचिये मन की शक्तियाँ भी इतना काम कर सकती है तो परमात्मा की शक्ति कितनी होगी ? वह परमात्मा की शक्ति हमारे साथ जुड़ जाए तो क्या नहीं कर सकते। आप परमात्मा को याद करते हैं पर किसलिए ? महल हेतु, धन हेतु आदि स्वार्थ हेतु। किन्तु परमात्मा के लिए परमात्मा को याद करने वाले कितने हैं। पांडवों ने रिमोट कंट्रोल श्री कृष्ण को पकड़ाया था। श्री कृष्ण पाण्डवों के रथ के सारथी बन गये। रथ को किस समय कैसे चलना ? कैसे बचाना आदि के साथ–साथ पाण्डवों का उत्साह भी बढ़ाते तीर सही लगाया है इसी तरह लगाओ। आदि। उधर दुर्योधन को मामा शकुनी शब्द कह रहे थे तीर नीचे गिर गया है। क्या तीर चलाया है ? क्या लड़ोगे तुम हार जाओगे आदि बातों से उत्साह गिर रहा था।

आज घर में माता–पिता स्वयं ही बच्चों के उत्साह को गिरा देते हैं किन्तु यदि हम बच्चों को ऊपर उठाना चाहते हैं तो उसमें उत्साह भरना सीखें। व्यापार आदि हर क्षेत्र में नेगेटिव पाइन्ट (Negative-Positive) छोड़िये व पोजोटिव पाइन्ट पकड़िये। कोई पानी का आधा गिलास पिलाने लाये तो आधा गिलास खाली न कहकर आधी गिलास पानी से भरी है। यह दृष्टि विद्येयात्मक है।

श्री कृष्ण गुणग्राही थे। पक्के सम्यक् दृष्टि थे। एक बार देवलोक में श्री कृष्ण के गुण ग्राहकता की प्रशंसा हो रही थी। किसी देव को विचार आया कि देवलोक के देवताओं के समक्ष मृत्युलोक के किसी मनुष्य की प्रशंसा कर रहे हैं। ऐसी क्या विशेषता है ? परीक्षा करके आता हूँ। उस देव ने मरी सड़ी

कुत्तिया का रूप बनाकर जिस रास्ते से श्री कृष्ण की सवारी निकल रही थी उसी रास्ते में बैठ गया। जो सेना वगैरह आ रही थी सब ने उस कुत्ती को देखकर नाक भौंह सिकोड़ना शुरू किया। किन्तु जैसे ही श्री कृष्ण की सवारी आयी तो श्री कृष्ण बोले देखो इस कुतिया की दांतों की पंक्ति कितनी सुन्दर है ? आज मानव की दृष्टि अवगुण ग्रहण की हो गयी है। कोई दान कर रहा तो कहेंगे दो नम्बर का पैसा है कहीं न कहीं तो खर्च करेगा ही। शर्म नहीं आती लोगों को कहते हुए। अरे खुद नहीं कर सकते तो दूसरों को तो कम से कम मत कहो। कोई वृद्धावस्था में शीलव्रत ग्रहण करता है तो कहेंगे अरे अब भी शीलव्रत ग्रहण नही करेगा तो कब करेगा। इस प्रकार अवगुण ढूंढेंगे। किन्तु हमें गुण गाना सीखना है। दुर्गुण हटाओ। गुण गाओ। हम सच्चे रूप से आत्मा को परमात्मा बनाना चाहते हैं तो गुण चुनना शुरू कर देंगे। आप तो घर में घुसते हैं और बोलना शुरू कर देते हैं यह वस्तु व्यवस्थित नहीं रखी हुई है। यह कपड़ा साफ नहीं धुला है, कालर गंदी रह गयी है, प्रेस ठीक से नहीं की है। टेबल पर बहुत गन्दगी हो रही है आदि। किन्तु उस स्थान पर आप कहो कि यह काम अच्छा किया, वो काम अच्छा किया। इस तरह यदि आपने 5 काम अच्छे गिना दिये तो सामने वाला स्वतः ही समझ जायेगा कि बाकी के काम अच्छे नहीं किये हैं आपको कहने की जरूरत नहीं है।

बादशाह ने बीरबल से कहा– क्या तुम्हारे भगवान श्री कृष्ण हैं ? हाँ ! अरे वो क्या भगवान है वह तो ग्वाला है ग्वाला। उसमें ग्वाले जैसी बुद्धि है। वैसे ही उसके काम हैं। क्या तुझे मालूम नहीं कि एक बार हाथी कीचड़ में फंस गया था, मगरमच्छ ने पैर पकड़ लिया तो उस हाथी की आवाज सुनकर वह स्वयं हाथी के पांव छुड़ाने भागा। अरे ! वह सत्ता का उपभोग करना जानता ही नहीं है। शाही ठाठ से रहना उसे आता ही नहीं है। छोटे–छोटे कार्यों के लिए नोकरों की तरह इधर–उधर भागता रहता है। उसका दिमाग इतना ही है। बीरबल ने कहा– महाराज ! इसका उत्तर में सात दिन में दूंगा। एक बार बीरबल व बादशाह घूमते–घूमते जंगल की तरफ जा रहे थे। रास्ते में तालाब की ओर दृष्टि पड़ी। उसमें तैरता डूबता शाहजादा दिखाई दिया। महाराज ने जैसे ही शाहजादा को तालाब में देखा और शीघ्र दौड़े कूद पड़े तालाब में और शाहजादा को पकड़ा। किन्तु वह तो मोम का था। बादशाह को शर्म आ गयी। वे बोले– अरे यह बदमाशी किसकी है ? बीरबल मुस्कराने लगा और बोला बचा लिया आपने अपने शहजादे को। बादशाह बोले– अरे

मूर्ख ! यह क्या किया तूने ? महाराज यह तो उस प्रश्न का जवाब है। श्री कृष्ण हाथी को बचाने क्यों गए ? आपने यह बात मुझे बोली थी किन्तु आप भी आज भागकर शहजादा को बचाने स्वयं गये। सारे कपड़े गीले कर लिए। आप भी किसी नौकर को बोल देते। मुझे कह देते। शहजादे को तो कोई भी निकाल कर ले आता। आपको दौड़ने की क्या जरूरत पड़ गयी। बादशाह बोले– अरे ! नादान मैं कब कहता और तू कब जाता ? कहने में समय लगता फिर किसी के जाने में समय लगता। उसके बाद भी उसको बचा पाते या नहीं या इतनी देर में वह डूब जाता। मेरा शहजादा– चला जाता तो ये कपड़े गहने राज्य सभी बेकार था। बीरबल ने कहा– तो सुन लो। हमारे कर्मयोगी श्री कृष्ण के लिए सारी जनता शहजादा है। वह प्रत्येक प्राणी को शहजादा के रूप में देखते हैं। आपको तो अपना बच्चा ही नजर आता है पर उन्हें सारी दुनियाँ अपने बच्चे के रूप में नजर आती है इसलिए वे एक हाथी की रक्षा के लिए भी भागे। उसकी उपेक्षा नहीं की। क्या आप भी करोगे ऐसा ?

बाहर प्रकाश किया, झांकियाँ लगा ली। हम अपने भीतर में प्रकाश करना चाहते हैं। अंधकार हटाना चाहते हैं. तो भाई के बच्चे को भी अपने बच्चे के समान समझो। बहु अपने घर आये पति को भोजन बड़े प्रेम से खिलायेगी किन्तु देवर आये तो कुछ न कुछ पक्षपात हो ही जायेगा। कृष्ण ने सारी दुनियाँ के साथ प्रेम किया। हम अपने परिवार के साथ भी प्रेम नहीं कर पा रहे हैं। कृष्ण ने तो तीन खण्ड की दुनियाँ को अपने हाथ में रख लिया। पर आप अपने परिवार को तो हाथ में रख लें।

श्री कृष्ण अरिष्टनेमी भगवान के दर्शन करने जा रहे थे। रास्ते में एक बुढ़ा एक एक ईंट उठाकर मकान में स्थान पर रख रहा था। यह देख उस बुढ़े की वृद्धावस्था से आर्द्र हृदय होते हुए श्री कृष्ण ने एक ईंट स्वयं उठाकर यथास्थान रखी। यह देख सभी सवारी के साथ चल रहे व्यक्तियों ने वैसा ही किया। देखते ही देखते ईंटों का ढेर यथास्थान पहुंचा दिया गया।

हमें भी ऐसा करना पड़ जाये तो हम क्या सोचेंगे ? हम इतने ऊँचे आदमी और ये काम करें। अरे ! दुनियाँ की बात तो जाने दीजिये आप पत्नी का सहयोग भी करते हैं क्या ? उसका भी सहयोग नहीं करते हैं। पानी भरना, कपड़े धोना आदि तुम्हारा काम है, जैसे भी हो तुम करो, तुम्हें लाये किसलिए आदि। आजकल तो कम्प्रोमाइजन होने लगा है। अपने हिस्से से ज्यादा काम कर लिया तो भी धर्म हो गया।

दो बहुएं हैं। बारी बांध दी कि एक दिन ये रसोई बनावे दूसरे दिन वो। यह तो ठीक है किन्तु दूसरे दिन भी दूसरी के बदले बनाले तो धर्म हो गया। श्री कृष्ण की तरह सहयोग करना सीखें।

हमारी आत्मा में कृष्ण पैदा करना है तो उनके सिद्धान्तों को, उनके गुणों को अपनायें। आप सोच रहे होंगे कि वहाँ जन्माष्टमी की झाँकी देखने जाना है। होटल जाना है। पर कभी सोचा है हमें अमुक का सहयोग करना है। लेकिन आजकल क्या सोचते हैं वह भी बता दें।

एक सभा में संन्यासी जी महाभारत पर भाषण दे रहे थे। प्रवचन के अन्त में एक जमीदार बोला कि आप कल आते तो बहुत अच्छा होता। क्योंकि कल रात 12 बजे तक तो मैं जुआ खेल रहा था। उसमें सब कुछ हार गया। मुझे दुःख इस बात का हुआ कि अब मेरे पास कोई चीज दांव पर लगाने को नहीं बची। सिर्फ पत्नी ही बची है। परन्तु मैं जानता नहीं था कि पत्नी को भी दांव पर लगाते हैं। संन्यासी ने कर्म फोड़ लिए। इतने में उसकी पत्नी खड़ी हुई और बोली– पांच पति पाकर भी द्रौपदी सती कहलायी तो मैं भी पांच पति बना लेती तो एक के पीछे दुःख तो नहीं देखना पड़ता मुझे। ऐसी बातें पकड़ ली उन लोगों ने। कोई कहते हैं पाण्डवों ने जुआ खेला हम भी खेलेंगे। नल राजा ने भी खेला था मैं भी खेलूंगा। इस प्रकार की बातें पकड़ने से तो बड़ी मुश्किल होगी।

एक युवक ने कहा– कृष्ण तो गोपियों के पीछे भागता था पर भाइयों ! कृष्ण इतना नादान नहीं था, जो इस तरह भागता। आज जो रासलीला रचायी जाती है। वह अपनी वासना पूर्ति हेतु है। गलत बातें जो उनके जीवन के साथ नहीं घटी हो वैसी बातें उठाकर दुनियाँ के सामने न बताई जाए।

पांडव जब जीत गए तब उन्होंने सोचा हमने बहुत लड़ाइयाँ लड़ी है, बहुत पाप हुआ है, अब तीर्थ स्थान पर जाकर उन्हें धो लिया जाए। युधिष्ठिर श्री कृष्ण के पास पहुँचे और अपनी बात बताई। पर श्री कृष्ण सोचने लगे क्या ऐसे ऊपर से शरीर को धोने से पाप साफ हो जाएंगे। पर सीधा कहने से मानेंगे नहीं। अतः कहा– जब तुम जा रहे हो तो मेरी यह तुम्बी भी ले जाओ। मैं तो चल नहीं सकता किन्तु मेरी तुम्बी को भी प्रत्येक तीर्थ में स्नान करवा के लाना। पाण्डवों ने कहा– ठीक है। उन्होंने उस तुम्बी को साथ में ले लिया और तीर्थ यात्रा पर निकल गये। सभी तीर्थों पर गये और उन्होंने अपने शरीर को मल–मलकर धोया तथा साथ ही उस तुम्बी को भी रगड़–रगड़ कर धोया,

शुद्ध किया इस प्रकार सभी तीर्थों पर घूमकर पुनः श्री कृष्ण के पास आये और वह तुम्बी श्री कृष्ण को दे दी। श्री कृष्ण ने कहा– इस तुम्बी को पीस डालो क्योंकि सारे लोग तो तीर्थ स्थानों पर घूमने जा नहीं सकते अतः उनको भी प्रसाद मिल जायेगा तो शुद्ध हो जायेंगे। श्री कृष्ण की आज्ञा होते ही तुरन्त तुम्बी को पीस दिया गया। सबसे पहिले उस चूर्ण को श्री कृष्ण ने सारी सभा के समक्ष खाया फिर सभी को दिया। किन्तु हुआ क्या ? सभा में जिस को भी दिया जा रहा था वे थू–थू करने लगे। मुँह बिगाड़ने लगे। इधर–उधर झाँकने लगे। मुंह को रुमाल से पोंछने लगे तब श्री कृष्ण ने सम्बोधित किया कि अरे "तीर्थों में तुम्बी को स्नान कराने पर भी यह शुद्ध/मधुर नहीं हो पाई। इसकी कड़वाहट नहीं गई तो अपने को भी पापों को धोने के लिए ऊपरी स्नान नहीं अपितु तप–त्याग संयम को अपनाना होगा। ऐसे ही अगर पाप धुल जाए तो मछली, मगरमच्छ के तो पाप वैसे ही धुल जाएंगे। किन्तु ऐसे पाप नहीं धुलते। अतः जाओ दुनियाँ की रक्षा करो। अनैतिकता का परिहार करो। नैतिकता को ऊपर उठाओ।

इस प्रकार आज व्यक्ति थोड़ा सा प्रसाद चढ़ाए और कहे मेरा तस्करी का धंधा ठीक हो जायेगा। ऐसे कुछ नहीं होगा। अन्दर में राम, कृष्ण, महावीर को बिठाओ तभी सुख मिलेगा। जैन दृष्टि से जो काम किये हैं जैसे श्री कृष्ण ने दलाली की थी कि जो भी दीक्षा लेगा उसकी सहायता की जिसके फलस्वरूप आने वाले चौबीसी में भगवान महावीर की तरह से बारहवें अमम नाम के तीर्थंकर बनेंगे।

तुमने किसी को सहयोग किया है तो वह तुम्हारा होगा। तुमने इन हाथों से सेवा की है तो वह हमारी होगी। नहीं तो यह शरीर तो जलकर राख हो जायेगा। तुमने अच्छी भावना भर दी है। किसी को मीठे वचन बोले हैं, किसी को दान दिया है वह आपका हो जायेगा। पुण्यवान कृष्ण जन्में तो ताले टूटे। सर्प ने फन फैलाकर बच्चे पर छाया कर दी। यमुना ने रास्ता दे दिया।

आपने भी यदि अपने भीतर में कृष्ण को जन्मा लिया तो आपके भी दुःख के ताले टूट जायेंगे। रक्षक स्वतः ही आ जाएंगे। आप चिन्ता न करें। श्री कृष्ण को अन्दर जन्माना सीखें, तभी जन्माष्टमी मनाना सार्थक होगा।

महावीर की दृष्टि में प्रलय का दिन

इस दुनियां के निर्माण विध्वंस को लेकर भारतीय दर्शन में विविध विचार धाराएं प्रचलित हैं। किसी की धारणा यह है कि दुनिया को ईश्वर ने बनाया है। ईश्वर के हिलाए बिना संसार का एक पता भी नहीं हिल सकता। ब्रह्मा ने सृष्टि बनाई है विष्णु उसकी रक्षा करता है और महेश उसका संहार क़रता है। लेकिन जैन दर्शन की दृष्टि से यह दुनियाँ अनादिकाल से चली आ रही है और अनन्त काल तल चलेगी। इसे बनाने वाली ईश्वर नाम की कोई विशिष्ट सत्ता नहीं है। ईश्वर द्वारा सृष्टि निर्माण करने की स्थिति में तो अनेक विसंगतियां पैदा हो जाएगी क्योंकि क्यों तो ईश्वर ने बनाया और क्यों उसे विषम बनाया है। जबकि वह सर्वशक्ति सम्पन्न स्वतन्त्र है परम दयालु जो है।

हकीमत में जीव अपने कर्मों के अनुसार ही इस दुनियाँ में सुख दुःख की अनुभूति कर रहा है। उसे सुख दुःख का भोग कराने वाली अलग से कोई ताकत नहीं है। मिर्ची स्वयं ने खाई है तो मुंह जलाने के लिए तीसरा कोई नहीं आएगा।

वर्तमान युग में विश्वविनाश को लेकर अनेक शंकाए जनमानस को आन्दोलित करती रहती हैं। कभी कहा जा रहा है कि ओजोन की छत फट जाने से खतरा बढ़ रहा है तो कभी उपग्रहों के गिरने की आशंका उठती है तो कभी ज्योतिषियों की घोषणाएं इन्सानी मानस को आन्दोलित करती रहती है। अभी वर्ष 1999 माह मई 8 तारीख को प्रलय–विनाश की घोषणा भी हुई थी। जिसमें करोड़ों आदमी आशंकित हो उठे। जनजीवन कुछ दिनों के लिए अस्त–व्यस्त हो गया, जबकि हुआ कुछ भी नहीं।

जैन दृष्टि से अभी 18½ हजार वर्ष के लगभग कुछ नहीं होने वाला है। तीर्थंकर महावीर ने घोषणा की थी कि मेरा यह शासन 21 हजार वर्ष तक चलेगा। आज दिनांक 25.7.99 को 2525 वर्ष 3 माह 18 दिन बीते हैं। 18 हजार चार सौ चउत्तर वर्ष 8 मास बारह दिन अवशेष है (अंकों में 18474 वर्ष 8 मास 12 दिन अवशेष हैं) तब तक दुनियाँ का सम्पूर्ण विनाश नहीं हो

सकता। क्योंकि सम्पूर्ण विनाश होने की स्थिति में महावीर का शासन की जिन्दा नहीं रहेगा। जबकि अभी महावीर के शासन के चलते रहने में 18½ हजार वर्ष अवशेष हैं।

महावीर ने काल चक्र को दो भागों में बांटा है–1. अवसर्पिणी काल 2. उत्सर्पिणी काल। जिस काल में जीवों की शक्ति, अवगाहना, आयु क्रमशः घटती जाती है, वह काल अवसर्पिणी काल कहलाता है। जिस काल में जीवों की शक्ति–अवगाहना आयु आदि तथा भूमि आदि पदार्थों के रस–कस में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है उसे उत्सर्पिणी काल कहा जाता है। दोनों ही काल के 6–6 आरों के रूप में प्रभेद होते हैं। एक कालचक्र को पूरे होने में 20 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का समय लगता है। जो आज के समय संख्या सीमा से कई गुणा ज्यादा है। इस समय अवसर्पिणी काल चल रहा है। जिसमें प्राणियों की शक्ति, अवगाहना, उम्र एवं पदार्थों का रसकस कम होता जा रहा है। इसके छः भेदों के नाम इस प्रकार हैं–

1. सुषम सुषम 2. सुषम 3. सुषम–दुषम 4. दुषम–सुषम 5. दुषम 6. दुषम–दुषम।

सुषम शब्द से सुखकारी एवं दुषम शब्द से दुःखकारी अर्थ लिया गया है।

इस समय पाँचवा आरा दुषमा चल रहा है। जो कि 21 हजार वर्ष का है। उसमें से लगभग 2½ हजार वर्ष ही बीते हैं। इस आरे में दुःख की विपुलता होती है। नाम मात्र का सुख होता है। इन्सान की अधिकतम आयु इस समय 99 वर्ष की बतलाई है। इससे ज्यादा कोई जिन्दा नहीं रह सकता है। यह उम्र घटते–घटते इस आरे के अन्त में अधिकतम 20 वर्ष की रह जानी है। शरीर की अवगाहना याने हाइट सात हाथ की है, जो अन्त में एक हाथ की रहती है। शरीर की शक्ति में निरन्तर कमी आनी है। मिट्टी का स्वाद अन्त समय में कुंभकार की राख के समान हो जाना है।

इस 18½ हजार वर्ष में क्या कुछ घटना घटनी है वह भी महावीर ने इस प्रकार बतलाया है। 1. नगर गांव सरीखे बन जाने है। 2. ग्राम शमशान जैसे हो जाने हैं। 3. सुकुलोत्पन्न दास–दासी बनने हैं 4. राजा यम की तरह क्रूरदंड देने वाले होंगे। 5. कुलीन स्त्रियाँ दुराचारिणी होगी। 6. पुत्र पिता की आज्ञा भंग करने वाले होंगे। 7. शिष्य गुरु की निन्दा करने वाले होंगे। 8. सुशील मनुष्य दुःख उठाएंगे। 9. कुशील मनुष्य सुखी होंगे। 10. सर्प, बिच्छु, डांस, मच्छर आदि जीवों की उत्पत्ति अधिक होगी। 11. दुष्काल वहुत

पडेंगे। 12. ब्राह्मण लोभी हो जाएंगे। 13. हिंसा को धर्म बताने वाले बहुत होंगे। 14. एक मत के अनेक मतान्तर हो जाएंगे 15. मिथ्यात्व की वृद्धि होगी 16. देवदर्शन दुर्लभ हो जाएंगे। 17. वैताढ्य पर्वत के विद्याधरों की विद्या का प्रभाव मन्द पड़ जाएगा। 18. दुग्ध आदि सरस वस्तुओं की स्निग्धता कम हो जायेगी। 19. पशु अल्प आयु होंगे। 20. पाखण्डियों की पूजा होगी। 21. चौमासे में साधुओं की स्थिति के योग्य क्षेत्र कम रह जाएंगे। 22. साधुओं की बारह और श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करने वाला कोई नहीं रहेगा। 23. गुरु शिष्यों को पढ़ाएंगे नहीं। 24. शिष्य अविनीत होंगे। 25. अधर्मी, हटाग्रही, धूर्त, दगाबाज और क्लेशकारी लोग अधिक होंगे। 26. धर्मात्मा सुशील और सरल स्वभावी लोगों की कमी होगी 27. उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाले लोगों को भ्रम में डालकर फंसाने वाले नाम मात्र के धर्मात्मा ज्यादा होंगे। 28. आचार्य अलग–अलग सम्प्रदाय स्थापित कर आत्मस्वार्थी (अपनी जमाने वाले) और कई एक उत्थापी (दूसरों को उखाड़ने वाले) होंगे।

उपर्युक्त अवस्था आज के युग में घटती प्रतीत हो रही है अभी तो जिसमें 2525 वर्ष के लगभग बीते हैं। उपर्युक्त बातों का 18474 वर्ष तक (करीब) निरन्तर ह्रास आना है। आज से करीब 18474 वर्ष 8 महिना 12 दिन के अन्त में सोना–चांदी का विच्छेद हो जाएगा। लोहे की धातु रहेगी। चमड़े की मोहरें चलेगी। जिसके ये पास रहेगी वे श्रीमंत माने जाएंगे।

18474 वर्ष करीब बीतते–बीतते आरे का परिवर्तन होते समय एक दृष्टि से प्रलय विनाश का समय आ जाएगा। याने की आज से 18 हजार 500 वर्ष (करीब) बाद महाभयानक संवर्त्तक वायु चलेगी। तब कहते हैं वह साल दिन–रात तक चलेगी। जिसके कारण वैताढ्य पर्वत, ऋषभकूट, लवणोदधि की खाडी, गंगा, सिन्धु नदी के अलावा सुमेरूपर्वत, किले महल घर टूट–टूट कर भूमिसात् जमीदोज हो जाएंगे। जो मनुष्य इस तूफान आने से पहले वैताढ्य् पर्वत की गुफा में चले जाएंगे वे बच जाएंगे। उसी से फिर अगली वंश परम्परा चलेगी।

सात दिन–रात लगातार संवर्तक तूफान आने के बाद रात दिन तक भयंकर शीत लहर चलेगी। ऐसी बर्फिली तेज हवाएं होगी जो बाहर रहने वाले मनुष्यों को जड़ कर देगी। इसी प्रकार सात–सात दिन तक निरन्तर खारा जल बरसेगा। फिर जहर बरसेगा। फिर व्रज की तरह भयंकर आग सात–दिन

तक बरसेगी। फिंर मिट्टी बरसेगी और अन्त में सात–दिन रात तक धुएं की वर्षा होगी। इस प्रकार की वर्षा से देश का वातावरण बिल्कुल ही बदल जाएगा। यह आपेक्षिक दृष्टि कोण से कथन है।

इसके बाद छट्ठे युषम–दुषम आरे का प्रारम्भ होगा। उसमें घोरातिघोर दुःख आएगा। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के पुद्गलों में अनन्त गुणी हानि हो जाएगी। अधिकतम उम्र बीस वर्ष की होगी। उस युग में मनुष्यों को आहार की अपरिमित इच्छा बनी रहेगी। कितना भी खालो तृप्ति नहीं होगी। रात्रि में शीत और दिन में ताप अत्यन्त प्रबल रहेगा। इस कारण वे मनुष्य वैताढ्य पर्वत की बिल गुफाओं से बाहर नहीं निकल सकेंगे। केवल सूर्योदय और सूर्यास्त के समय एक मूहुर्त के लिए बाहर निकलेंगे। उस समय गंगा–सिन्धु नदियाँ का पानी सर्प के समान व्रकगति से बहेगा। गाड़ी के दोनों चक्र के मध्यभाग जितना चौड़ा और आधा चक्र डूबे जितना गहरा प्रवाह रहेगा। उसमें पानी कम कच्छ–मच्छ बहुत होंगे। वे मनुष्य उन्हें पकड़कर नदी की रेत में गाड़कर अपने बिलों में चले जाएंगे। तब दूसरी बार आकर निकालकर खाएंगे तो सब के सब उस पर टूट पडेंगे। लूटपाट करेंगे। मृतक मनुष्यों की खोपड़ी में पानी लाकर पीएंगे। जानवर मच्छों की हड्डियां खाकर गुजारा करेंगे। उस काल के मनुष्य दीनहीन, दुर्बल, दुर्गन्धित, रूग्ण, अपवित्र, नग्न, आचार विचार हीन, माता, भगिनि, पुत्री आदि के साथ संभोग करने वाले होंगे। छः वर्ष की स्त्री माँ बन जाएगी, कुत्ते सुअर के समान, वे बहुत परिवार वाले और महाक्लेशमय होंगे। धर्म पुण्य से हीन दुःख ही दुःख में ऐसा युग आगे 21 हजार वर्ष तक चलेगा। उपर्युक्त दृष्टिकोण के अनुसार स्पष्ट है कि प्रलय काल का दिन आने में अभी 18474 वर्ष, 3 महिना 18 दिन अवशेष है। इस दौरान महावीर के निर्देशानुसार मनुष्यों के शरीर में एवं खाद्य सामग्री के रसकस में निरन्तर क्षीणता अवश्य आ रही है।

भगवान महावीर ने अपना धर्म संघ 21 हजार वर्ष तक चलने की उद्घोषणा की है। 21 हजार में एक भी दिन ऐसा नहीं आएगा जिस दिन इस देश में उनके साधु–साध्वी श्रावक–श्राविका न हो और महावीर के साधु साध्वी तो ज्यादातर हिन्दुस्तान, भूटान, नेपाल के अलावा किसी अन्य देश में नहीं मिल सकते क्योंकि वे सभी पाद विहारी होते हैं। बिना किसी वाहन उपयोग के अन्य देशों में जाया नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान को पूरी तरह नेस्तनाबूद करने के लिए अमेरिका, चीन, रसिया बल्कि समूचा

विश्व ताकत लगा भी दे, सारे के सारे एटमबम यहाँ लाकर गिरादे तब भी यह पक्का निर्णय है कि देश संपूर्ण रूप से खत्म नहीं होगा। यही नहीं भारतीय सभ्यता और संस्कृति जिस शीघ्रता के साथ गिर रही है एक समय के बाद उतनी ही शीघ्रता के साथ उसमें विनाश नहीं विकास भी होगा। समय से पहले होने वाले विनाश को रोकने के लिए भारत के पास एक नहीं अनेक अस्त्र हैं। आज के वैज्ञानिकों ने ऐसे प्रयोग कर दिखाएं हैं जिसमें मानसिक सोच के बल पर प्राणियों की प्राण ऊर्जा निकालकर उनको खतम कर दिया गया।

युगोस्लाविया की राजधानी प्राग में वैज्ञानिक बोलस्लाव काफ्का ने अपनी मानसिक ऊर्जा से अनेक प्राणियों को मार गिराया था। इसी प्रकार शब्दों की मारक शक्ति को फ्रांस में मेडम फिनेलांग ने प्रमाणित कर दिया। इसके अलावा एक पुल पर 2000 हजार सैनिकों के एक साथ चलने से उनकी कदमों की टाप से पुल टूट गया। जब मन और वचन की शक्ति विध्वंस कर सकती है तो उससे सर्जन संजीवन होना भी स्वतः प्रमाणित है। हिन्दुस्तान में जितने अहिंसक धर्म हैं, विश्व के किसी अन्य देश में नहीं है। जितने साधु, महात्मा, त्यागी इस देश में हैं, उतने कहीं नहीं। जितने शाकाहारी लोग इस देश में है शायद और कहीं नहीं। इसके अलावा सभी जीवों का कल्याण चाहने वाले, प्रभु की भक्ति मन वचन काया से करने वाले इस देश में हैं उतने कहीं नहीं। इस पवित्र सोच से बन रहा आभामण्डल इस समूचे देश के विनाश को रोक रहा है। जब तक इस देश में राम–कृष्ण–महावीर ईसा–बुद्ध पीर आदि की अहिंसा, सत्य, करुणा, समतापूर्ण आवाज मन, वचन, कर्म के साथ गूंजती रहेगी तो दुनियाँ की कोई भी ताकत भले इन्सानी, आणविक शक्ति हो या फिर दैवी या दानवीय शक्ति ही क्यों न हो वह इस देश में प्रलय नहीं ला सकती।



बाहर के आकार : बताते विचार

हरेक मनुष्य के पास तीन प्रकार के योग होते हैं– मन, वचन, और काया। इन योगों का कार्य मुख्यतः सोचना, बोलना और करना है। ये तीनों योग उसकी आत्मा को भीतर से बाहर तक जोड़ने का काम करते हैं। मन से जो भी चिन्तन किया जाता है, उसका असर वचन काया में आए बिना नहीं रहता। इसलिए मनस्विदों ने मन को नियंत्रित करने एवं वश में करने की बात कही है। मन के नियंत्रित होने पर वचन और काया तो स्वतः ही नियंत्रित हो जाते हैं। जैन शास्त्रों में भी मन को नियंत्रित करने की बात महत्त्वपूर्ण रूप से प्रतिपादित की गई है। मन भीतर में है जो कि आत्मा से सीधा संस्पर्शित है। यह मन दो प्रकार का बतलाया है– द्रव्यमन और भावमन। द्रव्यमन तो पुद्गलात्मक होता है, भावमन विचारात्मक होता है। विचार स्फुलिंग एक तरह से आत्मा के ही पर्याय हैं। भीतर से उठने वाले ये स्फुलिंग, इन्सान को बाहर तक प्रभावित करते हैं। जिस प्रकार घड़े के भीतर यदि पानी ठंडा हो तो बाहर भी ठंडापन लगेगा और यदि पानी के स्थान पर जलती हुई लकड़ी हो तो बाहर भी गर्माहट आए बिना नहीं रहेगी। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा है– " जहा अंतोतहा बाहिं" इन्सान जैसा अन्दर में होता है वैसा ही बाहर भी आने लगता है। इसलिए बाहर को ठीक करने के लिए भीतर को ठीक करना आवश्यक है। "बाहर के आकार : बताते विचार" अर्थात् कई बार बाहर की आकृति, रेखाएं, शकुन आदि योग व्यक्ति के भीतरी जीवन को स्पष्ट करते चले जाते हैं।

जो विचार व्यक्ति के भीतर में चल रहे हैं उसका इन्द्रिय शरीर पर किसी न किसी रूप में असर आए बिना नहीं रहता। भले कोई कितना ही विचारों को छिपाने का प्रयास या कोशिश करे फिर भी उसकी इन्द्रियों पर वे भाव उभर ही जाते हैं। बशर्ते कि सामने वाला इन्सान यदि बुद्धिमान हो तो स्पष्ट अनुमान लगा लेता है कि इसके भीतर में क्या विचार चल रहे हैं।

यदि इन्सान को भीतर में क्रोध आ रहा है तो उसे वह कितना भी दबाने का प्रयास करे तो भी वह चेहरे पर किसी न किसी रूप में आ ही जाता है। जिसे एक छोटा सा बच्चा भी जान जाता है। बच्चा भी आजकल बड़ों का

मूड (Mood) देखकर बात करता है। यदि आपका मूड सही है तो वह आपका चेहरा देखते ही तुरन्त समझ जाएगा और वह आपसे उस वक्त किनारा कर लेगा। कई बार किसी व्यक्ति का कोई काम न बना हो या किसी ने डांट दिया हो तो उसका मुंह सूज जाता है। लोग उसे देखते ही जान जाते हैं और कई यह कह भी देते है कि थोबड़ा सूजा हुआ क्यों है ? कोई भीतर में प्रसन्न है तो उसके बाहर में प्रसन्नता झलक जाती है। जिसे देखकर यह जाना जा सकता है कि यह भीतर से बहुत प्रसन्न है और कई नजदीकी व्यक्ति उसकी प्रसन्नता को जानते हुए यह कह देते है कि भई ! आजकल तुम बहुत प्रसन्न लग रहे हो क्या कोई लॉटरी के टिकिट में बड़ा इनाम मिल गया है। इसी प्रकार किसी को अहंकार होता है तो उसका सीना तना हुआ और कंधे अकड़े हुए दिखलाई देंगे। जो उसके अक्कड़पन को बतला रहे होते हैं। इसी प्रकार माया–छल कपट का टेढ़ापन और लोभ तृष्णा वश दिखने वाला आकर्षण उसकी मानसिकता का परिचय देता हुआ पाया जाता है। किसी व्यक्ति में कितना क्या क्रोध आदि चल रहा है। इस का भी सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इसके लिए कषायों की परिभाषाएं सविस्तार पढ़ना अपेक्षित है। इसके साथ ही गुरु गम से ज्ञान समझना जरूरी है। दवाएं कितनी भी हो पर डाक्टरी परामर्श निर्देश आवश्यक है। वही स्थिति गुरु की है। पुस्तकीय ज्ञान कितना ही क्यों न हो तथापि उसे सही ढ़ंग से समझने के लिए योग्य गुरु की आवश्यकता रहती है।

बाहर से भीतर के विचारों को समझने के लिए कई नीतिकारों ने भी कहा है–

आकारैइंगितैर्गत्या, चेष्टया भाषणेन च।
नेत्रवक्त्र विकारेण, लक्ष्यतेन्तर्गतं मनः।।

इन्सान के बाहरी आकार, इंगित, संकेत, चेष्टा एवं बोलना तथा आँखों एवं चेहरे के एक्शन (Action) संकेत से उसके भीतर में रहे विचारों को समझा जा सकता है।

उत्तराध्ययन सूत्र के माध्यम से भगवान महावीर ने गुरु के प्रति शिष्य के विनय को स्पष्ट करते हुए कहा है–

आणानिद्देस करे, गुरुण मुनवाए कारए।
इंगियागार संपन्ने, से विणिएत्ति वुच्चई।।

आज्ञा और निर्देश के अनुसार चलने वाला गुरु, के पास रहने वाला, इंगित और आकार से सम्पनन साधक विनीत कहलाता है। बांहर के आँख मुख और हाथ के ईशारे से समझने वाला विनीत शिष्य कहलाता है और कई बार बिना बाहरी हाथ पैर आँख आदि हिलाए गुरु के मन में उठने वाले विचारों को समझ जाता है। वह पूर्ण समर्पित विनीत शिष्य होता है। यह तभी संभव है जब गुरु शिष्य के मन में परस्पर पूरी तरह तदाकारता हो। जिस प्रकार माँ का बेटे के प्रति होता है। बेटा दस हजार कि.मी. दूर है, वहाँ भी अगर उसका ऐक्सीडेंट हो जाता है तो माँ का मन यहाँ उचट जाता है। वह बच्चे पर आये संकट को भांप जाती है। यह भीतर के इंगित/एक्शन हैं।

वासिलिएव एवं कामिनिएव ने इस संदर्भ में कई प्रयोग किये हैं। एक वैज्ञानिक कुछ चूहों को लेकर समुद्र की गहराईयों में गया। जहाँ पर वायु तरंगें/ध्वनि तरंगें भी नहीं पहुँच सके। ऊपर एक वैज्ञानिक उन चूहों की माँ के सिर पर इलेक्ट्रोड (Electrode) मशीन फिट करके ऊपर बैठ गया। जिन–जिन समय पर नीचे वाले वैज्ञानिकों ने चूहों को मारा, ठीक उसी समय पर चूहियां माँ का दिल हिला और मशीन से उसके संकेत रूप ग्राफ्स (Graphs) बनते चले गए। जो कि चूहिया के भीतरी संकेतों को स्पष्ट कर रहे थे। ऐसे ही गुरु और शिष्य का जबर्दस्त सम्बन्ध हो तो वह गुरु के मनोगत विचारों को भी समझ सकता है। अटेचमेन्ट (Attachment) किसी के भी साथ गहरा हो तो वह उसके भीतरी इंगितों को भी पकड़ सकता है।

स्वर विज्ञान से भी बाहरी स्थिति को समझा जा सकता है। चन्द्रस्वर में नाक से श्वांस बाएं चलेगा। ऐसा कहा जाता है कि चन्द्रस्वर चल रहा हो तो सभी कामों, बाहर जाने आदि में सफलता का संकेत देता है। सूर्यस्वर के चलते विद्या विवाद, विघ्न अशान्ति आदि कार्यों के जीतने में सहयोग मिल सकता है। रात्रि में चन्द्रस्वर और दिन में सूर्यस्वर सही माना जाता है। चन्द्रस्वर में पूर्व उत्तर दिशा में जाना वर्जित है। सूर्यस्वर में दक्षिण पश्चिम में जाना वर्जित है। यदि कृष्ण पक्ष चल रहा हो तो सोम, बुध, बृहस्पति को दिन में चन्द्रस्वर और मंगल, शनि को रात में भी सूर्य स्वर सही माना जाता है। ये दोनों स्वर साथ चलते हो तो कोई भी अच्छा काम करना मना किया है। ऐसा भी बतलाया जाता है कि यदि स्वर के अनुसार दिन नहीं है और काम करना जरूरी है तो जिस तरफ का सुर चल रहा है, उस तरफ से पैर से 3½ कदम चलो। चन्द्र स्वर में बाएं से और सूर्यस्वर में दाएं से 3½ कदम पैर

वैसे ही चलने पर भी सही हो सकता है। इस प्रकार सुर विज्ञान से भी बाहरी स्थिति का चित्रण किया जाता है। यद्यपि अच्छा या बुरा निश्चय में तो आदमी के शुभाशुभ कर्म के उदय पर निर्भर है फिर भी इन संकेतों का अपनी जगह महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्वर विज्ञान की तरह बाहरी आकार के रूप में रेखाएं भी है जो उसकी भीतरी स्थिति को स्पष्ट करती है। जैन शास्त्रों में बताया गया है कि तीर्थंकरों के शरीर पर 108 उत्तम लक्षण होते हैं। शंख, कमल, गदा, स्वास्तिक, कलश आदि जो उनके तीर्थंकरत्व को स्पष्ट करते हैं। पैर में पद्म रेख होती है।

एक बार भगवान महावीर कहीं जा रहे थे। उनके नंगे पैर मिट्टी में पड़ने से मिट्टी में पद्म रेख अंकित हो गई थी। उत्पल नाम के नेमितिक ने अनुमान लगाया कि यहाँ से जाने वाला निश्चित ही कोई महासमृद्धिशाली चक्रवर्ती होगा। मैं जाऊँ और उनसे कुछ न कुछ दक्षिणा प्राप्त करूँ। किन्तु जब वह आगे बढ़ा तो वहाँ एकदम अकिंचन भगवान महावीर को ध्यान करते हुए पाया। उसे देखकर विचार आया कि यह क्या बात हुई। ऐसी पद्म रेखा और फिर यह भीखारी हो नहीं सकता। लगता है शास्त्र झूठे हैं। नैमितिक खिन्न होकर अपने शास्त्र नदी में बहाने की तैयारी करने लगा। इतने में प्रभु की वन्दना करने के लिए इन्द्र आया। उसने उत्पल को समझाया कि तम्हारे शास्त्र गलत नहीं है। यह तो चक्रवर्तियों के भी स्वामी हैं और स्वर्ग के 64 इन्द्रों के वन्दनीय है इनकी समृद्धि का क्या कहना। तब उत्पल को समझ में आया। इन्द्र ने उसे सन्तुष्ट किया। इसी प्रकार ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के पद्मरेख का भी वर्णन आता है। जिसे देखकर एक ब्राह्मण ने अनुमान लगा लिया था कि यह व्यक्ति भविष्य में निश्चय ही चक्रवर्ती बनेगा। इसलिए उसने अपनी कन्या की उसके साथ शादी कर दी। इस प्रकार रेखाएं भी भीतरी जीवन को कुछ अंशों में स्पष्ट करती है। लेकिन रेखा विज्ञान भी सही हो तब ना। लोग तो मस्तिष्क की रेखाओं को देखकर ही बहुत कुछ समझ जाते हैं। हर रेख मस्तिष्क की उसके 20 वर्ष के उम्र की प्रतीक बतलाते हैं। जितनी रेखाएं मस्तिष्क पर उभरेगी। उतने 20–20 वर्ष जुड़ जाते हैं। मस्तिष्क रेखाओं के बारे में कहते हैं कि जिसके एकदम सीधी रेखाएं हो उसे तत्पर बुद्धिवाला और ईमानदार समझा जाता है। अधूरी रेखा वाले को अस्थिर चापलूस समझा जाता है। छोटी–छोटी रेखाएं व्यापार आदि में असफलता की प्रतीक है। रेखा में आने वाला क्रास दुखदायी मृत्यु का सूचक है। प्लस निशान मिलनसार का सूचक

है। एक में से एक रेखा का निकलना साहसहीन, ढुल मुल नीति का परिचायक है और जो रेखा ऊँची–नीची चलती हो वह उस व्यक्ति की समृद्धिशालिता की परिचायक है। इसी प्रकार हाथ में भी जीवन रेखा, भाग्य रेखा, मस्तिष्क रेखा, हृदय रेखा आदि होती है। रेखा विज्ञान बहुत विस्तृत एवं गंभीर है। जिसको स्पष्ट एवं प्रामाणिक रूप में जानना आज के युग में बहुत मुश्किल है। फिर भी रेखाएं भी कोई हल्की, गहरी और कुछ बहुत ज्यादा गहरी होती है। जो एक ही विषय के फलाफल में अन्तर कर देती है। फिर भी रेखाओं का जो बाहरी आकार है, वह भीतरी जीवन को स्पष्ट करता है।

मृत्यु निकट है या दूर इस बात की जानकारी भी व्यक्ति के बाहरी चिह्नों से की जा सकती है। स्थानांग सूत्र के पांचवें ठाणे में कौन आत्मा, शरीर के किस अंग से निकलकर कहाँ जाती है। यह बतलाया है। नाक, कान, आँख, मस्तिष्क आदि गीर्वागर्दन के ऊपर से जिसका प्राण निकलता है उसके लिए देवलोक गमन बतलाया है। गर्दन से नीचे छाती, पीठ, नाक से श्वांस निकलने पर मनुष्य गति में जाना बतलाया है। नाभि से नीचे घुटने तक में से किसी भी अंग से श्वांस निकलने पर तिर्यंच गति में जाना बतलाया है। घुटने में पैर आदि से प्राण निकल जाय तो नरकगति में जाता है। जो आत्म प्रदेश, शरीर के सारे अंगों से निकलते हैं तब उसका मोक्ष होना बतलाया गया है। इसकी जानकारी अनुभवी व्यक्ति बाहरी श्वांस को देखकर लगा सकता है।

कुछ लोग शरीर के बाहरी चिह्नों को देखकर उसकी मृत्यु का अन्दाज भी लगाते हैं। स्वयं को स्वयं की भौंहे, नाक का अग्रभाग, जिह्वा का अग्रभाव दिखलाई न दे तो दो दिन में मृत्यु होने का संकेत मिलता है। स्नान करने के बाद सारा शरीर भीगा और यदि मुंह पहले सुख जाय तो 15 दिन में उसकी मृत्यु बतलाई गई है। कानों की कूपर पतली हो जाय, नाक की डंडी टेढी हो जाय, आँख सफेद हो जाय, नासिका लाल, कपाल काला हो जाय, मुख के बाल खिरने लगे, होठ सफेद हो जाय तो 3 दिन में मृत्यु की संभावना बतलाई है। भोजन पानी स्वाद न लगे। नाक के श्लेष्म की गंध दूध जैसी हो, छाती के दाहिनी ओर धड़कन बढ़ जाय। हाथ पैर के तलवे लाल हो जाय। नाखून काले पड़ जाय। शरीर की गंध शव जैसी हो जाय, नाड़ी सुस्त हो जाय, क्रोध बढ़ जाय, विनम्रता या मूर्च्छा बढ़ जाये, छाती पीली, जंघा श्वेत, गला नीला या लाल दिखाई दे। नाक पर सल पड़ जाए। हाथ–पैर ठंडे हो जाय और मस्तक गर्म रहे तो मृत्यु होना एकदम निकट बतलाया है।

शरीर के अंगों का स्वाभाविक वर्ण बदल जाय। मांस, वसा आदि नर्म अंग कड़े हो जाय। अचल अंग चल और चल अंग अचल हो जाय। आंखें घूम जाय, मस्तिष्क लटक जाय, जोड़ ढ़ीले पड़ जाय, आँखें या जीभ भीतर घूम जाय तो भी मृत्यु को निकट जानो। आधा शरीर गर्म और आधा शरीर ठंडा पड़ जाय तो सात दिन में मृत्यु की संभावना कही गई है। इस प्रकार अनुभवियों ने अपने–अपने ढ़ंग से मृत्यु की निकटता का बोध बाहरी अंगों से किया है। वैसे सिद्धान्तवादियों ने देवताओं के लिए भी बतलाया है कि च्यवन मरने से 6 महिने पहले देवताओं की फूलमाला मुर्झा जाती है जो उनकी मृत्यु को बतलाती है। कालिया कसाई के लिए भी बतलाया गया कि वह सातवीं नरक में जाने वाला था। जाने से पहले उसे घोर वेदना हो रही थी। उसके बेटे सुलभ ने उसके दाह ज्वर को शान्त करने के लिए बावना चन्दन का लेप करवाया। फिर भी कुछ नहीं हुआ। तब अभय कुमार के कहने पर उस पर अशुचि का लेप किया। गर्म–गर्म शीशा पिलवाया। कर्ण भेदी आवाजें सुनवाई जो उसे प्यारी लगने लगी। इसका कारण स्पष्ट करते हुए अभय कुमार ने कहा कि यह 7वीं नरक में जाने वाला जीव है। अतः वहाँ जो चीचें अच्छी लगने वाली है वे अभी से अच्छी लगने लगी है। शास्त्रकार भी कहते हैं कि जिस गति में जो जाने वाला है, उस सम्बन्धी आनुपूर्वी का उदय यहीं पर होने लग जाता है। जाने से पहले गति के अनुरूप ही उसकी विचार धारा भी बन जाती है। जो उसकी होने वाली गति का संकेत देती है।

कई बार पुराने व्यक्ति छींकने, खांसने, उबासी लेने से भी सम्बन्धित फलाफल का विचार करने लगते हैं। उनका मानना है कि जो छींक, सर्दी जुखाम या किसी बीमारी के कारण न आकर अगर सहज में आई है इसके पीछे भी कोई कारण है क्योंकि बिना क़ारण कोई काम नहीं होता। इसलिए छींक भी बहुत कुछ स्पष्ट करती बतलाती है। अनुभवी लोग यों कहते पाए जाते हैं–

"छींक पीठ की कुशल उच्चारे, बायी छींक कारज सब सादे।
सम्मुख छींक लड़ाई भारवे, छींक दाहिनि द्रव्य विनाशे।"
ऊपरी छींक सदा जय कारी, नीची छींक महाभयकारी।
अपनी छींक महादुःख दाई, ऐसे छींक विचारो भाई।

यह छींकों का स्पष्टीकरण अपने ढंग का दिया गया है। वैसे यह कोई जरूरी नहीं कि ऐसा ही हो।

एक बार हमें बंबई से विहार का संकेत मिला। आचार्य प्रवर ने चातुर्मास की घोषणा हमारे लिए रतलाम की करदी। पुस्तकें भुलाई जाने लगी। इतने में एक भाई ने छींक कर दी। हमने कहा– अब देखो क्या होता है। छींक तो हो गई। काम चलता रहा। बालकेश्वर से घाटकोपर तक रतलाम के लिए विहार हो गया। लेकिन पता नहीं क्या हुआ कि आचार्य प्रवर ने अचानक वापस बुलाया। हम लोग घाटकोपर से सीधे 22 कि.मी. करीब चलकर पुनः बालकेश्वर पहुंचे। आचार्य प्रवर से बुलाने का कारण पूछा वे बोले– तुम्हें अभी भेजने के लिए मेरी अन्तर आत्मा नहीं मानती। यहाँ भी तुम्हारी आवश्यकता है। मैंने कहा– ठीक है आपने ही खोला है चातुर्मास और आप बदल लीजिये और वह चातुर्मास बदल दिया गया। चातुर्मास, गुरुदेव के साथ घाटकोपर ही हुआ। कभी–कभी काकतालीय दृष्टि से समझें या सच। छींक का परिणाम ऐसा भी देखने को मिलता है।

कई बार आदमी ज्योतिष रेखाशास्त्र आदि में उलझ जाता है और अपने विलपावर (Will Power) को कमजोर कर देता है। जबकि इन सबसे ऊपर आत्मा का विलपावर स्ट्रोंग (Strong) होना ही सफलता का परिचायक है।

हम जब दिल्ली थे। चातुर्मास चाँदनी चौक में था। वहाँ कटरानील में पामेस्ट्री ज्योतिष के अच्छे जानकार श्री मोती जी मेहता रहते थे। जो फ्री (Free) में लोगों को देखते हैं। जिनके यहाँ दिखाने वालों की क्यू लगी रहती है। बड़े–बड़े नेताओं के लिये भी वे बतलाते हैं। उन्होंने सुन लिया होगा कहीं से कि ज्ञानमुनि जी म.सा. का चातुर्मास चाँदनी चौक है। एक दिन रविवार को दोपहर में आए। लगभग 2½ घंटे बैठे रहे। इधर–उधर की कुछ बातचीत हुई। तबतक हमें यह भी पता नहीं था कि ये इतने प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। जो लोगों को सहज सुलभ नहीं होते और यहाँ बड़े आराम से बैठे हैं। एक बार आने के बाद मोती जी मेहता अनेकों रविवार को दोपहर में आते रहे। लोगों को आश्चर्य कि यह व्यक्ति यहाँ कैसे आता है। जबकि इनके पास बिलकुल समय नहीं है। लोगों ने उनसे पूछ भी लिया। तो वह बोले कि मैंने यहाँ महाराज में कुछ देखा, इसलिए आता हूँ। जबकि हमने इतनी बार आने के बावजूद भी उन्हें एक बार भी अपना हाथ नहीं दिखलाया था। न तो हमारी ज्योतिष सम्बन्धी कोई चर्चा ही होती थी। बहुत बार हाथ दिखलाकर व्यक्ति अपने विलपावर को कमजोर कर लेता है।

दिल्ली प्रवास के समय तो तांत्रिक चन्द्रा स्वामी जी और विश्व धर्म प्रणेता सुशील कुमार जी भी आए। उन्होंने भी अपने ढंग की बातें करी। पर स्वयं का विलपावर ही सक्रिय होने पर सफलता मिलती है।

कई लोग शकुन के चक्कर में भी रहते हैं कि घर से निकले तब शकुन देखकर निकला जाय। कहीं बिल्ली रास्ता तो नहीं काट रही है। ऐसी कई धारणाएं लोगों के दिमागों में घूमती रहती है। कहते हैं शकुनी चिड़ियाँ छः माह पहले भूकम्प वाले स्थान को छोड़कर चली जाती है। जिस बात को वैज्ञानिक कभी कभी तो एक दिन पहले भी नहीं जान पाते। हमने भी दिल्ली में कुछ सैकंड का चला भयंकर भूकम्प से हिलते मकानों का अनुभव किया था। शकुन विचार सही है या नहीं, यह स्वतन्त्र रूप से समीक्षा का विषय है। भड्डरी द्वारा प्रचलित शकुन पर लोगों का भारी विश्वास देखा जाता है। जैसाकि कहा गया है–

गौन समे जो अपशकुन, ते आवत सुखदाय।
गौन समे जो शुभ शकुन, फर पैठत दुःखदाय।।
शकुन शुभाशुभ जानि निकट, हो हितो .निकट कल।
दूर सो दूर बखान, कहे भड्डरी सहदेवज।।

अर्थात् अंगार, शंख, लकड़ियाँ, रस्सी, कर्दमा, खल, कपास, तुष, हड्डी, केश, यवधान्य कूड़ा– करकट, तृण, छाछ, अर्गला, बिन ऋतु की वर्षा, प्रतिकूल वायु आदि के रहते यात्रा के लिए प्रस्थान शुभ नहीं माना जाता है।

ऐसा भी बतलाया जाता है कि यात्रा करते समय जल से भरा घड़ा लिये कोई सौभाग्यवती स्त्री मिल जाय। गाय बछड़े को दूध पिलाती मिल जाय तो अच्छे शकुन समझे जाते हैं। यदि यात्रा चल रही हो ओर रास्ते में बार–बार लोमड़ी दिखाई दे। बांयी ओर से दांयी ओर हिरण आता दिखे तो ये सभी लक्षण कार्य में सिद्धि देने वाले होते हैं। सोम और शनि को पूर्व दिशा में, मंगल बुध को उत्तर दिशा में, बृहस्पति को दक्षिण दिशा में यात्रा करने का मनां किया जाता है। यात्रा करते समय कुत्ता कान फड़फड़ा दे या धरंती पर लौटता दिखे तो भी अशुभ कारक माना गया है। यदि राह में नेवला मिल जाय, बांयी तरफ पक्षी चुगा लेते दिख जाय तो कार्य सिद्धि के परिचायक माने गए हैं। दस व्यक्तियों का यात्रा में साथ होना भी विघ्न का संकेत देता है। बिल्लियों का युद्ध भी यात्रा में प्रतिबंधक है। गधा बायां और सर्प दायीं दिशा में यात्रा में मिले तो उचित ठहराया जाता है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार से

शकुन–अपशकुन का विचार भड्डरी शास्त्र के माध्यम से मिलता है। इस समय उन सबकी लम्बी समीक्षा का प्रसंग नहीं है। केवल अभी तो इतना ही बतलाने का प्रसंग है कि बाहरी लक्षण भी तो अन्तरंग की स्थिति को स्पष्ट करने में योगदान दे रहे हैं। इतिहास में ऐसा भी बतलाया जाता है कि–

अवन्ति देश में तुम्बवन नामक नगर का धनगिरि नामक सद्‌गृहस्थ अपनी सगर्भा पत्नी को छोड़कर आर्य सिंहगिरी के पास दीक्षा ले ली थी। यह घटना वीर निर्वाण के 496 वर्ष बाद की बतलाते हैं। वे जब विचरण करते हुए पुनः तुम्बवन पधारे और भिक्षा के लिए जाने लगे तो कहते हैं कि उनके आचार्य श्री ने बाहरी शकुन लक्षणों का विचार करके अपने शिष्यों को यहाँ तक कहा था कि आज भिक्षा में जो भी सचित अचित मिल जाय उसे ले आना और वे गए। इधर उनकी संसारपक्षीय पत्नी ने बच्चे को जन्म दिया था, वह रोता ही रहता था। छः महिने तक खूब रोया। इधर महाराज को अपने घर आया देखकर उस महिला ने वह बच्चा महाराज के पात्र में बहरा दिया। उसका रोना बन्द हो गया। महाराज धनगिरी बच्चे को आचार्य महाराज के पास लाए। उसके पालन पोषण की व्यवस्था संघ ने की। भविष्य में वही बच्चा व्रनस्वामी के नाम से महान् प्रभावक आचार्य हुए। इस घटना से स्पष्ट होता है कि शकुन तो माने जाते हैं पर शकुन की सच्चाई को नापना जरूरी है।

वीर निर्वाण के 600 वर्ष बाद भयंकर दुष्काल पड़ा था। लोग मर रहे थे। उस समय व्रजस्वामी ने अपने शिष्य व्रजसेन से कहा था कि जिस दिन एक सेठ एक लाख स्वर्ण मुद्रा में एक मुट्ठी चावल खरीदकर विष खाकर मरने की तैयारी करता पाया जाय, वही दुष्काल का अन्तिम दिन होगा। हुआ भी यों ही। जिनदत्त सेठ, उनकी पत्नी ईश्वरी और उनके चार बच्चे नागेन्द्र, निवृत्ति, चन्द्र और विद्याधर भूख से परेशान ऐसा ही करने जा रहे थे। वज्रसेन मुनि ने देखकर रोका और दूसरे दिन से ही सुकाल की स्थिति बन गई। ये सब लक्षण अपने–अपने ढ़ंग के हैं जो भविष्य का निर्देशन कर रहे हैं। उन्हें समझने के लिए अनुभवी विद्वान की आवश्यकता है।

अंग फड़कना भी बाहरी आकार है। इससे भी भविष्य के संकेत मिलते हैं। स्त्री का बायाँ और पुरुष का दायाँ अंग फड़कना सही माना गया है। कहते हैं मस्तिष्क के फड़कने से जमीन की प्राप्ति होती है। ललाट प्रदेश के स्फुरण से स्थान और सफलता की प्राप्ति होती है। आँख के भौंहे और नासिका के मध्य भाग में फड़कने से आत्मीय व्यक्ति के मिलने की संभावना बतलाई गई

है। नाक और आँखों के मध्य में स्फुरण होने पर मुसीबत में सहायता, धन आदि के प्राप्ति का संकेत होता है। आँखों के अन्तिम भाग में या कंठ के नीचे फड़कन हो रही है तो भी धन लाभ का संकेत है। दाहिनी आँख के नीचे फड़क रहा है तो शत्रु बाधा से पीड़ित रह सकते हैं। कान का फड़कना अच्छी बात सुनने का संकेत है। होंठ, कंधा, गले में स्फुरण होने पर सुख, प्रसन्नता, संतोष, सुविधाएं आने की स्थिति में, भुजा के स्फुरण से प्रियवस्तु मिलने वाली है। हाथ के स्पंदन से संम्पति, पराक्रम की प्राप्ति होती है। रीढ़ का फड़कना पराजय का प्रतीक है। अतः उस समय महत्त्वपूर्ण काम नहीं किया जाय। कमर का स्फुरण भारी कामों में सफलता का सूचक है।

इस प्रकार अंगों के स्फुरण से भी अच्छे बुरे संकेत का अन्दाज लोगों द्वारा लगाया जाता है। वर्तमान के वैज्ञानिक में बाहरी वस्तुओं पर ही विशेष रूप से आधारित रहने वाला इन्सान इन सबका अनुभूतिपरक प्रमाणित ज्ञान नहीं कर पा सकने के कारण भी वह इन सब अवस्थाओं के ज्ञान से वंचित रह गया है। अन्यथा भड्डरी के ज्ञान से तो अनेक महत्त्वपूर्ण अवस्थाओं का ज्ञान किया जाता रहा है।

भड्डरी कौन हुई और यह ज्ञान कैसे क्या प्रचारित हुआ इसके पीछे भी एक रोचक तथ्य है।

घाघ नामक ज्योतिषी राजस्थान में जन्मे थे। परन्तु विद्वता के अनुरूप यहाँ पूरा सम्मान नहीं मिल पाया। तब वे वहाँ से निकलकर मध्यप्रदेश में धारानगरी चले गए। राजा भोज ने उन्हें उपयुक्त समझकर राज ज्योतिष बना दिया। इस पर स्थानीय लोगों को ईर्ष्या भी हुई पर इससे क्या हो। राजा माने जो राणी और भरे पाणी। ज्योतिषी घाघ बड़े ठाठ–बाट के साथ रह रहे थे। उस वक्त एक घटना घटती है। जो उनके जीवन में एक विशिष्ट परिवर्तन लाने वाली बनी। राज्य में एक वर्ष अकाल के लक्षण दिखलाई देने लगे। दूर–दूर तक पानी होने की संभावना ही नजर नहीं आ रही थी। यह देख राजा भोज विचार में पड़ गए, तुरन्त सारे ज्योतिषियों को एकत्रित किया और पूछा कि इस वर्ष पानी का योग है भी या नहीं। घाघ को छोड़कर सारे ज्योतिषियों ने ज्योतिष के पन्ने देखकर बतलाया कि तीन वर्ष तक इस प्रान्त में पानी का योग नहीं है। राजा भोज बहुत निराश हुए, उन्होंने घाघ से भी पूछा। अब तक घाघ चुपचाप बैठे थे। उन्हें अपनी ज्योतिष की गणना के अनुसार वर्षा का योग दिखलाई दे रहा था। पर जब सारे ज्योतिषी मना कर

शकुन–अपशकुन का विचार भड्डरी शास्त्र के माध्यम से मिलता है। इस समय उन सबकी लम्बी समीक्षा का प्रसंग नहीं है। केवल अभी तो इतना ही बतलाने का प्रसंग है कि बाहरी लक्षण भी तो अन्तरंग की स्थिति को स्पष्ट करने में योगदान दे रहे हैं। इतिहास में ऐसा भी बतलाया जाता है कि–

अवन्ति देश में तुम्बवन नामक नगर का धनगिरि नामक सद्गृहस्थ अपनी सगर्भा पत्नी को छोड़कर आर्य सिंहगिरी के पास दीक्षा ले ली थी। यह घटना वीर निर्वाण के 496 वर्ष बाद की बतलाते हैं। वे जब विचरण करते हुए पुनः तुम्बवन पधारे और भिक्षा के लिए जाने लगे तो कहते हैं कि उनके आचार्य श्री ने बाहरी शकुन लक्षणों का विचार करके अपने शिष्यों को यहाँ तक कहा था कि आज भिक्षा में जो भी सचित अचित मिल जाय उसे ले आना और वे गए। इधर उनकी संसारपक्षीय पत्नी ने बच्चे को जन्म दिया था, वह रोता ही रहता था। छः महिने तक खूब रोया। इधर महाराज को अपने घर आया देखकर उस महिला ने वह बच्चा महाराज के पात्र में बहरा दिया। उसका रोना बन्द हो गया। महाराज धनगिरी बच्चे को आचार्य महाराज के पास लाए। उसके पालन पोषण की व्यवस्था संघ ने की। भविष्य में वही बच्चा व्रनस्वामी के नाम से महान् प्रभावक आचार्य हुए। इस घटना से स्पष्ट होता है कि शकुन तो माने जाते हैं पर शकुन की सच्चाई को नापना जरूरी है।

वीर निर्वाण के 600 वर्ष बाद भयंकर दुष्काल पड़ा था। लोग मर रहे थे। उस समय व्रजस्वामी ने अपने शिष्य व्रजसेन से कहा था कि जिस दिन एक सेठ एक लाख स्वर्ण मुद्रा में एक मुट्ठी चावल खरीदकर विष खाकर मरने की तैयारी करता पाया जाय, वही दुष्काल का अन्तिम दिन होगा। हुआ भी यों ही। जिनदत्त सेठ, उनकी पत्नी ईश्वरी और उनके चार बच्चे नागेन्द्र, निवृत्ति, चन्द्र और विद्याधर भूख से परेशान ऐसा ही करने जा रहे थे। वज्रसेन मुनि ने देखकर रोका और दूसरे दिन से ही सुकाल की स्थिति बन गई। ये सब लक्षण अपने–अपने ढ़ंग के हैं जो भविष्य का निर्देशन कर रहे हैं। उन्हें समझने के लिए अनुभवी विद्वान की आवश्यकता है।

अंग फड़कना भी बाहरी आकार है। इससे भी भविष्य के संकेत मिलते हैं। स्त्री का बायाँ और पुरुष का दायाँ अंग फड़कना सही माना गया है। कहते हैं मस्तिष्क के फड़कने से जमीन की प्राप्ति होती है। ललाट प्रदेश के स्फुरण से स्थान और सफलता की प्राप्ति होती है। आँख के भौंहे और नासिका के मध्य भाग में फड़कने से आत्मीय व्यक्ति के मिलने की संभावना बतलाई गई

है। नाक और आँखों के मध्य में स्फुरण होने पर मुसीबत में सहायता, धन आदि के प्राप्ति का संकेत होता है। आँखों के अन्तिम भाग में या कंठ के नीचे फड़कन हो रही है तो भी धन लाभ का संकेत है। दाहिनी आँख के नीचे फड़क रहा है तो शत्रु बाधा से पीड़ित रह सकते हैं। कान का फड़कना अच्छी बात सुनने का संकेत है। होंठ, कंधा, गले में स्फुरण होने पर सुख, प्रसन्नता, संतोष, सुविधाएं आने की स्थिति में, भुजा के स्फुरण से प्रियवस्तु मिलने वाली है। हाथ के स्पंदन से संम्पति, पराक्रम की प्राप्ति होती है। रीड़ का फड़कना पराजय का प्रतीक है। अतः उस समय महत्त्वपूर्ण काम नहीं किया जाय। कमर का स्फुरण भारी कामों में सफलता का सूचक है।

इस प्रकार अंगों के स्फुरण से भी अच्छे बुरे संकेत का अन्दाज लोगों द्वारा लगाया जाता है। वर्तमान के वैज्ञानिक में बाहरी वस्तुओं पर ही विशेष रूप से आधारित रहने वाला इन्सान इन सबका अनुभूतिपरक प्रमाणित ज्ञान नहीं कर पा सकने के कारण भी वह इन सब अवस्थाओं के ज्ञान से वंचित रह गया है। अन्यथा भड्डरी के ज्ञान से तो अनेक महत्त्वपूर्ण अवस्थाओं का ज्ञान किया जाता रहा है।

भड्डरी कौन हुई और यह ज्ञान कैसे क्या प्रचारित हुआ इसके पीछे भी एक रोचक तथ्य है।

घाघ नामक ज्योतिषी राजस्थान में जन्मे थे। परन्तु विद्वता के अनुरूप यहाँ पूरा सम्मान नहीं मिल पाया। तब वे वहाँ से निकलकर मध्यप्रदेश में धारानगरी चले गए। राजा भोज ने उन्हें उपयुक्त समझकर राज ज्योतिष बना दिया। इस पर स्थानीय लोगों को ईर्ष्या भी हुई पर इससे क्या हो। राजा माने जो राणी और भरे पाणी। ज्योतिषी घाघ बड़े ठाठ–बाट के साथ रह रहे थे। उस वक्त एक घटना घटती है। ज़ो उनके जीवन में एक विशिष्ट परिवर्तन लाने वाली बनी। राज्य में एक वर्ष अकाल के लक्षण दिखलाई देने लगे। दूर–दूर तक पानी होने की संभावना ही नजर नहीं आ रही थी। यह देख राजा भोज विचार में पड़ गए, तुरन्त सारे ज्योतिषियों को एकत्रित किया और पूछा कि इस वर्ष पानी का योग है भी या नहीं। घाघ को छोड़कर सारे ज्योतिषियों ने ज्योतिष के पन्ने देखकर बतलाया कि तीन वर्ष तक इस प्रान्त में पानी का योग नहीं है। राजा भोज बहुत निराश हुए, उन्होंने घाघ से भी पूछा। अब तक घाघ चुपचाप बैठे थे। उन्हें अपनी ज्योतिष की गणना के अनुसार वर्षा का योग दिखलाई दे रहा था। पर जब सारे ज्योतिषी मना कर

रहे थे तब वे भी विचार में पड़ गए और एक बार फिर अपना ज्योतिष मिलाने लगे। उन्होंने कहा ज्योतिष के अनुसार तो योग है। पर जब सब मनाकर रहे थे तो अपनी बात को पुष्ट करने के लिए वर्षा से सम्बन्धित पशु–पक्षियों की चाल भी देख लेना चाहिये। यही सब सोचकर घाघ ज्योतिषी ने राजा को कहा– राजन्, इस प्रश्न का जबाब कल दूंगा। राजा मान गए– उन्होंने एक दिन का समय दे दिया।

घाघ जंगल में गए। वहाँ पर उन्होंने एक गधे को देखा। जिसके कान लटके हुए थे। वे कुछ और आगे बढ़े तो देखा चिंटियों के दल के दल मुंह में अन्न के दाने लिए बिलों के भीतर भाग रहे हैं। चिड़िया धूल–मिट्टी में स्नान कर रही है। वह सब उन्हें आसन्न निकट में ही वर्षा होने का संकेत दे रहे थे और आगे बढ़ने पर देखा कि आकाश में चीलों का एक समूह वृताकार–गोलाकार ऊपर उठता हुआ जा रहा था। यह सब वर्षा के योग की सूचना दे रहे थे। घाघ और आगे बढ़े। उन्हें एक नाला दिखाई दिया। जिसके इस पार एक महत्तर–हरिजन की लड़की अपने पशु चरा रही थी और दूसरी पार उसके पिता सुअरों को चरा रहे थे। लड़की ने पुकारा बापा बापा ! जल्दी लौट आ, आज रात को बड़े जोर में पानी आने वाला है। उसके बाद नाले में पानी भर जाने पर सुअर नाला पार नहीं कर पाएंगे। तब उसके बापा ने पूछा यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

लड़की बोली बापा ! नाले में टिटहरी ने अंडे दे रखे हैं। वह घबराई हुई है और जोरों से आवाज करती हुई अंडों को उठाकर दूसरी जगह सुरक्षित स्थान पर रख रही है। इससे स्पष्ट हो रहा है कि वर्षा जल्दी ही आज रात तक आ जाने वाली है। लड़की का नाम था– भड्डरी ! उसके इस विश्लेषण को सुनकर घाघ ज्योतिषी अवाक् रह गए। उन्हें वर्षा आने का पक्का विश्वास हो गया और वे तुरन्त धारा नगरी लौटे। राजसभा में राजा एवं उपस्थित सारे ज्योतिषियों के सामने घोषणा की कि वर्षा निश्चित रूप से होगी। आने वाले आठ पहर याने चौबीस घंटे में मूसलाधार वर्षा होने की संभावना है। सूर्य को प्रचण्डता के साथ तपते हुए देखकर किसी को इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। तब तक बादल की एक टुकड़ी भी नजर नहीं आ रही थी। लोगों ने पूछा इसका क्या प्रमाण है। ज्योतिषी घाघ ने कहा कि घाघ का वचन ही प्रमाण है। आगे आने वाले 24 घंटे का इन्तजार किया जाय। सभा विसर्जित हो गई। सभी अगले पल का इन्तजार करने लगे। घाघ भी अपने शयन कक्ष

में बादलों की ओर दृष्टि गड़ाए सो गए। रात्रि की प्रथम पहर बीत जाने तक आकाश एकदम साफ था। लेकिन रात्रि की 10 बजे बाद बादल की एक टुकड़ी दिखलाई दी और कुछ ही देर में रिमझिम रिमझिम वर्षा होने लगी। कुछ और समय बीत जाने के बाद तो घनघोर बादल छा गए, बिजलियाँ चमकने लगी, बादल गर्जने लगे और मूसलाधार वर्षा हुई। मानो जल–थल एकाकार हो गया। सभी लोग घाघ के वाक्य से आश्चर्य चकित थे। सवेरा होते होते तो घाघ के मकान के सामने भारी भीड़ एकत्रित हो गई। सभी घाघ की जय–जयकार कर रहे थे। सभी को घाघ की वाणी पर अचूक विश्वास हो गया था। राजा भोज ने घाघ को ज्योतिषी की सर्वोच्च उपाधि से विभूषित किया। अब तो इर्ष्यालु भी घाघ का लोहा मान गए।

ज्योतिषी घाघ को लगा कि महत्तर की लड़की भड्डरी यद्यपि निम्न कुलोत्पन्न है फिर भी बाहर के संकेतों से होने वाली घटनाओं का उसे अद्भुत ज्ञान है। जानकारी करने पर पता चला उसे शकुन–अपशकुन आदि अनेक बातों का भी जबर्दस्त ज्ञान है। घाघ ने सोचा– कीचड़ में भी कमल खिला है और पत्थरों में हीरा मिल रहा है उसे उठा लेना चाहिये। क्यों न भड्डरी से शादी ही कर ली जाए। तो शकुन आदि देखने में उसका भारी सहयोग मिलेगा। घाघ ने भड्डरी की मांग उसके पिता से की। पहले तो उन्होंने मना कर दिया। परन्तु बार–बार मांग करने पर उन्होंने अपनी पंचायत बुलाकर यह बात रखी। तब पंचायत में लोगों ने घाघ से कहा कि भड्डरी से शादी करने पर तुम्हें ब्राह्मण समाज से निकाल दे, यही नहीं राजा, राज ज्योतिष का पद वापस ले ले तो भी आप भड्डरी को नहीं त्याग सकोगे। घाघ ने यह बात मंजूर की तब भड्डरी का विवाह उसके साथ कर दिया गया। उन दोनों से मिलकर जो सन्तान पैदा हुई, वह डाकोत कहलाई। कहा जाता है कि आज डाकोत जाति् के लोग घाघ भड्डरी की ही सन्तान है।

यह घटना देश, काल की घटनाओं का भविष्य भी बाहरी लक्षणों से स्पष्ट कर रही है। यदि इन्सान बाहरी लक्षणों को समझने में निष्णात हो तो वह देश काल में घटने वाली घटनाओं को भी जान सकता है।

इसके साथ ही शरीर के बाहरी आकार भी भीतरी संकेतों को स्पष्ट करने वाले बनते चले जाते हैं। जिस प्रकार वचन दुनियाँ को समझाने में काम आता है उसी प्रकार शरीर के एक्शन भी लोगों को उसकी मानसिकता समझाने वाले बनते हैं। जिसे आज की भाषा में बॉडी लेग्वेंज के रूप में माना जाता है। इन्सान की बॉडी–शरीर भी एक़ भाषा का काम करती है।

सन् 1872 में एलबर्ट ने बतलाया कि व्यक्ति के बोलने का प्रभाव 7 प्रतिशत पड़ता है। 38 प्रतिशत लहजे का और 55 प्रतिशत भाव उसके संकेतों का होता है। चार्ली चेपलीन ने भी इस बात को विस्तृत समझाया। सन् 1960 में ज्यूलियस ने इसे और आगे बढ़ाकर संकेतों के अर्थ को व्यवस्थित रूप से प्रतिष्ठापित किया।

जैनागमों में बॉडी लेग्वेंज को अपने ढंग से अच्छे तरीके से समझाया है। यही नहीं जैन शास्त्रों में मन के एक्शन को भी समझाया है। जैसे किसी व्यक्ति को धीरे से कहा जाय कि यह काम तुम्हें करना है और यही बात तेज शब्दों में कहा जाय कि यह काम तुम्हें ही करना है तो सामने वाले के समझने में भारी फर्क आ जाता है। रेडियो से टी.वी. देखने में व्यक्ति को ज्यादा अच्छा समझ में आता है क्योंकि उसमें आवाज और लहजे के साथ ही एक्शन भी साफ नजर आते हैं। णमोत्थुणं में बायां घुटना खड़ा करवाया जाता है जो विनम्रता का प्रतीक है और गौतम स्वामी आदि जब प्रश्न पूछते थे, तब ऐसे ही बैठते थे। परन्तु जब श्रमण प्रतिक्रमण का पाठ किया जाता है दांया घुटना खड़ा करवाया जाता है। यह वीरता का परिचायक है। अर्थात् लिये हुए व्रतों को दृढ़ता के साथ पालन करने का सूचक है। यही स्थिति व्यवहारिक जीवन में भी बतलाते हैं कि जब बन्दूक चलाई जाती है तो राइट का घुटना आगे खड़ा किया जाता है। जिससे सीना तन जाता है। तभी वह सधे हुए हाथों से गोली चलाता है। अतिविशिष्ट व्यक्ति के कक्ष में जब कोई व्यक्ति जाता है। जिसके मन में सामने वाले व्यक्ति के प्रति पूरा सम्मान हो तो कक्ष में वह प्रवेश करेगा तो उसका स्वतः ही बांया पैर पहले प्रवेश करेगा। यदि सम्मान की भावना कम हो तो फिर दांया पैर पहले जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति कुर्सी पर बैठा है। वह बैठा–बैठा ही पैर पर पैर को चढ़ा देता है तो ऊपर वाले पैर का अंगूठा जिस तरफ गया है समझना चाहिये उस व्यक्ति का बोलने का ईन्ट्रेस्ट–चाह उधर की तरफ बैठे व्यक्तियों की तरफ है। जब वह पैर चेन्ज करता है तो जिधर पैर को चढ़ाया है अब वह उधर ही बात करना चाहता है। यह शरीर का संकेत है। चपरासी जब भी अफसर के पास जाता है, तो ज्यादातर वह उसके बांयीं तरफ ही आकर खड़ा होता है। किसी अफसर से काम करवाना हो तो उसके सामने नहीं बैठें। उसकी दांयी तरफ न बैठे। ऐसा बैठने पर हो सकता है काम न हो। क्योंकि सामने बैठने पर अफसर के मस्तिष्क में अदृश्य रूप में ऐसा लगता है कि यह उसका

कंपीटीटर (Compititor) है। दांयी और बैठने पर भी यही स्थिति है। बांयी और बैठना विनय का सूचक है। बांयी तरफ बैठे व्यक्ति पर सामने वाले का साफ्ट कार्नर बन सकता है। क्योंकि वह विनय का परिचायक है। भीतरी ऊर्जा का बांयी और झुकाव होने से उधर प्रवाहित हो जाती है। जब दो तीन व्यक्ति खड़े बात कर रहे हों तो बोलने वाले के पैर का अंगूठा जिधर है वह उस व्यक्ति से बात करने की चाह इच्छा वाला बन जाता है।

सदियों से भारतीय संस्कृति में हाथ उठाकर हथेली सामने करते हुए आशीर्वाद देने की प्रक्रिया अपनाई जाती है। यह भीतरी निर्मलता, सादगी, सरलता का प्रतीक है। यही स्थिति व्यवहारिक जीवन में भी देखी जा सकती है। जब कोई व्यक्ति किसी का सम्मान करता है तो वह दोनों हाथ खोलकर हथेलिया उसके सामने घुमाता हुआ पधारोसा बोलता है। यह सम्मान का परिचायक है। यदि भीतर में सामने वाले के प्रति सम्मान नहीं हो तो वह ऐसा एक्शन न करके अंगुली से इशारा करता हुआ बोलेगा। इधर आ उधर आ। जिससे लग जायेगा कि सामने वाले के प्रति सम्मान की भावना नहीं है। कोई उग्रवादी सरेण्डर (Surrender) समर्पित होता है तो वह भी दोनों हाथ ऊपर रखकर हथेलियां सामने कर देता है कि अब मैं खाली हूँ। कोई खोट नहीं है। भीतर में यदि कोई व्यक्ति झूठ बोल रहा है या सच। तब सामने वाले के हाथ का एक्शन देखिये। यदि वह दोनों हाथ थोड़ा ऊपर उठाकर ऐसा करता है कि सच मानिये। मैं जो भी कर रहा हूँ वह सच कर रहा हूँ। यदि ऐसा करता है तो समझ लीजिये कि वह अपने भीतर में भी सच बोल रहा है। यदि सामने वाला ऐसा न करके दाढ़ी पर हाथ फिराएगा या कान या फिर सिर पर खुजली करने लगता है या नाक के नीचे एक अंगुली घुमाता है आदि करे तो साफ है कि वह झूठ बोल रहा है। क्योंकि यह सब सोचने के आकार है। सच बोलने वाले को सोचना नहीं पड़ता। वह साफ है। विकल्प झूठ में ही उठते हैं। जिसमें स्वतः ही ऐसे ईशारे होने लगते हैं। बच्चा जब झूठ बोलने लगता है तब स्पष्ट मालूम पड़ जाएगा। उसके दोनों हाथ मुँह पर होंगे और आँखे आश्चर्य के ढंग से फैल जाएगी। जिससे उसका झूठ साफ लगने लगेगा। नेता लोग लोगों की भीड़ के सामने दो अंगुली उठाकर V विक्ट्री संकेत देते हैं कि जीत हमारी है।

सदियों से यह परम्परा है कि आदेश देने वाले ऋषि महर्षि श्रोताओं से कुछ ऊपर बैठते हैं। ऊपर से विचार तरंगें नीचे की तरफ प्रवाहित होती है

जो श्रोता को प्रभावित करती है। इसी प्रकार बॉडी लेग्वेंज में भी यह बतलाया जाता है कि सेल्समेन की कुर्सी ऊपर और खरीददार की नीचे हो तो सेल्समेन जो चीज जितने में बेचना चाहेगा ज्यादा संभावना होगी कि उसमें कोई मोल भाव नहीं होगा और वह उतने में ले ही लेगा। यदि बेचने वाले का आसन कुर्सी नीचे है और खरीदने की ऊपर है तो ज्यादातर संभावना यह है कि मोलभाव होगा और उसमें खरीदने वाले की इच्छा ज्यादा महत्त्वपूर्ण बनती चली जाएगी। क्योंकि ऊर्जा तरंगों का दबाव, ऊपर से नीचे की ओर आता है। इसलिए ज्यादातर दुकानों पर सेठ की गद्दी थोड़ी ऊपर होती है। लेने वाले को भले डनल्प के गद्दे पर बिठा देंगे पर उसका स्थान थोड़ा नीचे ही रहेगा ताकि देने वाले की ऊर्जा उस पर असर करे।

कोई आदमी नीची गर्दन करके बोलता है तो समझ लीजिये यह अपराधी है या लज्जावान है। अगर तुम्हारे विचार सही है तो तुम्हारे एक्शन भी सही हो जाएंगे और गलत विचार हो तो तुम्हारे एक्शन भी उल्टे. सुल्टे हो जाएंगे।

हाथ मिलाते वक्त भी कोई कड्डा पकड़ता है और कोई ढीला। जो ज्याद्दा मिलने वाला है, उसका हाथ कड़ा पकड़ लेते हैं जो कम मिलने वाला है, उसका ढ़ीला पकड़ लेते हैं। याने कि जिस व्यक्ति में आपका इन्ट्रेस्ट ज्यादा है उसका हाथ कसकर पकड़ लेते हैं। जिससे इन्ट्रेस्ट कम है उसे ढीला पकड़ेंगे।

सैनिक हमेशा हाथ कड्डा पकड़ता है। उसका कारण अलग है। क्योंकि वह बतलाता है कि मैं इज्जत से, शरीर से, चरित्र से मजबूत हूँ। कई बार सामने वाले के प्रति ज्यादा उत्सुक व्यक्ति अपने दोनों हाथ आगे करता है और सामने वाले की उत्सुकता उसमें नहीं है तो वह औपचारिकता निभाने के लिए अपना एक हाथ ढीले तरीके से आगे बढ़ा देता है। ज़िसे वह व्यक्ति दोनों हाथों से दबाता है तो स्पष्ट है कि हाथों से दबाने वाला सामने वाले को कुछ कहना चाहता है, उससे कुछ काम करवाना चाहता है। चापलूसी करके। कई बार आदमी किसी को अंगूठा दिखाकर हिलाता है तो उसे टरकाने का संकेत देता है और यदि तना हुआ अंगूठा खड़ा रखता है तो वह उसके आत्मविश्वास का परिचायक है। यहाँ भी देखले। कोई प्रवचन दे रहा है और आप कड़क से बैठे हैं तो लगेगा आप सुनने को इच्छुक हैं और यदि ढीले ढाले बैठे हैं तो लगेगा कि आप सुनना नहीं चाहते हैं। यदि कोई किसी से निकटता से बात कर रहा है तो लगेगा कि वह आपका कोई अनन्यमित्र है। सम्बन्धी है। इस

प्रकार शरीर, हाथ, पैर, आँख, कान के ईशारे ऐसे होते हैं, जिससे व्यक्ति के मनोगत भाव समझे जा सकते हैं। कई बार केवल आँखे ही विभिन्न रूपों में व्यक्ति की मानसिकता का संकेत दे देती है कि वह आपके प्रति क्या रूख रखता है। घृणा, क्रोध, प्रेम आदि अनेक बातें केवल आंखें ही बतला देती हैं। वैद्य नाड़ी के बदलते रूप को देखकर बीमारी का अनुमान लगा लेता है। यह भी एक स्वतन्त्र विषय है।

इसलिए साधु को विनय के लक्षण में "इंगियागा संपन्ने" इंगित और आकार में संपन्न होना बतलाया है। जब वह गुरु के इंगितों को समझने में दक्ष हो जाएगा तो वह अन्य व्यक्तियों के इंगितों को समझने में भी दक्ष हो जाएगा। ऐसा व्यक्ति संयम के साथ हित में प्रवृत्ति और अहित से निवृत्ति ले सकता है। शास्त्रों में हत्थ संजए, पाय संजए आदि विशेषण भी आए हैं। वे हाथ संयम, पैर संयम, इन्द्रिय संयम, वाक्–वचन संयम आदि का संकेत करते हैं। इसलिए कि तुम्हारे अंग–प्रत्यंग भी आस्त्रव–कर्मबन्धन की ओर नहीं जाने चाहिए।

जैन शास्त्रों में बाहरी संकेतो का गहरा विश्लेषण मिलता है। यदि हम आज के स्वर विज्ञान, रेखा विज्ञान, शकुन विज्ञान, नाड़ी विज्ञान तथा शास्त्रीय धरातल की स्थिति को सामने रखते हुए क्षीरनीर विवेकिनी बुद्धि के अनुसार कार्य करते हैं तो लक्ष्यानुरूप सफलता प्राप्त कर सकते हैं। काया, वचन और मन के संकेतों को संयम के अनुरूप बनाने का प्रयास किया जाय तो अन्तरंग शक्ति का जागरण हो सकता है। बाहर से भी संयमी आचरण को मजबूती के साथ अपनाया जाता है तो धीरे–धीरे वह अन्तरंग को छूता चला जाता है। जब इंजन चाबी से नहीं चलता है तो बाहर से हेण्डल (Handle) घुमाकर चलाया जाता है। जब अन्दर का इंजन चालू हो जाय तो हेण्डल निकाल लिया जाता है। उसी प्रकार अन्तरंग स्थिति को उज्ज्वल बनाने के लिए बाहर से भी पूरी तरह से संयम बरतने वाला व्यक्ति पवित्रता को पा जाता है।



नवकार का जाप : मिटाए ताप

जैन धर्म में नवकार महामंत्र को सबसे बड़ा स्वीकार किया है। वैसे हर धर्मों ने कोई न कोई मंत्र स्वीकार किया है। कोई भैंरू का, कोई भवानी का, कोई काली माँ का मंत्र जपते हैं। कहा है– "जपात सिर्द्धि, जपात सिर्द्धि, जपात सिर्द्धि न संशयः" जप से सिद्धि होती है। इस प्रकार बार–बार जपने से जब सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें कोई संशय नहीं है पर वो सिद्धि हो कैसे ? इसके लिए हमें जांप के मूल स्वरूप को समझना होगा। एक ही जाप ताप बढ़ाने वाला भी हो सकता है, ताप घटाने वाला भी हो सकता है। जैसे एक ही पावर हाऊस में से करंट एक ही तरफ आ रहा है, किन्तु बटन दबाने से एक गर्मी प्रदान करता है और दूसरा बटन दबाने से ठंडक प्राप्त होती है। वैसे ही मंत्र कभी कभी ताप हरने वाले न बनकर ताप उष्णता देने वाले बन जाते हैं। लाभ के स्थान पर हानिकारक सिद्ध हो जाते हैं। एक ही शब्द को बार–बार बोलना जाप है, बार–बार जपना जाप है। एक ही बात बार–बार बोलते–बोलते वह अन्तर में छप जाती है। फिर वह नहीं भूलता। बच्चे को स्कूल मे शुरूआत में अ, आ, तथा ABCD सिखाते हैं। बार–बार बोलकर याद कराते हैं। उसे वे जिन्दगी भर नहीं भूलते हैं। वैसे ही महामंत्र को अन्तर में उतार लें तो इस जन्म में क्या किसी भी जन्म में नहीं भूल सकता। इसलिए जाप बार–बार किया जाता है। पुनः पुनः करने से जाप प्रभावी बनता है। जैसे गुस्से में व्यक्ति एक ही बात को बार–बार बोलता है जिससे सामने वाला उत्तेजित हो उठता हैं। अपनी बात को प्रभावी बनाने के लिए, दूसरों के दिमाग में उतारने के लिए, एक ही बात को पुनः पुनः दोहराता है। वैसे ही बार–बार जपने से हमारा कॉनसियंश प्रभावी होगा। जिस शब्द को बार–बार कहा जाता है उसका मेटर प्रेशर से तैयार होता है। जैसा सोचते हैं वैसी ही उसकी रील तैयार होती है। दस साल पहले आपने क्या सोचा यह आपको याद हो ना हो, पर मस्तिष्क में उसकी रील रहती है। वैज्ञानिकों ने भी इस बात को माना है तथा जैन धर्म में यहाँ तक कहा है कि पूर्व में जो किया है वह भी रील तैयार है, कार्मणवर्गणा के रूप में।

पुनः पुनः जाप से मंत्र अपनी आत्मा को प्रभावित करता है तथा अपनी आत्मा के साथ में अन्य को भी प्रभावी करता है। हर व्यक्ति के पीछे एक आभामण्डल घूमता है। जिसकी रूस के वैज्ञानिक किरलियान ने फोटो (Photo) भी ली है। किरलियान ने ही हाइफ्रिक्वेंसी (High Frquency) का सिद्धान्त दिया। उस फोटो से व्यक्ति की थिंकींग (Thinking) भी मालूम पड़ जाती है। जाप का पुनः पुनः उच्चारण होने से आप का आभामण्डल ताकतवर हो जाता है। घनीभूत हो जाता है। उसे फिर दुनियाँ की कोई ताकत भेदन नहीं कर सकती। प्रभावित नहीं कर सकती। जाप अवश्य फलदाई होता है। चाहे उसे वैज्ञानिक दृष्टि से देखें या सैद्धान्तिक दृष्टि से देखें वह प्रभावी होता है क्योंकि संसार में जितने भी महापुरुष हैं उनका इस मंत्र में समावेश हो जाता है।

णमो अरिहन्ताणं- जिसने अरि–शत्रुओं राग द्वेष को जीता है। उन सारे परमात्माओं को नमस्कार। जिसने भी केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त किया है, उन्हें अरिहन्त पद में लिया गया है। जैन थ्योरी (Theory) में कम से कम अरिहन्त 2 करोड़ व उत्कृष्ट 9 करोड़ होते हैं। एक नमस्कार मंत्र से उन सभी को नमस्कार होता है। आप एक–एक को तो वन्दन कर नहीं सकते हैं। (और तो और क्या यहाँ विराजित सभी साधु साध्वियों को विधि सहित वन्दन करने को कहा जाय तो आपके लिए भारी पड़ जायेगा।) अतः भगवान ने पहले से ही नमो अरिहन्ताणं पद दे दिया।

णमो सिद्धाणं- जिन्होंने सभी कर्मों को नष्ट कर दिया है तथा सभी कार्यों को जिन्होंने सिद्ध कर लिया है। ऐसी सभी सिद्ध आत्माओं को नमस्कार हो। मारवाड़ी में बोलने का तरीका भी इसी प्रकार है। किसी को यह कहना हो कि तेरा काम पूरा हो गया क्या तो इस स्थान पर ऐसा बोलेंगे कि तेरा काम सिद्ध हो गया क्या। पूरा हो गया क्या ऐसा नहीं बोलते। हमारा अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है अतः वही सिद्ध करना है।

णमो आयरियाणं- जो पांच आचार का पालन स्वयं करते हैं व अ[illegible] करवाते हैं। स्वयं की शुद्धि स्वयं रखते हैं व दूसरों से रखवाते। ऐसे स[illegible] आचार्यों को नमस्कार, इस तृतीय पद से होता है। ठाणांग सूत्र नें चार प्रकार के आचार्य बतलाये हैं–

"चउव्वि हे आयरिया पन्नता तंजहा रयणकरंडग समाणे, गाहावइ करंडग समाणे, वेश्या करंडगसमाणे, सोवाग करंडग समाणे।"

1. राजा की छबड़ी के समान 2. गाथापति की छबड़ी के समान 3. वेश्या की छबड़ी के समान 4. चाँडाल की छबड़ी के समान। यहाँ पर आचार्यों को हरिजन की छबड़ी के समान भी बतलाया गया है। आचार्य बन जाना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि अगर योग्यता हो, जीवन अवगुणों से भरा हो तो हरिजन की छबड़ी की उपमा दी गई है। हरिजन की छबड़ी में क्या मिलेगा सिर्फ दुर्गंध ही दुर्गंध। ऐसे आचार्य के पास में भी निन्दा, विकथा, दुश्चरित्र की दुर्गन्ध ही मिलेगी।

आचार्य को वेश्या की छबड़ी के समान भी बतलाया है। वेश्या की छबड़ी में आभूषण मिल सकते हैं किन्तु नकली आभूषण ही अधिक मिलेंगे। ऊपर से चमचमाते दिख सकते हैं किन्तु अन्दर में नकलीयत ही है। इसी प्रकार कोई आचार्य दुनियावी दृष्टि में ऊपर से संयमित दिखते हैं पर भीतर से संयम से शून्य होते हैं। वे केवल लोगों को दिखाने के लिए संयम पालते हैं।

तीसरे प्रकार के आचार्य गाथापति की छबड़ी के समान। गाथापति की छबड़ी में सोने के आभूषण होते हैं।

इसी प्रकार कुछ आचार्य ऐसे होते है जो पांच महाव्रत का पालन करते हैं किन्तु चौथे प्रकार के आचार्य जो कि राजा की छबड़ी के समान हैं। वे सर्वश्रेष्ठ होते हैं क्योंकि राजा के आभूषण हीरे पन्ने से युक्त होते हैं। ठीक वैसे ही पांच आचार का पालन स्वयं करने वाले व अन्य से कराने वाले सर्वश्रेष्ठ होते हैं। ऐसे सभी आचार्यों को तीसरे पद से नमस्कार किया गया है।

णमो उवज्झायाणं- पद से उपाध्याय लिए जाते हैं। जो स्वयं शास्त्र पढ़ते हैं और अन्यों को भी पढ़ाते हैं।

"णमो लोए सव्व साहूणं" लोक में रहे हुए सभी साधुओं को, जो पवित्र संयम पालते हैं उन्हें नमस्कार किया गया है। जैन शास्त्रों के अनुसार साधुओं की संख्या जघन्य दो हजार करोड़ उत्कृष्ट 9 हजार करोड़ बतलाई गई है। आज विश्व की गणना जितनी नहीं होगी उतनी साधुओं की संख्या बतलाई है। अपन उस सारे विश्व का जान ही नहीं पाये हैं। विश्व बहुत बड़ा है। वैज्ञानिकों ने भी इसे स्वीकार किया है।

इस प्रकार नवकार मंत्र में नाम से रहित पूजा की गई है और स्पष्ट किया गया है कि व्यक्ति की पूजा नहीं व्यक्तित्व की पूजा होना चाहिये।

साधुओं की पूजा नहीं साधुत्व की पूजा होनी चाहिए। आज के हालात् ही कुछ खराब है। मेरे गुरु अच्छे हैं। ऊँचे हैं, दूसरों के गुरु अच्छे नहीं है। किन्तु वे गुरु भी तुम्हारे होते तो अच्छे हो जाते। ऐसी धारणाऐं ही धर्म की जड़ों को खराब कर रही है। ये कन्ट्रोवेसी की भावना पतन के मार्ग पर ले जा रही है। व्यक्ति की पूजा को छोड़कर गुण पूजा करना सीखें। सभी से गुण लेवें। अतः हम नवकार मंत्र को समझें। व्यक्ति पूजा करने वाला कभी सम्यक्दृष्टि से मिथ्यादृष्टि भी बन सकता है। पर गुण पूजा वाला कभी नहीं। व्यक्ति, सम्प्रदाय या मत पंथ की पूजा से हटकर यथार्थ की परिधि में गुण पूजा की ओर बढ़ें।

जाप तभी सार्थक हो सकता है जब एक में स्थिर हो जाएँ। डोलने वाली धारणा को चेन्ज करें। एकत्व की भावना बढ़ायें। एक को जपे। इस एक में ही सारे मंत्र चले आते हैं। आप विभिन्न देवी–देवता के मंत्र रटलें। उससे विशेष कुछ होने वाला नहीं है। आप एक को पकड़ो।

राजा विदेश गया हुआ था। जब उसके आने का समय हुआ तो उसने पत्र लिखा अपनी चारों रानियों को कि तुम्हें क्या चाहिये। एक रानी ने कुंडल के लिए लिखा। दूसरी ने हार के लिए लिखा। तीसरी ने चूड़ी के लिए लिखा। चौथी ने लिखा आप स्वयं आ जाएं। मुझे तो ओर कुछ नहीं चाहिए। राजा उनके लिखे अनुसार वस्तुएं ले आया और जिसने जो मंगवाई वह तीनों को दे दी। फिर बचा हुआ जितना सामान था वह सब लेकर चौथी रानी के कमरे में लेकर चला गया। क्योंकि छोटी रानी ने सिर्फ महाराज की मांग की थी। अतः बचा हुआ सारा सामान भी महाराज के साथ ही चला गया। ऐसा होने पर बाकी तीन रानियां नाराज हो गई। तब राजा ने उस चौथी रानी को पत्र बताते हुए कहा– उसने कोई भी वस्तु नहीं मांगते हुए सिर्फ मुझे मांगा है। छोटी रानी ने वजूद को पकड़ा। वैसे ही महामंत्र में सारे मंत्रों का सार है। उसे स्थिरता से किया जाय।

कहते हैं महाराज ! जाप तो करते हैं पर मन नहीं लगता। किन्तु जब तक आपका मंत्र के प्रति हृदय से पूरा अटेचमेंट नहीं होगा तब तक जाप में मन नहीं लग सकता। आप टी.वी. देखते हैं। लगातार 3–3 घंटे उसमें मन लग जाता है। किसी की निन्दा आदि करने में मन लग जाता है क्योंकि उसके साथ आपका दिलीय अटेचमेंट है। जब तक हमारे दिल में दूसरी–दूसरी बातें रहेगी तब तक जाप उतना फलदायी नहीं बनेगा।

एक पहाड़ पर संन्यासी बैठे थे। संन्यासी के पास एक युवक पहुंचा और पूछा– मुझे कोई मंत्र बतलाइये ताकि मुझे बहुत धन मिल जाय। संन्यासी ने सोचा यदि मैं सीधा कह दूं कि धन से सुख मिलने वाला नहीं तो यह मानने वाला नहीं है। अतः एक मंत्र बताया। तुम इसे 108 बार जपना, तुम्हें इच्छित धन मिलेगा। खुश हो गया, और जाने लगा। इतने में संन्यासी ने पीछे से आवाज लगाई और कहा–देखो जाप करते समय ध्यान रखना की तुम्हें उस समय मन में बन्दर नहीं दिखना चाहिए। यानी बन्दर का चिन्तन नहीं आना चाहिए। युवक ने कहा ठीक है। घर गया जाप करने बैठा पर बन्दर दिखे। अलग कमरे में बैठा। 8–10 बार भी मंत्र नहीं बोल पाया कि बन्दर दिख जाता। फिर जंगल में गया जाप करने लगा तो फिर वही बंदर दिखने लगा। फिर वह गुफा में गया और जाप करने लगा तो फिर मन में बन्दर दिखाई दिया। वह 108 बार तो जप कर ही नहीं पाता। तब वह पुनः संन्यासी के पास गया और बोला– मुझे तो जाप में बंदर दिखता ही दिखता है। अगर आप बंदर हेतु नहीं कहते तो शायद नहीं दिखता पर आपने यह कह दिया अतः अब तो वह दिखता ही है। तब संन्यासी ने उसे समझाया देखो– जब तक तुम दौलत के पीछे, दुनियां के पीछे भागते रहोगे, तब तक वे तुम्हारे साथ नहीं होंगे। आएंगे। अगर आप उन्हें छोड़ दोगे तो ये दौलत स्वतः ही साथ हो जाएगी। वह व्यक्ति तो समझ गया पर हम समझें या नहीं। कामनाओं से दूर रहोगे तभी जाप प्रभावी होगा। जाप की विधि सीखिए।

नमो अरिहंताणं का रंग सफेद, सिद्धों का रंग लाल, आचार्यों का रंग पीला, उपाध्याय का रंग हरा, तथा साधु का रंग काला।

शरीर में पांच रंगों की पूर्ति करने हेतु भी ये रंग जाप में बतलाए हैं। जब अरिहंताणं पद बोले तब सफेद रंग देखे, सिद्धाणं पद बोले तो लाल, आयरियाणं बोले तो पीला और उवज्झायाणं बोलते समय हरा तथा णमो लोए सव्वसाहूणं पद बोले तो काला रंग दिमाग में लाया जाय। इस विधि से अगर अमुक रंग की कमी है तो पूर्ति होने में सहयोग मिलता है।

नवकार मंत्र ध्यान का दूसरा प्रकार शरीर के अन्तरंग केन्द्रों से सम्बन्धित है। शरीर में अनेक केन्द्र हैं। जैसे– ज्ञानकेन्द्र शान्ति केन्द्र, ज्योतिकेन्द्र, दर्शन केन्द्र, विशुद्धि केन्द्र, आनन्द केन्द्र, शक्ति केन्द्र आदि। ज्ञानकेन्द्र, इन्सान के मस्तिष्क के उस भाग पर है जहां से चोटी ली जाती है। गुरु चोटी वहीं से खींचते हैं क्योंकि वहां ज्ञानकेन्द्र है। आदमी की सोच वहीं से प्रारंभ होती है।

कांटा पैर में चुभा है सूचना चोटी स्थल ज्ञानकेन्द्र पर आती है। सारे शरीर का संचार वहीं से होता है। गुरु भी वहीं से शिखा चोटी खीचते हैं। याने अज्ञान उखाड़ते हैं और ज्ञान का संचार करते हैं। जब व्यक्ति को कोई बात याद नहीं आती है तो वह सिर पर ज्ञान केन्द्र को ही हाथ से खुजलाता हुआ उस बात को याद करने का प्रयास करता हुआ देखा जा सकता है। इस ज्ञान केन्द्र पर "णमो अरिहन्तांण" का ध्यान किया जाय। दूसरा केन्द्र शान्ति केन्द्र है। जो शिखा स्थल से चार अंगुल आगे कपाल में है। कपाल वैसे ही शान्ति का स्थान है। यहां अगर जरा भी चोट लग जाय तो आदमी की मृत्यु तक हो सकती है। दूसरी बात करने के बाद इन्सान के कपाल क्रिया की परम्परा है। यों कहते है कि कपाल क्रिया बिना उस आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। खैर कुछ भी हो शान्ति के विस्तार की दृष्टि से यह केन्द्र महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पर णमो सिद्धाणं का ध्यान लगाया जाय। चौथा केन्द्र ज्योति केन्द्र है। जिसका स्थान तिलक भाग पर है। जिस जगह तिलक लगाते हैं वहीं भीतर में ज्योति जलती है। इसलिए तिलक का स्थान है। उसे प्रकाशित करने के लिए णमो आयरियाणं का ध्यान वहाँ पर किया जाय। तीसरा आनन्द केन्द्र हृदय में हैं। कभी भी आनन्द की अनुभूति मस्तिष्क में नहीं होती। किसी को प्रेम किया जाता है तो वह भी हृदय से। मस्तिष्क से प्रेम नहीं होता। किसी को यह कहो कि मैं तुम्हें हृदय से चाहता हूँ तो चलेगा और उसे यह कहो कि मैं तुम्हें मस्तिष्क से चाहता हूँ तो शायद लडाइ हो जाय। अतः हृदय में आनन्द केन्द्र है। आनन्द का संचार करने के लिए आनन्द केन्द्र हृदय पर णमो उवज्झायाणं का ध्यान किया जाय। हृदय एक तरह का ही होता है। डुप्लीकेसी (Duplicacy) हृदय में नहीं होती।

णमो लोए सव्वसाहूणं– रीड की हड्डी के निचले स्थल पर ध्यान केन्द्रित किया जाय। इसे शान्तिकेन्द्र कहा जाता है। शक्ति का संचार यहां से माना जाता है।

पाचों पदों के लिए 5 केन्द्र बतलाए हैं व रंग भी बतलाए हैं। इन सभी को पूरा ध्यान में लेकर उसी विधि से ध्यान किया जाय तो वह जाप प्रभावी बन सकता है।

यह तो सब थ्योरी हुई (Theory) किन्तु जाप से लाभ क्या होता है ? ज्ञानकेन्द्र से किया गया नमो अरिहन्ताणं का उच्चारण रोग को ठीक करने में सहयोग करता है। ज्ञानकेन्द्र से किरणें फूटती है और पूरे अन्तर में प्रकाश फैला देती है।

नमो सिद्धाणं के उच्चारण से आलस दूर होता है। नमो आयरियाणं पद के उच्चारण से ज्ञान ततुं जो निष्क्रिय हो गये हैं, सोचने समझने की क्षमता कम हो गयी है। उसे जागृति मिलती है।

नमो उवज्झायाणं पद के जाप से जिनको भीतर से क्रोध खा रहा है। उसे शान्त करता है।

णमो लोए सव्वसाहूणं– के जाप से रोग प्रतिरोधक शक्ति मजबूत होती है। यह सब आपेक्षित दृष्टि कोण से कथन हुआ। वैसे नवकार तो सारे पापों का नाश करने वाला है।

अगर हम ध्यान करना चाहते हैं तो पहले विधि सीखलें। सिर्फ रटे जा रहे हैं। अतः उसका प्रभावीकरण छूट रहा है। यदि एक पद का भी उच्चारण करें और सही ढ़ंग से अन्तर श्रद्धा के साथ करें तो प्रभावी होगा। जाप के साथ पांच बातों को भी ध्यान दें।

1. **अटूट विश्वास**– जाप पर गहरी श्रद्धा, विश्वास होना जरूरी है। कहते हैं एक बार सिकन्दर व सिकन्दर के गुरु अरस्तु यात्रा कर रहे थे। रास्ते में नाला आया। उसे पार करना था। अरस्तु ने कहा– मैं इस नाले को पहले पार करता हूँ। नाला भयंकर है व चौड़ा भी है। अगर मैं मर भी गया तो कोई बात नहीं। सिकन्दर तुम प्रजा के आधार भूत हो तुम्हें प्रजा के कार्य को संभालना है। सिकन्दर कहता है – नहीं ! गुरुजी नाला पहले मैं पार करूंगा, आप नहीं करोगे। यह कहते हुए सिकन्दर ने नाला पार कर भी दिया। उसके बाद अरस्तु ने नाला पार किया। अरस्तु के द्वारा पहले नाला पार करने का कारण पूछने पर सिकन्दर ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा कि– अगर मैं मर भी जाऊँ तो खास बात नहीं है। गुरु जीवित है तो वे 100 सिकन्दर बना सकता हैं। किन्तु यदि अरस्तु चले गये तो 100 सिकन्दर मिलकर भी एक अरस्तु को पैदा नहीं कर सकेंगे। सिकन्दर ने गुरु पर कितना गहरा विश्वास किया वैसे ही हमें नवकार मंत्र पर गहरा विश्वास होना चाहिए कि तुम तारो चाहे मारो– मेरे लिये तो तुम ही हो।

2. **क्षमापना**– अन्दर में वैमनस्य का कीचड़ है तो जाप फलदायक नहीं होगा। मन में कचरा भरा हुआ है और अरिहन्त– अरिहन्त करते जाओ तो उसमें कोई विशेष फायदा नहीं। अतः जिस किसी से झगड़ा हो वह शमित कर लेना जरूरी है।

3. **मन पर कड़ा पहरा हो**– मन पर कुविचारों का प्रवेश न होने पाए।

4. **पूरा समर्पण**– नवकार मंत्र के प्रति पूरा समर्पण होना चाहिए। वह समर्पण कैसा हो।

कहते हैं लुकमान नाम का गुलाम, किसी सेठ के यहाँ नौकरी करता था। एक बार मालिक ने पूछा– तुम्हारा नाम क्या है ? गुलाम ने कहा– जो मालिक कह दे वही नाम है। मालिक ने पूछा– तुम क्या खाओगे तो गुलाम ने कहा– जो मालिक खिलायेगा। तुम रहोगे कहाँ– तब गुलाम ने कहा– जहाँ मालिक रखेगा। मालिक ने पूछा– पहनोगे क्या ? मालिक जो दे देगा। गुलाम के बार–बार इस प्रकार कहने से मालिक को गुस्सा आ गया और झल्लाकर बोला– सब बात मालिक कहेगा वैसा ही करोगे तो तेरी भी तो कोई इच्छा होगी। बता तू, क्या चाहता है। गुलाम ने कहा– मालिक यदि गुलाम की भी कोई चाह हो तो फिर गुलाम ही किस बात का ? मैं तो आप कहोगे वैसा ही करूंगा, आप चलाओगे वैसा चलूंगा।

अगर इतनी गुलामी परमात्मा की कि जाए तो तुम भी परमात्मा बन सकते हो। मालिक ने गुलाम को गुलामी से मुक्त कर दिया और कहा– तुम गुलाम बनने लायक नहीं, मालिक बनने लायक हो। समर्पण से गुलाम, गुलामी से मुक्त हो गया। इसी प्रकार पूरे समर्पण से ही जाप लाभदाई बन सकता है। जाप से कैसा लाभ होता है ? वह मैं घटित घटना बताता हूँ। अन्य अनेक कहानियाँ तो आप सुनते ही हैं पर मैं वर्तमान की घटना बताता हूँ।

दिनांक 15.5.1945 की घटना है। लगभग 52 वर्ष पूर्व जामनगर के एक गुलाब चन्द भाई थे। स्वास्थ्य खराब हुआ और वहाँ के डॉक्टर K.P. मोदी व अपूर्व मोदी को दिखाया । उन्होंने कैंसर बता दिया। गुलाब चन्द भाई को उनके पारिवारिकजन उपचार हेतु बॉम्बे के टाटा मेमोरियल हॉस्पिटल ले गये। बेड संख्या 9355 थी। वहाँ के डाक्टर ने पूरा चेकअप करके अन्तिम सिरे का कंठ का केन्सर बता दिया। रिपोर्ट लिख दी गई। अब उसका कोई उपचार नहीं है। आप सिर्फ परमात्मा को याद कीजिए। ये कभी भी जा सकते हैं। पारिवारिकजन पुनः जामनगर ले आये। गुलाबचंद भाई के दिल में आया नवकार सारे पापों का नाश करने वाला है अतः मैं जाप करूँ। मरना तो है ही। कमरा बंद करवा दिया, सोचा– मरूँगा तो जाप के साथ ही मरूँगा। जाप चालू किया। निरन्तर जाप करते रहे। सांस फूलने लगा। गला सूखने लगा। फिर भी जाप अविराम चल रहा था। जी मिचलाने लगा। आँखों में अंधेरा छाने

लगा। फिर भी वही गति। क्योंकि अब जाप जीने के लिए नहीं मरने के लिए जपा जा रहा है। परन्तु चमत्कार घटित हुआ। गुलाबचंद भाई को उल्टी हुई। भयंकर दुर्गन्ध। साफ करवाया। सांस तेज फूलने लगा। यह लगने लगा कि मौत नजदीक आ गई फिर भी जाप चालू है। महिनों बाद पानी स्वयं ने मांगा। बड़े आराम से एक कप पानी और एक कप चाय पी ली। फिर भी जाप चालू है, निरन्तर। नींद भी आई। जगते ही जाप चालू है। नींद में भी होठ फड़फड़ा रहे हैं। दिन बीतने लगे। मौत के बजाय स्वस्थता आने लगी। धीरे-धीरे खाना-पीना भी चालू हुआ। महीने भर बाद स्थानीय डाक्टर को दिखाया। स्वास्थ्य में सुधार नजर आया। छः माह बाद तो पूरी तरह स्वस्थता आ गई। फिर बॉम्बे गए। उसी डाक्टर को दिखाया। केन्सर की बीमारी ही नहीं है। यह वही मरीज है। डाक्टर को विश्वास नहीं हो रहा था। जब डॉक्टर को पुरानी उसके हाथ से लिखी रिपोर्ट बतलाई तो विश्वास करना पड़ा। डॉक्टर ने पूछा– क्या दवाई दी।

दवा कहाँ, यह तो प्रभु भक्ति से ठीक हुए हैं। डॉक्टर ने भी प्रभु भक्ति का चमत्कार माना। गुलाब चंद भाई की यह घटना डॉक्टरी रिपोर्ट ब्लेक कापी के साथ राष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। उसके बाद तो गुलाब चंद भाई करीब बीस वर्ष तक जीवित रहे। फिर उन्होंने एक घंटा नवकार का तन्मयता से जाप करना अपनी जिन्दगी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काम बना लिया।

इससे बीस वर्षों में उनके कहीं कोई समस्या नहीं आई। वे रहते भी ईमानदारी के साथ थे। दवा का भी कम से कम सेवन करते। एक बार ही घटना बतलाते हैं कि किसी खत्री को फोटो पर फ्रेम लगाने के लिए दी। उसने 7½ रुपये मांगे थे। पर गुलाबचंद भाई ने 7½ ही रुपये दिये। वह बिचारा कहता रहा कि साहब 7½ मेरी सही मजदूरी है, आप दे दीजिये पर वे तो 7 रुपये देकर फ्रेम ले आए। घर आने पर जब दूसरे दिन सवेरे 4 बजे नवकार जाप करने बैठे तो मन नहीं लगा। सोचा, ऐसा क्या गल्त काम कर लिया। जिससे मन नहीं लग रहा है। सोचने पर ज्ञात हुआ कि खत्री को 50 पैसे कम दिये। जबकि वह 7½ रुपये मांग रहा था। मैंने 7 रुपये दिये। इसलिए मन नहीं लग रहा है। सवेरा होते ही गुलाब चंद भाई, उसके पास गए और आठ आने देकर आए। उसके बाद जाप करने बैठे तो मन लग गया। जाप में तन्मयता के लिए जीवन में नैतिकता आना भी जरुरी है।

वैसे नवकार जाप, चौबीस घंटे में जब चाहें तब किया जा सकता है। लेकिन एक माला का जाप तो अनिवार्य रूप से सवेरे कुछ भी चाय–नाश्ता करने से पहले होना चाहिये। बेड टी न होकर बेड गॉड हो। परमात्मा को हम जरूरी समझेंगे, तभी वह भी हमें जरूरी समझेंगे। अर्थात् हम उनके साथ जुड़ सकेंगे। यदि हम आज नहीं कल दो माला कर लेंगे। अगर यह धारणा बनाई है तो इस कमजोर मानसिकता में परमात्म जागरण जल्दी से नहीं हो सकेगा। विधाता के विधान को अर्थात् कर्मों को भी बदलने की शक्ति परमात्म भक्ति में है। नवकार जाप में है। इसीलिए उसे सर्व पाप का नाश करने वाला कहा है।

इन्सान कितना भी पुरुषार्थ करता है पर यदि पुण्य–कर्मों का संयोग नहीं है तो वह पुरुषार्थ हानिकारक भी हो सकता है। एक व्यक्ति बाएं फुटपाथ पर चल रहा है। यदि उसके पाप का उदय है तो इतना सुरक्षित चलने के बाद भी पीछे से कोई ट्रक आया। उसका सन्तुलन बिगड़ा और वह उसको मारते हुए ही आगे बढ़ा। इधर देखिये शेयर के भाव बढ़ रहे थे। शेयर खरीद लिया। खरीदते ही घटने शुरू हो गए। क्या काम आई होशयारी ! दुनियाँ के ऐसे बहुत सारे काम हैं, जो इन्सान के नसीब पर, कर्म पर आधारित हैं। उस नसीब को बदलने के लिए परमात्मा का स्मरण अनिवार्य है। उसमें कोई भी छूट न हो। लोग बीमारी और बाहर गांव की छूट मांगते है। पर वह उचित नहीं। बाहर गांव और बीमारी में तो जाप और भी ज्यादा जरूरी है। सामायिक या उपवास आदि क्रिया में छूट रखी जा सकती है। पर नवकार की एक माला में कोई छूट नहीं। कोई विकल्प नहीं। दुर्योधन ने विकल्प रखा, लंगोट पहन ली और वहीं भीम के गदा की मार पड़ी और वह मारा गया। यदि हमने किसी दिन जाप की छूट रखी तो वही दिन खतरनाक भी बन सकता है। अतः हर दिन अनिवार्य हो। यदि चाय पीने का समय है तो उससे पहले नवकार माला जाप का समय भी होना ही चाहिये। यदि चाय जितना जरूरी भी हमने जाप को नहीं समझा तो फिर उससे क्या फल मिलेगा। बीमार हैं तो सोए सोए भी जाप जप सकते हैं। यात्रा में तो वाहन में बैठे–बैठे भी जप सकते हैं। पर जपे बिना कुछ भी खाना–पीना नहीं। यदि जरूरी काम है और जाप नहीं कर सकते हों तो नाश्ता भी न करें। यदि नाश्ते का समय है तो जाप का भी समय निकालना होगा। भूल के अलावा कोई छूट नहीं। भूलना भी यह प्रमाणित करता है कि आपका अभी तक नवकार के साथ पूरा लगाव नहीं हुआ। यदि होता तो भूलते नहीं। जिस दिन भूल गए और बिना जपे, माला किये चाय

नाश्ता ले लिया तो उसके प्रायश्चित के रूप में दूसरे दिन ही दस बजे तक खाना–पीना बंद करें। पोरसी करें। दो चार बार यदि ऐसा किया तो भूलेंगे नहीं। इतना अनिवार्य रूप से यदि आप नवकार का जाप करेंगे तो आपका विल पावर भी स्ट्रांग हो जाएगा। व्यापार आदि किसी भी कार्य में अन्तरात्मा से जो भी निर्णय उठेगा, वह स्वयं के लिए हितकारक सिद्ध होगा। भविष्य में आने वाले खतरों का आपको एक समय से पहले अहसास हो सकेगा। जैसे किसी ने हवाई जहाज का टिकट ले रखा हो। कल सवेरे छः बजे जाना है तो बारह बजे सोकर भी वह चार बजे किसी के बिना उठाए भी उठ जाता है क्योंकि जाना जो जरूरी है। यदि टिकिट जितनी अनिवार्यता भी इन्सान के मन में नवकार जाप के प्रति आ जाय तो आने वाले खतरों की पहले से ही जानकारी मिल सकती है, वह बच सकता है।

सारी रस्सी कुए में चली गई। पर एक छोर भी हाथ में रह गया तो रस्सी–डोल को कुएं से सुरक्षित निकाला जा सकता है। वैसे ही चौबीसों घंटे संसार का काम किया। उसमें से केवल 10 मिनिट एक नवकार की माला भी अनिवार्य रूप से फेरी है तो वह 10 मिनिट का जाप भी इन्सान की डूबती जिन्दगी के लिए पतवार बन सकता है।

मानसिक रूप से टैलिपेथी (Telepathy) के लिए भी जब आज के वैज्ञानिकों को घंटों–महीनों तक सम्बन्धित व्यक्ति के विषय में सोचना होता है तब कहीं संबंध स्थापित होता है। तब फिर परमात्मा से टेलीपैथी करने के लिए जाप की अनिवार्यता आवश्यक है ही।

यद्यपि सिद्ध बड़े हैं फिर भी अरिहंत पद पहले लेने का पारंपरिक कारण तो यह बतलाया जाता है। सिद्ध का मार्ग बतलाने वाले भी अरिहंत हैं। अतः उन्हें पहले नमस्कार किया है। यह भी ठीक है। पर इससे भी अधिक सटीक बात यह लगती है कि चार पद सशरीरी हैं। उनमें अरिहंत के शरीर के परमाणु सबसे ज्यादा शुद्ध है। जैसा कि आचार्य मानतुंग ने भक्तामर के 12वें श्लोक में कहा है–

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक – ललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं नति रूपमस्ति।।12।।

हे त्रिभुवन के एक मात्र आधार भूत अरिहंत देव। शान्तरस की छवि वाले दिन मनोहर परमाणुओं से आपका शरीर निर्मित हुआ है। वे परमाणु भूमण्डल पर बस उतने ही थे। अधिक नहीं क्योंकि आप जैसा संसार में अन्य किसी का रूप है ही नहीं। अरिहंत देव के सर्वाधिक उत्तम परमाणुओं का णमो अरिहंताणं बोलने से भक्त के साथ सीधा संस्पर्श होता है। जो उसकी आत्मा के उत्थान में सहायक बनते हैं। सिद्ध अशरीरी होने से वह सशरीरी भक्तों के साथ सीधे संस्पर्शित नहीं हो सकते। इसलिए णमो अरिहंताणं पद पहले है। सिद्ध तक पहुँचने के लिए अरिहंत सर्वाधिक सशक्त अवलम्बन है। इसलिए नमस्करणीय पदों में पहले लिया गया है।

इतना स्पष्ट होते हुए भी आधुनिक दुनियाँ के लोग नवकार जाप से हटकर सुबह उठना, चाय पीना, लेट्रिन जाना, अखबार पढ़ना आदि कामों के साथ ही अपनी जिन्दगी पूरी कर देते हैं। भव्यात्माओं को चाहिये कि सब से पहले नवकार का जाप हो। जिससे सुदर्शन सेठ के शूली का सिंहासन बना, श्रीमती के नाग भी फूल माला बन गया। गुलाबचंद भाई का केन्सर भी वरदान बन गया। उस जाप का महत्त्व समझें।

यह नवकार का जाप इस भव का ही नहीं अनन्तभवों के पापों का ताप मिटाने का सामर्थ्य रखता है। इसे सभी मंगलों में सर्वश्रेष्ठ मंगल बतलाया गया है।

यद्यपि इस पर विस्तार किया जाय, उतना ही कम है। आपको संक्षिप्त में ही समझाने का प्रयास किया गया है। यदि नवकार मंत्र को हम दिल की गहराईयों में उतारने का प्रयास करेंगे तो वह इस भव–परभव में सदा–सर्वदा के लिए मंगलकारक सिद्ध होगा।



घर को स्वर्ग कैसे बनाएँ ?

घर–घर को स्वर्ग बनाना है।
घर–घर में दीप जलाना है।।

घर का नाम सभी को प्यारा लगने वाला होता है क्योंकि घर में जितना अटेचमेण्ट–लगाव होता है उतना दूसरे पदार्थों में नहीं। अतः व्यक्ति घर को ज्यादा महत्त्व देने लगता है। फिर चाहे वह कैसा भी क्यों न हो ? हर आदमी की दौड़ अन्त–पन्त घर की ओर ही होती है। घण्टी बजते ही बच्चे स्कूल से घर भागते हैं। समय पर ऑफिसर, दुकानदार आदि भी अपनी मंजिल–घर पर ही जाना चाहते हैं। भले ही पांचसितारा होटल में बैठे हैं कितनी ही सुख–सुविधा उसमें है जितनी घर में नहीं है। फिर भी अन्त–पन्त व्यक्ति घर ही जाना चाहता है। यहाँ से भी व्याख्यान उठते ही घर ही जाना चाहेगा। आपकी बात जाने दीजिये हम अणगारी (साधु) भी व्याख्यान बाद भिक्षा लेने को घरों में जाते हैं। हर आदमी की एक धुरी बन गई है घर। जो सुख घर में है वह बाहर–पर घर में नहीं। पर घर चाहे कितना ही सजा–संवरा सुन्दर हो, पर अपना घर तो घर ही है। अपने अस्तित्व की सुरक्षा, वेल्यू (*Value*) जो घर में है वह बाहर नहीं। कहते हैं आदमी का घर के पैदाइशी पुत्र पर जितना लगाव होता है उतना दत्तक पुत्र पर नहीं होता। एक शादी करने के बाद महिला अगर दूसरी शादी करना चाहे तो क्या अच्छा वर मिलेगा ? वह सैकण्ड हेण्ड हो गया है। नई गाडी कम्पनी से लाए। 3 से 10 दिन बाद बेचना चाहो तो क्या 3 लाख वापस मिल जायेगा। भले मुश्किल से 1 हजार कि.मी. चलाई हो। चाहे न भी चलाई हो। पर लाईसेन्स आपके नाम पर है तो सैकण्ड हेण्ड है। उसकी कीमत घट जायेगी। वैसे ही आदमी दूसरे घर में अर्थात् घर से भ्रष्ट हो तो उसकी क्या कीमत ? अतः आदमी कहते हैं हम अपने घर ही रहते हैं चाहे छोटी सी टूटी–फूटी झौंपड़ी ही क्यों न हो।

नौकरानी भी कहती है –" जल्दी करो देरी हो रही है घर जाना है"।

मालिकन कहती है–" क्या घर–घर मचा रखा है यहाँ वातानुकूलित बंगला है वहां घास–फूस की झौंपड़ी है।

वह कहती है– चाहे कैसी भी हो। रूखी सूखी रोटी देने वाली ही क्यों न हो पर जो मजा घर में है वो आपके मिष्ठान में नहीं। आपके वातानुकूलित बंगले में नहीं।

आखिर क्या कारण है इसका ? घर पर कर्त्तव्य, प्रेम, अधिकार ये 3 चीजें मुख्य रूप से मिलती है। ये तीनों जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है। पति का पत्नी के प्रति, भाई का भाई के प्रति बाप का बेटे के प्रति और बेटे का बाप के प्रति क्या कर्त्तव्य है ? ये कर्त्तव्य होटल में नहीं मिलेंगे वहाँ तो भज कलदारं है। अतः भाई भाई का सम्बन्ध तो घर में ही मिलेगा। कहावत है– "रहणो भाई के बीच चाहे वैर ही हो, खाणो मां रे हाथ रो चाहे जहर ही हो।" कच्चे रास्ते में चले तो बहुत बार चूक जाते हैं। जिस गांव जाना है वहां नहीं पहुंच पाते हैं।

एक बार देखा दो भाई पास–पास अपनी दुकानदारी करते थे परन्तु एक दूसरे से नहीं बोलते थे। एक बार एक भाई का झगड़ा किसी निम्न कास्ट (Caste) के व्यक्ति से हो गया। झगड़ा इतना बढ़ गया कि वह व्यक्ति अपनी पूरी गैंग (Gang) सहित आ गया। इधर वह अकेला था उसे मारने लगे। सारा मार्केट देख रहा था। सबने सोचा, जब भाई ही सहयोग नहीं करता तो हम क्यों करे। बड़ा भाई सोच रहा है मरने दो साले को, यह है ही ऐसा............। छोटा भाई मार खा रहा है। बड़े भाई का दिमाग तो कहता है मरने दो। पर दिल कुछ और कह रहा है। ज्योंहि छोटे भाई को कोई मरता है, तो बड़े भाई को लगता है, जैसे उसके दिल पर चोट मारी है। आखिर छोटे भाई को वह मार खाते नहीं देख सका और बिजली की तरह उछला और दुकान से कूदकर सीधा टूट पड़ा उस भीड़ पर, फिर किसी की हिम्मत नहीं की उसे मारे। फिर तो पूरा मार्केट आ गया। इसीलिए कहा गया है– "रहणो भाई के साथ चाहे वैर ही क्यों न हो।" जो घर को बदल दे वे सैकण्ड हेण्ड ही होते हैं। उसे अपने घर की बात याद आयेगी। आजकल दूसरी शादी हो जाती है तो बहुत बार द्वन्द्व चलता है। अपना घर तो अपना ही है। दलबदलू बनते हैं तो उसकी कीमत नहीं है। वह नेता रेपूटेडे (Reputed) यानी स्वच्छ छवि वाला नहीं माना जाता। आपको पता है मोरारजी देसाई सिद्धान्तवादी थे। बाहरी पद प्रतिष्ठा महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है आपके सिद्धान्त। वह सिद्धान्त है अपने घर से जुड़े रहें। यह है आपका कर्त्तव्य। उसके बाद नम्बर आता है अधिकार का। आप कर्त्तव्य और अधिकार के साथ कहें कि बेटा ! ऐसा करना

ऐसा नहीं करना। यदि खून में, संस्कारों में खराबी आती है तो बेटे बेटी गलत रास्ते चले जाते हैं। यदि आपका बेटे–बेटी, परिवार पर अधिकार है तो अधिकार के साथ कह सकते हैं। यदि आपका व्यवहार सही है तो बेटा एक न एक दिन आपका होगा। तीसरा है प्रेम– यदि प्रेम हो तो व्यक्ति एक दूसरे के साथ जुड़ जाते हैं। यदि मशीन जाम हो गई तो तेल, ग्रीस डालने से चल सकती है। वैसे ही परिवार रूपी मशीन में भी प्रेम का तेल डाले तो खटपट मिट जायेगी। चाहे आलीशान बंगला ही व्यक्ति के पास क्यों न हो पर प्रेम के अभाव में वह भूत बंगला लगेगा। घर में फर्नीचर आदि चाहे न भी हो कोई जरूरत नहीं है उनकी, पर घर की सजावट के लिये प्रेम चाहिये।

एक बार एक बेटे को बुखार आ गया। माँ रात भर गीली पट्टियाँ लगाती जा रही है। रात की 1–2 बज गई। बेटे ने कहा– माँ सो जाओ। वह कहती कुछ भी नहीं हुआ मुझे। दूसरी रात को भी वह बेटे की सेवा में लगी रही। कारण स्पष्ट है। उसका बेटे के प्रति प्रेम जो है। कुछ ही दिन बाद सास को बुखार चढ़ा तो बहू पैर पटकती जाती और तनफन करती। पैर दबाती तो मुश्किल से 5–10 मिनिट, सोचती-अरे यह झकझक कब मिटेगी। पति शाम को आता तो कान भरती मेरे से नहीं होगी सेवा। यह बुढ़िया तो हमेशा बीमार रहती है। ऐसा क्यों होता है ? उसका सास के प्रति प्रेम नहीं है, पर माँ का बेटे के प्रति प्रेम है अतः वह रात भर भी जगी तो उसे भार नहीं लगा।

एक बार एक 12 साल की लड़की अपने एक डेढ़ साल के भाई को लेकर पहाड़ पर चढ़ रही थी। उधर से आते हुए एक संन्यासी ने पूछा– "क्या तुम्हें भार नहीं लग रहा है ?" लड़की–यह तो मेरा भाई है। भाई क्या भार होता है ? अगर पत्थर होता तो भार लगता। तो कहने का मतलब है भार कहाँ लगता है जहाँ भीतरी लगाव नहीं हो और लगाव के अभाव में ही झगड़ा होता है।

आज आदमी बोलता क्या है करता क्या है। रोड़ पर क्या बोल रहा है और यहाँ आकर क्या बोल रहा है ? मत भूलिये आपकी ये हरकतें सब समझते हैं। आप सुनते क्या है पकड़ते क्या हैं ?

एक क्रिश्चियन युवक शराब बहुत पीता था, छोड़ता नहीं था। अनेक बार उसे लोगों ने समझाया पर नहीं माना। किसी ने उसे धर्म–बाइबिल सुनने की बात कही तो वह पादरी के पास गया बोला– धर्म की पुस्तक सुनाएं। उन्होंने बाईबिल में लिखी एक लाईन बताई कि " शराब खूब पीओ यह नरक में जाने का रास्ता है।" तब वह बोला अरे यह क्या कहा ? मैं भी तो यही

कह रहा हूं। धर्मशास्त्र में लिखा है– शराब खूब पीओ। पादरी ने उसे कहा– आगे सुनो, आगे क्या लिखा है। तब वह बोला– जब इतने से ही मेरा काम चल जाता हैं तो आगे सुनने की क्या जरूरत है ?

आज इन्सान सुनता क्या है पकड़ता क्या है ? इसी से गड़बड़ी होती है। घर में झगड़ा होता है। व्यक्ति सोचता है घर अच्छा नहीं है घर में किचकिच होती है। वह घर से बाहर भागने लगा, सोचता है हिल स्टेशन चला जाऊँ और कहीं जाकर बैठ जाऊँ। बन्धुओं ! आदत नहीं बदली तो यहाँ आकर भी खराबी पैदा करेगी, छोटे साधुओं को भिड़ा देगा। साधु–संतों को भी लड़ाना शुरू कर देगा। यदि यही स्थिति रही तो याद रखो बेटे बाप से अलग तो रहते ही हैं। चार बेटे हैं तो पांच चौके चलते हैं पर अब वह समय भी आ जायेगा कि चार बेटे हैं तो चौके चलेंगे दस। क्योंकि बैंक बेलेन्स तो सबका पहले से ही अलग–अलग है। तब पति–पत्नी भी अलग–अलग रहेंगे।

ये विकृतियाँ क्यों बढ़ती जा रही हैं ? क्योंकि संत–सम्पर्क कम कर रहे हैं। पाश्चात्य संस्कृति और टी.वी. का बढ़ता प्रभाव है। आज टी.वी. ने घर में आग लगानी शुरू कर दी। यही कारण है कि पारिवारिक स्नेह, सौहार्द्र के रिश्ते टूट रहे हैं। परिवार में सास, बहू, बच्चे व बड़े सभी साथ बैठकर टी. वी. देख रहे हैं।

चीर हरण का दृश्य अश्लील गानें गुनगुनाना। यदि घर में हो तो बहू को शर्म नही। आज मर्यादा और संस्कृति कहां रही। ऐसे में भले वह धर्म स्थान में आ जाए पर मन को शान्ति कैसे मिल सकती है ? 50 वर्ष के बूढ़े न जाने,. ऐसी बातें आज 8–10 वर्ष के बच्चे जानते करते नजर आयेंगे। जिनके बारे में आप सोच भी नहीं सकते, सुनकर आश्चर्य करेंगे। रात को 11 बजे बाद वयस्कों के देखने लायक पिक्चर्स टी.वी. में आती है। उन्हें भले वयस्क देखे या न देखे पर बच्चे उठकर देखने लग जाते हैं। ऐसे में उन्हें कैसे समझाया जाये जो इतने विकारों में हैं।

तवा लाल सूर्ख हो गया है, उस पर 3–4 बूंद पानी डाल दें तो कुछ नहीं होगा। पहले नीचे से जलती हुई लकड़ियों की हीट (Heat) को वाहर निकालना होगा तभी वे छींटे कामयाब होंगे। घर को स्वर्ग बनाने के लिए आप अपने परिवारिक कर्त्तव्यों को समझें। तभी ये चार छींटे काम आयेंगे।

एक भाई ने कहा मैं टी.वी. करीब–करीब देखता ही नहीं हूँ। हमने कहा जब नहीं देखते हो तो त्याग कर लो। वह बोला– त्याग तो नहीं करता शाम

को आने वाले देश–विदेश के समाचार जो देखता हूँ। इन्सान होने के नाते देश की एक इकाई हूँ। अतः समाचार तो ध्यान रखने पड़ते हैं ? उस व्यक्ति को पूछो– दुनियाँ जल रही है, तुम सुरक्षित हो तो उसे बचाने जाओगे ? नहीं। वैसे ही समाचारों की जानकारी भी हृदय का संवेदन नहीं अपितु मनोरंजन ही अधिक है। खैर........। हमने कहा–इसके अलावा त्याग कर दो। तो बोला– कभी–कभी धार्मिक प्रोग्राम रामायण महाभारत भी देख लेता हूँ। मैंने कहा– चलो इसके अलावा देखना छोड़ दो। तो वह बोला– नहीं मनोरंजन के लिए चित्रहार ही देख लेता हूँ। अच्छा बाबा इसके अलावा त्याग करलो। तो वह बोला– महाराज शनिवार रविवार को बच्चे पोते तो घूमने चले जाते हैं। मैं घर पर बैठा क्या करूँ। तब शनिवार रविवार को टी.वी. पर आने वाली पिक्चर देख लेता हूँ और फिर कहता है कि मैं टी.वी. नहीं देखता। कैसे संस्कार मिले बच्चों को।

पहले के लोग इतने बच्चे होते तो भी पालपोस कर उनमें सुन्दर संस्कार भी देते किन्तु आज तो 2–3 बच्चे भी भारी मुश्किल है। जिसमें आज इतनी सुविधाएं है। पानी घर में है। घर में ही क्या, नल तो परेण्डे पर भी लगा है, आटा भी सीधा, गैस चूल्हे से तुरन्त काम, कपड़े के लिए वाशिंग मशीन, ज्यूस के लिए मिक्सी आदि न मालूम कितनी मशीनरी सुविधाएँ हो गई हैं। फिर भी समय नहीं ? अरे श्रृंगार करने में निन्दा विकथा करने में टी.वी. देखने में समय मिल जाता है। यदि 2–4 सदस्य परिवार में है तो भी भिड़ जायेंगे। घर को स्वर्ग बनाने के लिये एक दूसरे के प्रति स्नेह प्रेम की जरूरत है। गृहणी को अर्द्धांगिनी कहा जाता है, एक अंग शरीर की एक इकाई है। यदि एक हाथ में फोड़ा हो गया तो दूसरा हाथ उसकी सहायता करेगा। पट्टी करेगा, यदि गहरा फोड़ा है तो जिन्दगी भर सेवा करेगा। शरीर के लिये पूरी व्यवस्था एक–दूसरे हिस्से करते हैं। वैसे ही पति–पत्नी में, एक दूसरे के अधूरे कार्य हो तो उसकी गलती न मानकर स्वयं की मान ले तो झगड़ा समाप्त हो जायेगा। एक पांव में कांटा चुभा माईण्ड ने सूचना दी दूसरा हाथ तुरन्त बढ़कर कांटा निकाल लेता है। पीठ पर यदि खुजलाना हो तो जितना दूसरा इतना अच्छा नहीं खुजा सकता उतना स्वयं हाथ अच्छी तरह खुजा सकता है। यह है शरीर का एडजस्टमेंट। आज आप करोड़ों रुपया भी कमा लेते हैं पर पति–पत्नी का एडजेस्टमेंट कैसे क्या होता है पता नहीं। उसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये वे नहीं जानते। जीते जरूर हैं पर जीना कैसे चाहिये

यह उन्हें पता नहीं है। एक दूसरे को काटे नहीं बल्कि निभायें। यह है घर को स्वर्ग बनाने की स्थिति।

पिता ने एक बार पुत्र को थप्पड़ मारी, थप्पड़ थोड़ी जोर से मारी बच्चा एकदम उदास हो गया। पिता बोले– बेटा ! मैंने तुझे मारा नहीं प्यार किया है। प्यार ! बेटा भी तपाक से बोला– मैं भी अगर बड़ा होता तो आपके प्यार का जबाब प्यार से देता। यह मत भूलिये कि बच्चा छोटा है वह क्या जानता है, बच्चा आपके हर एक्शन को एक्सेप्ट (Accept) करता है। एक बार एक ताऊ ने बच्चे को कहा– तेरी कार के कांच पत्थर से फोड़ दूंगा। वह ताऊ तो फोड़ेगा तब फोड़ेगा पर बच्चे ने पत्थर उठाया और ताऊ की कार के ऊपर दे मारा। देखिये आप जो हरकत करते हैं उसे बच्चा कितना जल्दी कैच (Catch) करता है। इसलिये तन को ठण्डा करने के लिये विचारों को बदलना सीखिये। पति–पत्नी घर को स्वर्ग बनाने वाले होते हैं। पर सही समझ के अभाव में वही नरक के द्वार खोलने वाले बन जाते हैं।

पति–पत्नी लड़ रहे थे। किसी ने कहा भाई क्या हुआ लड़ क्यों रहे हो। पत्नी बोली– क्या बताऊँ जब मेरी शादी हुई थी तब ये मुझे प्रेम से चन्द्रमुखी कहते थे। दूसरे साल सूर्यमुखी और अब शादी का तीसरा साल है अब मुझे ज्वालामुखी कहते हैं। पति बोला– क्या कहूँ साहब ! मैं बड़ा परेशान हो गया पहले साल यह मुझे प्राणनाथ कहती थी। दूसरे साल नाथ का सम्बोधन पुकारती थी और आजकल तो मैं अनाथ हो गया हूँ। पहले साल पति बोलता, पत्नी सुनती थी। दूसरे साल पति बोलता पत्नी सुनती थी। तीसरे साल दोनों बोलते जहां सुनने वाला कोई नहीं है।

आज के जोक ऐसे बन जाते हैं जो दुनियां को सच्चाई बता देते हैं। शादी के समय बारात जाते समय पति हंसता है। पत्नी रोती है। यह देख बेटे ने अपने बाप से इसका कारण पूछा। उसे बताया गया "यह बाबुल का घर छोड़ रही है न इसलिये रो रही है।" आदमी के न रोने का कारण पूछा तो बतलाया– दुल्हन तो ससुराल न पहुंचे तब तक ही रोती है। बाद में चुप हो जायेगी। इसके बाद दुल्हे की रोने की बारी आयेगी। जो जिन्दगी भर रोता रहेगा।

सास की आदत खराब होती है। बहू की कुछ गलती होने पर सीधा उसके पीहर पक्ष को कोसती है और हर लड़की का यह स्वभाव होता है वह अपने पीहर के बारे में कुछ सुनना नहीं चाहती है। कभी कहती है यह डाकण

ऐसी आई कि मेरे बेटे को छीन लिया। अरे सास को भी सोचना चाहिए तूं भी इस घर की बहू थी, तेरा भी पीहर है। जैसे तूं पराये घर में आई और मालकिन बन गई वैसे ही ध्यान रखना चाहिए कि यह भी इस घर की मालकिन है। लेकिन जब सास यह नहीं समझती है तो साल भर में एक घर में दो चूल्हे हो जाते हैं। अतः घर को सही चलाना है तो गलती स्वयं की मानना होगा। घर में स्वर्ग बनाए रखने के लिए गलती दूसरों की नहीं अपनी देखें।

एक बार गोपाल कृष्ण गोखले कुछ लिख रहे थे। स्याही खत्म हो गई। उन्होंने नौकर से दवात मंगाई। हाथ में पकड़ते वक्त गिर गई, फूट गई। कालीन भी खराब हो गया। नौकर घबराया कि मालिक क्या कहेंगे। पर गोखले जी बोले– भाई तुम्हारी गलती नहीं है। गलती तो मेरी है कि मैंने दवात सही तरीके से नहीं पकड़ी। नौकर की आशा के विपरीत जबाब था। जबाब मिला तो वह बोला– मालिक ऐसा नहीं है गलती मेरी है। आपके दिमाग में तो सत्तरह काम होते हैं। मुझे दवात को जब तक आप सही तरीके से न पकड़े, छोड़ना नहीं चाहिये था। भविष्य में ध्यान रखूंगा। इसे कहते हैं घर में शान्ति के साम्राज्य का राज। अपनी गलती देखिये। छोटा भी तभी सुधरेगा। बड़े के पैर से ग्लास के ठोकर लगती है तो वह बोलता है रास्ते में किसने रखी और अन्य से लग गई तो वह कहेगा कि इतनी बड़ी ग्लास भी नहीं दिखती है। तब सुख का संचार कैसे हो, आदत बदलना होगी यह।

नई पुरानी जनरेशन (Generation) में भी सामंजस्य बिठाना होगा। सास अपनी सास के सामने घूंघट निकालती, उनके सामने नहीं बोलती, रोज उसके पैर दबाती, घर से बाहर घूमने नहीं जाती। तो अब उनकी बहू भी ऐसा करे तो संभव नहीं। सास को युग के अनुसार समझकर चलना होगा। इसी प्रकार फिजूल खर्ची के नाम से भी घर में क्लेश मचाना ठीक नहीं क्योंकि जिस सोने का भाव यदि 50 साल पहले 50 रु. तोला था तो आज उसी का भाव 5000 रु. होता है। उसी प्रकार जिस वस्तु की कीमत 50 साल पहले 50 रु. की थी उसी को आपका बेटा आज 5000 रु. में खरीद रहा है तो कोई फिजूल खर्ची नहीं है। क्योंकि पैसों का अवमूल्यन हुआ है। पचास साल पहले 50 रु. में भी घर खर्च चल जाता था। लोग 50 रु. महिने की नौकरी में बहुत खुश रहते और आज आपका नौकर 500 रु. महिने में रह रहा है।

नौक़रों के साथ प्रेम पूर्वक सामंजस्य बिठाएं। क्रोध आपकी शान्ति को भंग करने वाला है। आज नौकर को मालिक की नहीं अपितु मालिक को नौकर की जरूरत है। अतः उसके साथ भी स्नेह रखना जरूरी है।

पत्नी गुस्सेल और पति शान्त रहे, तब ही घर में शान्ति बनी रह सकती है। भक्त तुकाराम के जीवन के अनेक संस्मरण हैं– उनमें से एक संस्मरण यह भी है कि एक बार वे जंगल से घर की ओर जा रहे थे, उन्हें रास्ते में गन्ने के खेत का मालिक जो कि उनका भक्त था, प्रतिदिन रात्रि में उनकी भक्ति में आया करता था, वह मिला। उसने भक्त तुकारामजी का स्वागत किया और 20–30 गन्ने की एक भारी बनाकर उन्हें भेंट कर दी, जिसे लेकर भक्त जी घर की ओर आ रहे थे। रास्ते में उनके अन्य अनेक भक्त मिल गये। भगतजी ने उन्हें सहृदय वश एक–एक गन्ना दे दिया। घर आते–आते उनके पास एक ही गन्ना रह गया। जब पत्नी के सामने एक ही गन्ना रखा तो वह बोली– एक गन्ना ही कैसे लाये।

निश्छल मानव तुकाराम जी ने बीती बात बता दी कि गन्ने की भारी मिली थी, पर रास्ते में बांट दिये। बस फिर क्या था, पत्नी का गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ गया, वह चिल्लाई, तुम घर नहीं चला सकते। घर जलाकर प्रकाश करने वाले घर को भस्म कर देंगे। गुस्से में बकती बकती उस औरत ने तुकाराम के पीठ पर गन्ने से मार दिया, परिणामस्वरूप उसके तीन टुकड़े हो गये। तुकाराम जी फिर भी पूरी तरह शान्त थे, बल्कि मुस्कराते हुये बोले– भली मानस तुम कितनी समझदार हो, मुझे इस गन्ने के तीन टुकड़े करने पड़ते, एक मेरे लिये, एक तुम्हारे लिये और एक बच्चे के लिये। लेकिन तुमने वैसे ही तीन टुकड़े कर मेरा काम हल्का कर दिया। बेचारी पत्नी का गुस्सा उस शान्त स्वभावी के सामने टिक नहीं सका। घर में शान्ति बनाये रखने के लिये ऐसी खूबी भी आना आवश्यक है।

यह सब तो बाहर के घर को स्वर्ग बनाने की चर्चा हुई। हकीकत में तो यह भी घर अपना घर नहीं है। सच्चा घर तो वह घर है जहाँ जाने के बाद वापस घर छोड़ना नहीं पड़े। ऐसा घर सिद्ध क्षेत्र ही है। जब आत्मा तप संयम की विशिष्ट आराधना करके आठ कर्मों से विनिर्युक्त बनती हुई देह मुक्त होकर प्रयाण करती है उस वक्त एक ही समय में सिद्ध में जा विराजती है। उसके बाद दुनियाँ में कितने भी आँधी तूफान आए उनकी आत्मा विचलित नहीं होती। नहीं वहाँ से एक इंच भी खिसकती है। अपने अनन्त सुख में

तल्लीन रहती है। जो स्वर्ग ही नहीं अपवर्गिक सुख प्रदान करता है। स्वर्ग के सुख क्षणिक हैं। एक समय के बाद छोड़ना पड़ते हैं। पर मुक्ति का सुख अनन्त और शाश्वत है। लेकिन जब व्यक्ति का व्यवहार समतामय होता है तो अन्तर में भी समता रस के संचार का अनुभव होने लगता है।

सधर्म का आचरण इन्सान के लिए परलोक का ही विषय न होकर पहले इस लोक को भी ठीक करता है।

स्वार्थपरता से ऊपर उठकर परमार्थ की जिन्दगी जीने वाले के लिए सदा–सदा स्वर्ग है।



जिन्दगी जीने की कला

अपना कर्त्तव्य करते चलो।
चिन्ता करने से कैसे चलेगा।।टेर।।

आज का विषय है जिन्दगी जीने की कला। सबसे बड़ी समस्या है इन्सान के पास कि वह इस दुनियाँ में आ तो गया है पर इस जिन्दगी को कैसे लेकर चलना चाहिये, जिससे प्रफुल्लता से जिन्दगी पूरी कर सके। इसका ज्ञान बहुत कम लोगों के पास मिलेगा। यही कारण है कि आज का इन्सान शारीरिक, मानसिक रूप से तनाव ग्रस्त बनता जा रहा है।

उन सबका समाधान करने के लिये हमें वीतराग महावीर के सिद्धान्तों पर ध्यान देना होगा। जिन्होंने अपनी जिन्दगी पर सर्वोत्कृष्ट ध्यान दिया और दुनियाँ को निर्देश दिया। सबसे पहले दुनियाँ में हमको यह तो समझना ही होगा कि मैं कौन हूँ। "कोई है" आप कहेंगे कौन है। आप अपना नाम पता मोहल्ला बता देंगे। क्या यह सब बताने पर आपका सही पता हो गया ? गली बदलने पर क्या आप बदल जाएंगे ? किसी के गोद जाने से माता–पिता बदलने से आप बदल जायेंगे ? नहीं बचपन में भी आप वही थे जवानी और बुढ़ापे में भी आप वही रहेंगे। इसीलिए आपका जबाब मिलेगा कि मैं तो वही हूँ। दुनियाँ का परिवर्तन होने पर, भव बदलने पर आत्मा का परिवर्तन नहीं होता। यह जन्म तो शरीर बदलना माना जाता है। पुराने वस्त्र बदलने के समान आत्मा शरीर बदल लेती हैं। पर आत्मा में परिवर्तन नहीं होता है। तब हमें जीना है किसमें ? अभी भी बात समझ में नहीं आई ? किस में जीना ? आत्मा में, पर जी कहाँ रहे है ? परिवार, समाज और व्यापार में। हमारे बेसीकली सिद्धान्त ही गड़बड़ है। ध्यान में चींटी काट खाई, अप्पाणं वोसिरामि बोल भी दिया पर उसे हंटाने का प्रयास करेंगे, काटने पर ऊँचा–नीचा होने की कोशिश करेंगे और तो और कोई आदमी आया तो ध्यान होते हुए भी तिरछी दृष्टि से देख लेते हैं।

मूल बात यह है कि आज के लोग शरीर में ज्यादा जी रहे हैं। दुनियाँ में जी रहे हैं पर समझना होगा हमारे शरीर व दुनियाँ में बदलाव आता जा रहा है। निरंतर बदलाव, सनत्कुमार चक्रवर्ती की बात है। नहाने के पहले

देखा कितना सुन्दर रूप और कुछ देर बाद 16 महारोग। अपनी भी यही दशा है। थोड़ी देर पहले स्वस्थ, भले चंगे घूमते नजर आ रहे हैं। कुछ देर बाद बिस्तर पकड़ लिया जाता है। गम्भीर बीमारियाँ मिनटों में पैदा होती है। जिस शरीर को हम अपना समझकर संवार रहे हैं, वह मिनटों में धोखा दे रहा है। जिस पत्नी व बच्चों को अपना समझ रहे हैं वे मिनटों में धोखा दे देते हैं। सुना होगा आपने परदेशी राजा को। जिसका गला सूर्यकान्ता रानी ने ही घोटा था। जिस बेटे के लिए सम्पत्ति कमाई उस बेटे कोणिक ने अपने पिता श्रेणिक को जेल में डाल दिया तो किसके लिये हम जी रहे हैं। हम अपने बेसिकली सिद्धान्त का परिवर्तन करें। हम जीऐं तो पुत्र, परिवार, धन के लिये नहीं अपने लिये जीऐं। कहा भी है–

"वरं मे अप्पा दत्तो संजमेण तवेणं य।" अपनी आत्मा का ही दमन करो, क्योंकि आत्मा ही अपना मित्र व शत्रु है।" दुप्पट्ठिओ सुपट्ठिओ" क्योंकि आत्मा के सुविचार हमारी आत्मा के लिये मित्र व कुविचार शत्रुता का काम करते हैं। हम ही कुआ खोदते हैं और हम ही पानी भरते हैं और हम ही कीचड़ पैदा करके खतम हो जाते हैं। बाहरी व्यक्ति तो मात्र निमित्त मिल जाते हैं। पर हम भूल जाते हैं और यही समझते हैं कि उसने मुझे टल्ला मारा, हम उसे नष्ट करेंगे यह है दुविधा। सोच की कमी है। कोई दूसरा मारने या नष्ट करने वाला नहीं है।

जिन्दगी का नजरिया सही हो, सही जिन्दगी जीने के लिये हमारी सोच सही हो। यदि सोच सही बन गई तो हर चौराहे पर जिन्दगी के विकट मोड़ पर भी मुस्करा सकते हैं।

दुनियाँ के लोग ज्यादातर भविष्य के लिये जीते हैं। फूल वर्तमान के लिये। वर्तमान में जीते हैं। वे ज़ानते हैं (आपेक्षिक) कि भविष्य में मिट्टी में मिल जाना है पर वर्तमान में जीने से हंसते हैं और हम सोचते हैं भविष्य का क्या होगा। परन्तु ज्ञानी जन कहते हैं–

गई वस्तु सोचे नहीं, आगम वांछा नांय।
वर्तमान वर्त्त सदा, सो ज्ञानी जग माय।।

जो बीत गया, जो अतीत के अंधेरे में चला गया, भूल जाईये उस बात को। अतीत में जो हुआ उसका टेन्शन (Tension) न पालें। कल क्या होगा इसका पता नहीं, भविष्य किसने देखा है। गई वस्तु सोचें नहीं, आगम वांछा नाहिं। यानी आगम भविष्य की चिन्ता नहीं करें। आप सोचते हैं बाद में धर्म

कर लेंगे। बैठे रह जाओगे, पर हम नहीं सोचते। आपको चिन्ता रहती है–बेटे का क्या होगा ?

साधु ने सुबह आहार किया तो शाम की भी चिन्ता नहीं, आहार मिलेगा या नहीं ? पर आज बहुत कम जैनी ऐसे होंगे कि जिन्हें भविष्य की चिन्ता न हो। उन्हें शाम की रोटी की तो चिन्ता नहीं है। जैनियों को पेट की चिन्ता कम है, पर पेटी की चिन्ता है। कहा है– गई सोचे नहीं आगम किसने देखा। जब देखेंगे तो वह भी वर्तमान ही होगा। आपने कहानी सुनी होगी– बेटे को वकील बनाऊँगा, पत्नी कहती है डाक्टर बनाऊँगी। दोनों झगड़ने लगे। झगड़ा तब नहीं होता जब भीतर सम्यक् ज्ञान भरा हो। ज्ञान भरा हो तो सब झगड़े तुरन्त शांत हो जायेंगे। किन्तु ज्ञान के अभाव में झगड़ा हो रहा था। हो हल्ले की आवाज पड़ौसी के कानों पर भी पड़ी। वह मामला बढ़ते देख उस दम्पति के पास आया और बीच बचाव करता हुआ बोला– " झगड़ो मत, बेटा क्या चाहता है उससे पूछ लो।"

दम्पति– अभी तो बेटा हुआ ही नही है।

पड़ौसी– जो हुआ ही नहीं तब उससे कोई मतलब नहीं। फिर भी आप उसकी चिन्ता पाल रहे हैं। अरे ! पहले बेटा तो होने दो। इसलिए कहा है– वर्तमान वर्त्ते सदा.............। चिन्ता पैसा नहीं, क्या होगा ? पर यह चिन्ता मत पालिये। यह सोचिये कहीं मैं झूठ तो नहीं बोल रहा हूँ। जीवन में सत्य का स्वरूप समझें। 10 मिथ्यात्व भी रटें, पर समझें नहीं। मिथ्यात्व का मतलब सब उल्टा ही उल्टा है। साधु को असाधु समझें, धर्म को अधर्म समझें तो मिथ्यात्व आदि बहुत मुश्किल है, इन्हें समझना। बड़ा मुश्किल है धर्म को पहचानना। अतः कहा है–

" पानी पीजै छान के, गुरु कीजै जान के।"

एक व्यक्ति थोड़े दिन पहले आया बोला– " मुझे गुरु महाराज से समकित लेनी है। मैंने देखा अमुक गांव के मंत्री इतने बड़े व्यक्ति और अब समकित ले रहे हैं।" उन्होंने बतलाया इच्छा तो कई साल से थी पर ले नहीं सका। वे देख रहे थे। जानकर गुरु किया।

इसी प्रकार हमारा दिल्ली कमलानगर चातुर्मास हुआ। वहाँ के मंत्री कमलचन्द जी मालू और उपाध्यक्ष विमलचन्द जी मालू थे। वे चातुर्मास में बराबर दो माह तक आते रहे। उसके बाद उन्होंने हम संतों की गतिविधि देखी, सन्तुष्ट हुए और बोले कि हमें आपके आचार्य श्री से समकित लेना है।

उन्होंने जाकर गुरु महाराज से समकित ली और जब ब्यावर आये तो यहाँ उनकी कोई रिश्ते में बहिन की बेटी है। वह उनसे कहने लगी, क्या नानालाल जी म.सा. ही साधु हैं ? और कोई साधु नहीं है ? तब उन्होंने कहा–भाई है पर वो वाली बात नहीं है। समझ गये होंगे आप ? सबसे पहले जिन्दगी को बनाना है तो 10 प्रकार के मिथ्यात्व को समझें। सही समझ पैदा करें। तभी हम सही ज़िन्दगी जी सकते हैं। सोच सही बनने लग जायगी जो सब काम अपने आप सही बनने लग जायेंगे। जो है उस पर सोचिये, जो नहीं है उसकी सोच बन्द करिये। "नहीं है" देखेंगे तो दुनियाँ में कुछ भी नहीं है। क्या है तुम्हारे पास 10–20 करोड़ उसके बाद तो तुम्हारा दुनियाँ में कुछ भी नहीं है। अतः तुम्हारे पास जो है उसी में संतोष करो न है उसकी चिन्ता न करें। उसकी आकांक्षा न करें।

एक बार राजेश जी जैन बता रहे थे। गृहस्थ जीवन का प्रसंग है कि हमारा ड्राइवर हर दो चार महिने में भाग जाता। कारण जो कमाया उसे उड़ाना जरूरी है। अपनी अपनी समझ है।

एक बणियां बंगाल पहुँचा। लौटा, धोती लेकर घर से निकला था। चला गया किसी गाँव में। व्यापार में खूब कमाया। वहाँ भी बणिये की वही आदत थी वह शौच कर्म के लिये बाहर जंगल में जाता था। एक दिन वह शौच के लिए गया हुआ था और अचानक भूकम्प ठीक उसी जगह जहाँ उसका बंगला बना हुआ था। पूरा बंगला व सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई। गाँव के लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। सभी सेठ के प्रति हमदर्दी जता रहे थे। तब सेठ बोला– भाईयों घबराने की बात नहीं है, जब मैं यहाँ आया था 40 साल पहले तो क्या था साथ में, लौटा और धोती। आज भी ये दोनों मेरे पास है। घबराते क्यों हो यही क़माया और यहीं चला गया। अब फिर जिन्दगी शुरू करते हैं। क्या लाजवाब था उसका जबाब। यह प्रसंग आपके साथ होता तो आप क्या जबाब देते ? शायद हार्ट फेल हो जाता। उस बंगला निवासी मारवाड़ी को कोई चिन्ता नहीं थी। इसे कहते हैं– जिन्दगी जीने की कला। भगवान महावीर के शब्दों में–

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निन्दा पसंसासु, तहामाणावमाणओ।।

लाभ अलाभ, सुख दुःख, जन्म–मौत, निन्दा–प्रशंसा तथा मान–अपमान के समभाव रखने वाला सुखी हो जाता है। अर्थात् लाभ और अलाभ, सुख और

दुःख में, निन्दा और प्रशंसा में समभाव रखना सीखें। एक व्यक्ति ने बंगला बनाया। अचानक मुहूर्त के दिन कुछ समय पहले ही छत का लेंटर टूट गया। सभी दर्शक और अतिथि घबराये किन्तु उस मकान मालिक ने 50 हजार का दान किया। लोग सोचने लगे क्या इसका दिमाग खराब हो गया है। इतना नुकसान हुआ और ये महाशय ऊपर से 50 हजार का दान कर रहे हैं। उसने लोगों को समझाया जो होना था वह तो हो गया किन्तु खुशी इस बात की है कि सभी सलामत बच गये। इसलिये मैंने 50 हजार का दान किया।

बिल्ली अपने बच्चों को व चूहे के बच्चे को पकड़ती है उसी मुंह से। किन्तु बिल्ली का बच्चा प्रसन्न व चूहे का बच्चा परेशान होता है। ये दोनों पहलू है जीवन के। उसी घटना में आनन्द कैसे मनाया जा सकता। उसी में दुःखी कैसे हुआ जा सकता है।

एक व्यक्ति मुझसे मिला। बताया कलकत्ते में एक हमाल सोया था मैंने उसे जगाया कि मेरा यह सामान अमुक स्थान पर पहुँचा दे। वह बोला– नहीं, मैं आराम कर रहा हूँ।

अरे आराम कर रहा तो क्या, मैं तुझे ऐसे ही ले जा रहा हूँ 30 रुपये दूँगा।

वह बोला– 30 रुपये से क्या होगा ? 40–50 ले लेना उससे क्या होगा। अंत में मैं 80–100 रुपये तक देने को बोला तब भी वह कहता– पैसे से क्या होगा ? तब सामने वाला व्यक्ति बोला– अरे पैसे से क्या नहीं होता। पैसे से ही सब कुछ होता है।

हमाल– सब कुछ से मतलब ?

व्यक्ति– फटे कपड़े से अच्छे कपड़े हो जायेंगे।

हमाल– फिर क्या होगा ? हमाल बोला।

व्यक्ति– तब एक छोटा मकान ले लेना।

हमाल– और अधिक पैसा आ गया तब ?

व्यक्ति– तब क्या बंगला बना लेना।

हमाल– फिर आगे ?

व्यक्ति बोला– आगे क्या जब ज्यादा पैसा आने पर अपार्टमेन्ट, गाड़ी खरीद लेना। इससे भी ज्यादा पैसा आ जाय तो अमेरिका, चीन, जापान आदि विदेश घूम लेना। हमाल बोला उसके बाद क्या होगा ? व्यापारी बोला– उसके बाद अपने बंगले में आराम से नींद लेना।

हमाल बोला– वह काम तो मैं अभी कर ही रहा हूँ। इसके लिए इतना चक्कर काटने की क्या जरूरत है ? फिर इतना चक्कर काटने पर सब काम पूरा हो भी या नहीं। इसका भी विश्वास नहीं। यदि लेना नींद ही है तो ऐसा मूर्खता भरा चक्कर मैं नहीं लगाता। तुम मेरे आराम में क्यों दखल दे रहे हो। चलो रास्ता नापो अपना।

वह व्यक्ति मुझसे बोला– महाराज ! जो बात हम आप से नहीं समझ पा रहे हैं, वह बात उस हमाल ने मुझे प्रेक्टीकल रूप से समझा दी। हम दिन–रात दौड़ रहे हैं, परेशान हो रहे हैं। पर वह कहता है क्या फर्क पड़ जायेगा। सोने की थाली में खायें या स्टील की थाली में खायें मतलब तो भूख मिटाने से हैं। आज बहनें सोने की चैन पहनकर आये। दुनियाँ उन्हें देखे या न देखे वह अपने मन में खुश होती रहती है।

जिन्दगी अगर जीना है तो जीने के सही तरीके अपनाने होंगे। घटना के दोनों पक्ष होते हैं। चाहे तो घटना का दूसरा पक्ष ले सकते हैं और चाहे तो पहला पक्ष। बोतल आधी भरी है। हम चाहें तो कह सकते हैं कि आधी भरी है और चाहे तो कह सकते हैं कि आधी खाली है। दोनों पहलू में से जो चाहे वो ले सकते हैं। फिर सही ही सोचें, व्यर्थ झगड़े में क्यों पड़ें ?

एक संन्यासी सोचता है कितना रहना है मुझे ? क्यों झगड़ा मोल लूं। आप किराये के मकान में रहते हैं। 2–4 महिने के लिये तो क्यों झगड़ा मोल लेंगे। सोचते हैं हमें कितनाक रहना है ? फिर झगड़ा क्यों ?

संन्यासी भी यही सोचता है मुझे कितना जीना है। मुझे सोने बैठने की जगह तो मिल ही रही है। मुझ से भी अधिक दुःखी व्यक्ति कितने हैं ? आज आप बंगला बना भी ले पर कब तक रहोगे ? कितनी जगह चाहिये आपको, सिर्फ सोने जितनी। एक पलंग जितनी जगह ज्यादा से ज्यादा। बाकी सब जगह तो पड़ी ही रहेगी। सन्यासी की कितनी अच्छी सोच है। उसी की यदि 3 बात मान लें तो जीवन जीने की कला आ जायेगी। प्रथम कितने दिन का जीना है ? दूसरी ऊपर जाना है क्यां लडूं ? पास पड़ौसी से लड़ना झगड़ना मिट जायेगा। घटना के सही पहलू को, सही सोच को पकड़ो। सारे झगड़े समाप्त हो जायेंगे। क्या हक है तुम्हें दूसरों का हक छीनने का ? तीसरी बात तुमसे भी अधिक दुःखी कितने हैं दुनियां में, कभी सोचा है ? तुम्हें रहने को मकान तो मिला। कइयों के पास रहने को मकान भी नहीं है।

एक पिता के दो पुत्र थे। दोनों में बहुत प्रेम था। बड़े स्नेह के साथ रहते, व्यापार करते। एक दिन पिता चल बसा इस दुनियां से। कुछ ही दिनों बाद छोटी छोटी बातों के कारण वैमनस्य बढ़ा और अलग–अलग रहने का निर्णय ले लिया। सारी सम्पत्ति बराबर दो भागों में बंट गई। लेकिन एक वस्तु को लेकर विवाद बढ़ गया। वह थी अंगूठी। एक सोने की अंगूठी पर डायमण्ड हीरा था और दूसरी बिना डायमण्ड की थी। दोनों ही भाई डायमण्ड की अंगूठी लेने का आग्रह करने लगे। समाधान का रास्ता खोजा जाने लगा। परन्तु एक ही आग्रह–लेंगे तो डायमण्ड की ही।

जब इन्सान में ना समझी भरा आग्रह बढ़ जाता है तो संघर्ष छिड़ जाता है। तब जो है उसका भी आनन्द उसे नहीं मिल पाता है। समझदारी से काम लिया जा सकता था कि जो डायमण्ड की अंगूठी ले वह, बिना डायमण्ड की अंगूठी लेने वाले को उचित मूल्य दे दें। पर नहीं हठाग्रह ने दोनों को न्यायालय तक पहुँचा दिया।

आप जानते हैं आजकल के न्यायालयों का हाल। तारीखें पड़ती रहती है, केस आगे से आगे बढ़ता रहता है। जेबें वकीलों की भरती रहती है। कई बार तो ऐसा हाल हो जाता है कि दो बिल्लियों को रोटी बाँटने के चक्कर में बन्दर सारी रोटी खा जाता हैं दोनों को कुछ नहीं मिलता। बन्दर ने रोटी को तराजू में रखा, तोला। जिधर ज्यादा वजन होता वह उसका टुकड़ा तोड़कर खा जाता। फिर इधर वाला भारी हो जाता तो उधर का खा जाता। ऐसा करते–करते तराजू की रोटी खा गया। बिल्लियाँ देखती रह गई। यही हाल कभी–कभी कोर्ट कचहरियों में हो जाता है।

यही हाल दोनों भाइयों का होने जा रहा था। पर उनके पिता का दोस्त, जो पास ही रहता था। उसने सुना ! उसे लगा, मेरे दोस्त के बेटे झगड़ रहे हैं, बर्बाद हो जाएंगे। मुझे समझाना चाहिए। यही सोचकर वह उनके पास गया और उन दोनों भाइयों ने पूरा सम्मान दिया। वे पिता के दोस्त को भी पितृतुल्य सम्मान देते थे। दोनों ने अपनी समस्या उनके सामने रखी। तब पिता के मित्र ने दोनों अंगूठियाँ हाथ में ली। ध्यान से देखा तो बिना हीरे वाली अंगूठी पर कुछ खुदा हुआ था। सब कुछ जानने के बाद उसने छोटे–लड़के को बुलाकर समझाया कि यह बिना हीरे की शकुनी है, तुम यह रख लो, और हीरे वाली उसे दे दो। यह जिसके भी पास रहेगी उसका काम अच्छा चलेगा। पर वह नहीं माना, उसे लगा कि यह सब समझाने वाली बातें हैं। तब बड़े

भाई को बुलाकर यही बात समझायी तो वह मान गया। उसने बिना हीरे की अंगूठी ले ली।

दोनों का व्यापार अलग–अलग हो गया। छोटे के पास जमी जमाई फैक्ट्री आई। प्रथम वर्ष उसमें अच्छी कमाई हुई। इधर अंगूठी का हीरा भी जोरदार था। रिफ्लेशन (Reflection) जोरदार पड़ती थी। उसके पांच–सात दोस्त बन गए। होता ही है–धनवान के चापलूस बन ही जाते हैं। वह दूसरे वर्ष ही धन के अहं में सुख भोग में पड़ गया। घूमने–फिरने में उलझ गया। धन्धा देखा नहीं। नौकर चाकर खा गए। दूसरे वर्ष भारी कर्ज चढ़ गया। परिणामस्वरूप फैक्ट्री बिक गई। बंगला बिक गया। हार्ट अटेक हो गया, किराये के मकान में आ गया। हालात खराब हो गए।

इधर बड़े भाई का नया व्यापार था। काफी मेहनत करने पर भी भारी घाटा हो गया। उसका मन खराब हो गया। उसने सोचा यह कैसी शकुनी अंगूठी है। इससे तो और घाटा हो रहा है। उसने अंगूठी को ध्यान से देखा तो उस पर कुछ खुदा हुआ था। साफ करने पर अक्षर पढ़ने में आए। उसमें कोई मंत्र तो लिखा नहीं था। ओम ह्री श्रीं वाला। उसमें साफ एक वाक्य खुदा था। वह यह था " यह भी नहीं रहेगा" उसने सोचा पिता जी, मुझे समझा रहे हैं कि बेटा घबरामत। यह नुकसान भी ज्यादा समय रहने वाला नहीं है। उसमें उत्साह का संचार हुआ। वह दुगुने वेग के साथ व्यापार में लग गया। मेहनत व अनुभव रंग लाया और उसने दूसरे वर्ष में लाखों रुपये कमा लिये। पैसा आते ही नेचुरल (Natural) है आदमी को घमण्ड आने लगता है। यही स्थिति इसकी भी बनी दौलत ने उसे घमण्डी बना दिया।

आप जानते हैं –दौलत शब्द का अर्थ। दो + लत। याने दो लात। जब दौलत आती है तो आदमी के पीठ पर लात मारती है, तब उसका सीना तन जाता है और जब जाती है तब वह सीने पर लात मारती है तो गर्दन झुक जाती है। इस भाई का भी सीना तन गया। वह अकड़ने लगा। किसी से भी सही ढंग से बात नहीं करता। मुंह फट हो गया। इतने में एक दिन वह अंगूठी के अक्षर उसे दिखलाई दिये। उस पर लिखा–"यह भी नहीं रहेगा"।

उसे लगा पिताजी कह रहे हैं, बेटा तूं क्या घमण्ड कर रहा है। यह दौलत भी टिकने वाली नहीं है। कारूं का खजाना भी नहीं टिका है। रावण का घमण्ड भी चूर हो गया तो तूं क्या टिकेगा। बस उसका घमण्ड काफूर हो गया। वह सोचने लगा अब दौलत का क्या किया जाय। जब यह टिकेगी

ही नहीं तो फिर तिजोरी में रखने से क्या फायदा। उसने दान देना प्रारम्भ किया। अस्पताल, धर्मशाला, भोजनालय, स्कूल आदि कई सार्वजनिक काम किये। नाम हो गया उसका। जहाँ जाओ वहाँ स्वागत होने लगा। वह अन्दर ही अन्दर फूलने लगा अपने दान पर।

यही भारी गड़बड़ है। यदि दान, अहंकार का विषय बन गया तो फिर वह बजाय पुण्यानुबंध करने की अपेक्षा कषाय को बढ़ाने वाला बनकर संसार बढ़ाता चला जाता है। कभी भी अच्छे कार्यों पर अहंकार नहीं करना चाहिये। अहंकार से पुण्यों का ह्रास होने लगता है। बड़े भाई का अहंकार बढ़ने लगा। इसी बीच वह अंगूठी सामने आ गई। जिस पर लिखा था– यह भी नहीं रहेगा। बस उसे शिक्षा मिल गई। तूं किस पर अहंकार कर रहा है। जब महादानी कर्ण का नाम नहीं रहा। चक्रवर्ती भरत को अपना नाम लिखने के लिए ऋषभकूट पर्वत पर कहीं जगह नहीं मिली तो तूं किस बाग की मूली है। उसका अहंकार ठण्डा हो गया।

अब लाभ अलाभ के बीच समता से रहना सीख गया। जहाँ सम है, वहाँ कोई परेशानी नहीं। एक दिन उसके पेट में तेज़ दर्द हुआ। डॉक्टर आया। चेकअप (Checkup) के बाद बोला– अपेण्डी साइड हो गया है। ऑपरेशन करना होगा।

ऑपरेशन नाम से घबराहट। कहीं मर न जाऊँ हाय– तौबा करने लगा वह। इधर दर्द भयंकर। इस घबराहट के कारण हार्ट वीक हो गया। बिना हार्ट सन्तुलन के ऑपरेशन नहीं होता। अब क्या हो ? इसी बीच वह अंगूठी सामने आ गई– यह भी नहीं रहेगा। अर्थात् बेटा ! यह दर्द भी नहीं रहने वाला है। घबरा मत ! बस संबल मिला। हार्ट भी सही। ऑपरेश सफल हो गया।

वह भाई, उस मंत्र का रहस्य समझ गया। उसे अब किसी भी परिस्थिति में कोई परेशानी नही। सदा आनन्द की बाहर आ गई। यह लोक भी सही, परलोक भी सही ! जिन्दगी जीने की कला आप भी सीखें। " यह भी नहीं रहेगा" इतनी सी भी बात जंच जाय तो हर ऊँची–नीची परिस्थिति में भी प्रसन्नता से जीना आ जाय।

आज के लोगों की दृष्टि आत्मा में जीने की कम है। शरीर में जीने की अधिक है– कौन आदमी कैसे आया है ? वह कैसे कपड़े पहने हैं ? यही नजर बनी रही तो कितने ही पर्युषण मना लें, कितनी ही सामायिक कर लें कुछ विशेष होने वाला नहीं है। नौकरों के भरोसे काम कराने. वाला सही नहीं कमा

सकता है। ध्यान रखिये मालिक वही बड़ा हो सकता जो अपने स्टाफ के सारे कार्यों को सही–सही जानता हो उसके अनुसार स्टाफ काम करता है। उसका पूरा–पूरा ध्यान रखता है तो वही मालिक अपने जीवन में कुछ लाभ कमा सकता है। खानदानी आदमी है तो उसके पास पैसा आने पर और विनय बढ़ जायेगा। खानदानी नहीं है तो पैसा पाकर अकड़ जायेगा। ध्यान रखिये खानदानी बनना है तो विनय करना सीखें। जीना खुद को आता नहीं अकड़ खुद की रहती है और सब कुछ जाने के बाद (सम्पत्ति के नष्ट होने पर) महाराज के पास आकर कहते है।– महाराज ! ऐसी मांगलिक सुना दो, जिससे यह विपत्ति निकल जाय। पहले जिन्दगी जीना नहीं आया और अब चले आए महाराज के पास ? महाराज क्या करें ? ध्यान तो तुमने नहीं रखा।

बन्धुओं ! आपके पास भी दिल रूपी अंगूठी है। आप भी उसमें यह बात बिठा लो कि 'यह भी नहीं रहेगा'। उससे सही जीवन जीने का तरीका आ जायेगा। आज भी दुकान पर अच्छी कमाई हो तो आदमी घर पर उछलता कूदता आयेगा और कमाई नहीं हुई तो मुंह लटकाता हुआ आयेगा। पत्नी समझ जायेगी की कमाई हुई या नहीं। यही स्थिति हो रही समाज और राष्ट्र में। करीब–करीब हर जगह। आदमी मान–सम्मान निंदा–प्रशंसा में उलझकर अपने जीवन को अशान्त करने में लगा। शान्ति का स्त्रोत बाहर से नहीं, भीतर से ही फूटेगा। जरा इसे समझिये। भगवान महावीर का सिद्धान्त है–

"लाभालाभे सुहे दुहे, समानिन्दा पसंसासु"

अर्थात् लाभ–अलाभ, निन्दा–प्रशंसा में समभाव हो। गुरु देव ने हमें समता सिद्धान्त दिया है। चिन्तन करें हम पूज्य गुरुदेव के सिद्धान्तों को कितना, जीवन में जी रहे हैं। आज नहीं तो कल हमें उसकी शरण लेनी ही पड़ेगी। आपने देखा होगा कोई भी विशिष्ट चिकित्सा पद्धति हो, अथवा ध्यान मंत्र की विधि हो, अन्त में यही लिखा होता है– चिकित्सक के परामर्शानुसार। इसी प्रकार यहाँ भी गुरुगम्य। तो गुरु की शरण लेनी ही पड़ेगी। उनकी शरण से सब कुछ चिकित्सा सीखी जा सकती है। तो बोलिये, आध्यात्मिक जीवन के लिये गुरु की शरण कितनी जरूरी है। हमें यह सौभाग्य मिला है।

एक नीतिकार ने एक नीति की बात रखी– जिन्दगी जीने में उत्तम आदमी को अपनी बात मनानी हो तो विनय से झुककर मना सकते हैं। आप से ताकत वाला है तो भेद नीति से समझाना पड़ेगा। बराबर वाला हो तो संघर्ष करके व आप से नीची केटेगिरी वाला हो तो कुछ ले देकर कार्य करा

सकते हैं। एक कथानक द्वारा इस बात को समझाया है। आप भी समझिये इस बात को।

एक बार एक सियाल को कहीं पर एक मरा हुआ हाथी मिल गया। उसने सोचा अच्छा आहार मिल गया। एक माह तक खाऊँगा। इधर शेर ने भी देखा तो सोचा कि मैं खाऊँगा इसे। अब सियाल ने सोचा कि सिंह ताकतवर है और जंगल का राजा होने से उत्तम भी है। इसे जीता नहीं जा सकता अतः बड़े व्यक्ति से विनय से काम लेना। उसने कहा–" सिंहराज ? आप तो वन के राजा हैं, हम आपकी प्रजा हैं। आप इसे ग्रहण कर सकते हैं पर मैंने सुना है–" सिंह दूसरों का शिकार नहीं खाता वह तो स्वयं अपने द्वारा किये शिकार से क्षुधा शान्त करता है।" जब सिंह ने यह सुना तो सिंह ने सोचा कि–वास्तव में मैं इसे कैसे खा सकता हूँ। दूसरों का शिकार खाने से तो मेरा अपमान होगा। अतः चला गया। इधर से थोड़ी देर में एक चीता आया उसने कहा– मैं खाऊँगा इस हाथी को। तब सियाल ने सोचा इससे भी झगड़ा नहीं कर सकता क्योंकि यह भी ताकतवर है मुझे पछाड़ सकता है। सियाल ने कहा– भले ही आप इसे खायें पर बात यह है कि अभी–अभी इधर से जो सिंह राज गये हैं, यह शिकार उन्हीं का है। वे मुझे निगरानी पर छोड़ गये हैं। उसने देखा कि वास्तव में वहाँ सिंह के पैरों के निशान है। बिचारा वह भी चुपचाप चल दिया क्योंकि सिंह का शिकार खाना भारी पड़ सकता है। वह ताकतवर है। वह चीते को मार सकता है। समुद्र में रहना और मगरमच्छ से वैर ठीक नहीं। अर्थात् जंगल में रहना और शेर से बैर करना ठीक नहीं। इधर दूसरा सियाल आया तो सोचा यह तो मेरे बराबर का है। इससे तो झगड़ा करके काम बन सकता है। उसने उसे ललकारा एक दो लात मारी और भगा दिया। इधर 2–4 कौए कांव–कांव करते आए। सियाल सोचने लगा ये नीच जाति के तुच्छ हैं। यदि भगाता हूं तो कांव–कांव करके 25–30 और इकट्ठे कर देगें। उन्हें भगाने के लिए उनके सामने मांस का एक टुकड़ा फैंका। कौए उस पर झपटे। खाकर चले गए। इस प्रकार सियाल ने हाथी का पूरा का पूरा मांस बचा लिया। यह एक नीति की कथा है।

हर व्यक्ति के सामने ज्यादातर चार तरह के व्यक्ति आते हैं– उत्तम कौन ? दुनियाँ में उत्तम दो व्यक्ति विशेष होते हैं– गुरु और माता–पिता। जिनकी शक्ति महान् है ऐसे गुरु की छत्र छाया में हमारा जीवन ऊँचा उठ सकता है। ऐसे गुरु को हम कैसे खुश रख सकते हैं ? क्या जबर्दस्ती हाथ

पकड़कर खींच लें ? महाराज मारे घरे क्यूँ नी आया ? आप मारे घरे नी आवो तो मैं भी आपरे स्थानक नी आवां। क्या इस प्रकार गुरु को खुश कर सकते हैं ? यह तरीका नहीं है। कभी–कभी यहाँ प्रशंसा करते है और गली–कूचे में जाकर बातें करते हैं या घरों में जाकर बातें करते हैं तो भी देर सवेर यहाँ बात आ ही जाती है। गुरु के पास पहुँच ही जाती है। यदि आप में हिम्मत है तो गुरु के पास आकर भले ही सभा में पूछिये। जो आपका दिमाग कहता है। जो आपको सही लगे वही करिये। पर सम्यक् सोच बनाइये। गुरु के साथ किया गया विनय समूचे जीवन को सफल बनाने वाला होता है।

दूसरे उत्तम है माता–पिता। उन उत्तम व्यक्ति के साथ कैसे व्यवहार कर रहे हैं ? क्या जबर्दस्ती पटक–पटक कर सेवा कर रहे हैं। या तहेदिल से सेवा कर रहे हैं ? कितने श्रवण कुमार हैं। श्रवण कुमार एक ही हुआ दूसरे का नाम नहीं आया कि दुनियाँ में यह भी श्रवण कुमार है। याद रखिये माता–पिता की सेवा के बिना आपने कितने ही बड़े बंगले बना लिये हैं। किन्तु वे आपको शान्ति देने वाले नहीं होंगे। शान्ति देने वाले बंगले की नींव आपके माता–पिता की आत्म शान्ति पर ही टिकी हुई है। अतः जरा इन दोनों उत्तम पुरुषों को समझें और सोचे हमारा उनके साथ कैसा व्यवहार चल रहा है ? उदाहरण में दूसरे व्यक्ति के रूप में चीता बतलाया है जो ताकतवर तो है पर उत्तम नहीं। ऐसे दुनियाँ में कौन हो सकते हैं। वह है प्रशासकीय विभाग। अफसर, पुलिस, मंत्री चपरासी आदि जिनके हाथ में सरकारी सत्ता हो, वे उत्तम तो नहीं पर ताकतवर जरूर होते हैं। ऐसे लोगों के साथ भेद नीति से काम लेने की बात नीतिकार ने बतलाई है।

तीसरे वर्ग में आते हैं बराबर के व्यक्ति। जैसे उस सियाल के पास सियाल आया। उसका सामना करने से पहले उसकी स्थिति को, उसकी शक्ति को हम तौले। समझें, परखें, फिर ऐसे व्यक्ति का सामना करे। ताकि हम उसे अपने पुरुषार्थ से जीत सकें। ऐसे व्यक्ति यदि सामने आते हैं। व्यापार व्यवसाय आदि अनेक स्थानों में आप उन्हें पहचानें। यदि ऐसा व्यक्ति कुछ आना–कानी करता है तो उचित जबाब दिया जा सकता है। येनकेन प्रकारेण उससे अपना बचाव कर सकते हैं अपनी रक्षा कर लें। जैसे उस सियाल ने दूसरे सियाल को देखकर कहा–चल हट ! तूं कौन होता है उस हाथी के कलेवर को खाने वाला ? इस पर मेरा अधिकार हैं इसलिये लड़ना किससे चाहिये ? बराबर वालों से। समान शक्ति वालों से। पर लड़ने के लिए भी द्रव्य, क्षेत्र, .काल, भाव समझना जरूरी है। अहिंसक लड़ाई हो।

चौथा नम्बर आता है ऐसे व्यक्तियों का जो हमारे से नीचे हो। ऐसे व्यक्ति होते हैं टेम्पो, टेक्सी वाले, आटो रिक्शा वाले, पान वाले, दूध वाले, नौकर–चाकर आदि। ऐसे व्यक्ति भी आपके जीवन में बहुत बार आते हैं। अनेक बार उनसे काम पड़ता है। यदि टेम्पो वाला कहे कि 10 रुपये लूंगा यदि बिना ठहराए टेम्पो में बैठ गए। गन्तव्य स्थान पर पहुँच गए। तब 8 रुपये दो और वह कहे दस लूंगा तब उससे लड़ाई होती है। तूं तूं मैं मैं होती है तो झगड़ने की अपेक्षा 10 रुपये दे दीजिये। अन्यथा यदि झगड़े में उसने आपको अपशब्द कह दिया, या मार दिया तो इज्जत आपकी जायेगी। वह तो रोड़ छाप है पर आप तो ऊँचे हैं। विवेक से काम लीजिये। इसी तरह दूध वाले, पान वाले से उधार न करें। यदि हिसाब बराबर नहीं रहा और वह झगड़ पड़ा तो इज्जत आपकी जाएगी। इसी तरह नौकर चाकर आदि जो भी आपके स्तर से नीचे के लोग हैं उनसे झगड़ना उचित नहीं। बस जैसे– सियाल ने कौए को कुछ दे दिया वैसे ले देकर झगड़ा निपटा दीजिये। तभी उचित रहेगा। यथायोग्य व्यवहार अपनाने से जिन्दगी जीना आने लगता है। इसे समझने के लिए नीति का एक श्लोक है–

उत्तमं प्रणिपातेन, तुल्यं स्वस्य पराक्रमै,
नीचे स्वल्प प्रदानेन, शूरं भेदेन योजेयेत–

उत्तम व्यक्ति से झुककर, ताकतवर व्यक्ति से भेद नीति से और बराबर के व्यक्ति से सामना करके और निम्न व्यक्ति को कुछ देकर झगड़ा समाप्त कर दिया जाय।

जिन्दगी की सही कला समझने का प्रयास करें। बहुत सी बातें हैं। कुछ ही बातें आपको समझाने का प्रयास किया जा रहा है।

अन्त में एक बात बता दूँ कि कई बार लोग यह सोचते हैं कि लोग क्या कहेंगे ? इसलिए ऐसा वैसा करो और उस स्थिति में घर फूंककर हंसी के पात्र बन जाते हैं। जैसे–पैसा इतना है नहीं पर लोगों के दिखावें के चक्कर में बेटी की शादी में ज्यादा खर्च कर दिया। या माता–पिता का बड़ा मृत्युभोज कर दिया। या ऐसा ही कुछ और कर गुजरे। जिससे आपकी घरेलू व्यवस्था चरमरा गई। कई बार उन अभावपूर्ण व्यवस्थाओं से जिन्दगी भर सामना करना पड़ता है। अतः इन्सान को चाहिये कि वह दुनियाँ के चक्कर में नहीं पड़कर जो उसकी व्यवस्था के अनुकूल हो, सही हो, वह करे।

इसके लिए एक बात किंवदन्ती बतलाते हैं कि एक बार शिव–पार्वती दुनियाँ को यह बात समझाने दुनियाँ में आए। उनके पास एक खच्चर था। उस पर शिव जी बैठ गए। पार्वती पैदल चल रही थी। लोगों ने देखा और बोल पड़े यह कैसा निष्ठुर आदमी है जो खुद सवारी पर बैठा और बिचारी पत्नी को पैदल चला रहा है। कुछ समझ नहीं है इसमें। शिव जी ने सुना, सोचा ठीक कहता है यह। वे उतरे और पार्वती को बिठा दिया। आगे बढ़े तो आगे आने वाले ने पार्वती को सवारी करते देखा तो कहा– कैसा घोर कलियुग आया है, पति को तो नौकर की तरह चला रखा है और खुद मालकिन की तरह सवारी कर रही है। जबकि पुराने जमाने में तो औरतें पति को परमेश्वर मानकर सेवा करती थी। पार्वती ने सुना उसे बात ठीक लगी। तब दोनों उस खच्चर पर बैठ गए। आगे बढ़े तो फिर वही हाल। लोगों ने कहा–घोर कलयुग आ गया– बेचारे पशु पर तो दया ही नहीं है। दोनों के दोनों डाकी चढ़ बैठे उस पर। मारेंगे इस को। शिव–पार्वती ने सुना, ठीक लगी बात। तब उतरकर दोनों पैदल चलने लगे। आगे बढ़े लोगों ने देखा तो बोल पड़े। दुनियाँ में मूर्खों की भी कोई कमी नहीं हैं देखो कैसे लोग हैं। सवारी है फिर भी पैदल चल रहे हैं। शिव–पार्वती ने सोचा आखिर क्या करें। तब उन्हें लगा कि क्यों न खच्चर पर दया कर इसे उठा लें। दोनों ने पकड़कर उसे उठा लिया और चलते हुए नदी का पुल पार कर रहे थे। नदी में नहाते लोगों ने देखा और तालियां बजाकर जोर–जोर से हंसते हुए बोले– वाह ! क्या महामूर्ख पैदा हुए हैं। देखो–देखो सवारी को भी उठाकर चल रहे हैं। उनके चिल्लाने से खच्चर चमका और उछल कर नदी में चला गया। किसी काम का नहीं रहा। इस प्रकार दुनियाँ सतरंगी है। दुनियाँ की बातों पर चलने वाला व्यक्ति जी नहीं सकता। सही ढंग से जीने के लिए दुनियाँ क्या कहती है। इसे मत देखिये, आपको क्या करना है वह देखिये। तभी जीने की कला आ सकेंगी। मारवाड़ी में कहावत है– "अपना काम बनता हो तो लोग हंसे तो हंसने दो।" यदि अपना काम सही चल रहा है, वह ज्यादा उचित है।

भगवान महावीर के सिद्धान्तानुसार सम व्यवहार के साथ आगे बढ़ने वाला जिन्दगी जीने की सच्ची कला पा लेता है।



पहले तोलो : फिर बोलो

दिल में तोल–तोलकर बोल वचन अनमोल।
खोल मृदुवाणी जिससे सुधरेगी जिन्दगाणी।।टेर।।
तलवार के मिट जाए झटके, नहीं मिटे वचन जो हिय खटके।
दिस चीर चीर कर रहे हरा बिन पानी। जिससे...........।
हे वचन वचन में भेद बड़ा, एक वचन करे नूतन झगड़ा।
एक वचन है अमृत घूंट सरस रस पानी।। जिससे............।
झूठी भाषा का पाप तजो और मर्म वचन संलाप तजो।
कौरव पांडव के युद्ध की जड़ पहचानी। जिससे.................।
वाणी अमृत का स्त्रोत बहे, सुनने वाले का हृदय चहे।
बोल यह वाणी सुमधुर कल्याणी। जिससे.....................।

जिन्दगी को सुधारने या बिगाड़ने के लिए दुनियाँ का कोई दूसरा इन्सान जिम्मेवार नहीं होता। उससे अधिक जिम्मेवार व्यक्ति स्वयं होता है। क्योंकि प्रभु ने किसी भी कार्य के बनने और बिगड़ने में दो मुख्य कारणों की मीमांसा की है। एक निमित्त व दूसरा उपादान। निमित्त कारण बाहरी होता है और उपादान भीतर। अन्दर में निमित्त को इतना महत्त्व नहीं दिया उतना उपादान को दिया गया है। क्योंकि जब तक उपादान सही न हो बाहरी कितने ही निमित्त मिल जाय, उससे कार्य सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे बड़े घराने में पैदा हुआ व्यक्ति जिसके पास खाना–पीना, ओढ़ना–बिछाना सब साधन उसके पास होने के बावजूद भी वह पूरा पढ़ नहीं पाता। पढ़ाने के लिए अच्छे से अच्छे टीचर लगाये जा रहे हैं। फिर भी कठिनाई। क्या कारण है कि बाहरी निमित्तों के एकत्र होने पर भी सफलता नहीं मिल पा रही है ? बहुत बार तो बच्चा मेहनत भी करता है। ऐसा नहीं है कि नींद ले रहा है। पूरी मेहनत के बाद भी पढ़ नहीं पा रहा है। सारे बाहरी कारण मौजूद होने पर भी कुछ ऐसी डिफीकल्टी (समस्या) है जिससे वह पढ़ नहीं पा रहा है। उस समस्या को ही तीर्थंकर देवों ने उपादान कारण कहा है। आप देखते हैं बड़ा इण्टेलीजेण्ट (Intelligent) व्यक्ति व्यापार कर रहा है। कोई गड़बड़ नहीं, तो भी भारी नुकसान लग जाता है। ऐसे एक नहीं अनेकों उदाहरण मिल जायेंगे, क्यों ?

क्योंकि भीतरी कारण सही नहीं है। उसे कहते हैं उपादान कारण। खाद–पानी सब कुछ सही है फिर भी बीज अंकुरित नहीं हो रहा है, बाहर नहीं आ रहा है। हम समझेंगे कि कहीं बीज में ही गड़बड़ है। सारे साधन अनुकूल है पर बीज क्यों नहीं बाहर आ रहा है। बीज में ही गड़बड़ है तो सारा जहान एकत्र हो जाय तो भी वह अंकुरित नहीं होगा। वैसे ही व्यक्ति के भीतर में ही अगर गड़बड़ है और सारा जहान सहयोग कर दे तो भी व्यक्ति ऊपर नहीं उठ पाता। यदि उपादान सही है तो सारा जहान असहयोग करे तो भी लक्ष्य प्राप्त कर लेता है। विश्व पटल पर ऐसे एक नहीं अनेकों उदाहरण मिल जायेंगे जो इस बात को सिद्ध करते हैं। इस बात को बतलाते हैं अत: यह बात प्रमाणित होती है कि जिन्दगी को सुधारना बिगाड़ना दोनों के जिम्मेवार हम हैं। जो बाहरी कारणों के पीछे भाग रहा है, उससे उत्पीड़न पैदा हो रही है। उसे सहयोग नहीं मिला तो पीड़ा पैदा हो रही है। सहयोग मिला तो प्रसन्न हो रहा है। ये दोनों रागद्वेष की परिणितियाँ है। महावीर कहते हैं– दोनों गलत है। तुम स्वयं भीतर को खोजो तो सही मार्ग पर बढ़ पाओगे। यदि स्वयं का व्यवहार गलत बनाया तो दुनियाँ से जुड़ने पर भी भटक जाओगे।

एक व्यक्ति ने सोचा दुनियाँ के बीच जीना है। जीने के लिए मकान चाहिये। इधर–उधर से भागदौड़ कर जमीन व पैसा इकट्ठा किया और मकान बना लिया। फिर सोचता है। मेरा मकान यही है। मुझे इस मकान से मतलब है। वह मकान में भी उछलता जाता है। खोजता है– मकान में भी मेरा कमरा कौनसा है ? बेडरूम कौनसा है– मकान में भी महत्त्वपूर्ण जगह बेडरूम बन गया। उसमें भी सोचता है मेरी आलमारी कहाँ है ? क्योंकि उसमें भी अकेला नहीं दो घुस गए तो दो में एक चाहिये। एक कपाट। आलमारी के लॉकर में भी लॉकर होता है। ऐसी आलमारी देखी हमने जिसमें लॉकर में भी लॉकर होता है। वह सोचता है यह लॉकर मेरा है। उसमें खास चीज लॉकर के रखता है। इस सारी दुनियाँ में उसने अपने को कमरे में, आलमारी में और उसमें भी लॉकर में कैद कर लिया। शार्ट में भी शाट।। अब सोचता हैं दुनियाँ में आग लगे मुझे मतलब नहीं। मुझे मतलब है अपने मकान से, अपने बेडरूम से। यदि आलमारी में भी आग लग रही है तो बस खास चीज निकाल लूं इतना ही मतलब है।

कभी परिवार में कोई सदस्य मर जाता है और यदि यह शंका हो कि इसके ल़ॉकर में माल है तो पहले घर वाले उसकी संभाल नहीं लेते, लॉक़र

संभालते हैं। सोचते है इनका स्विस बैंक में पैसा कितना है ? उनका कोड नं. क्या है ? आदमी के मरने की परवाह नहीं, परवाह है धन की, उसे संभाल कर रखूं।

लेकिन सोचने वाली बात यह है कि छोटे लॉकर को बचाना है तो बड़ा लाकर उससे अलग नहीं है। लॉकर से कमरा और मकान अलग नहीं है और मकान को बचाना है तो दिवार के फाउण्डेशन को बचाना जरूरी है। यदि पास का कमरा जल गया तो अपने कमरे को खतरा है। इसी तरह अपने मकान को बचाने के लिए पास वाले के मकान को बचाना जरूरी है। ऐसे ही जमीन की रक्षा के लिए अन्य की रक्षा करना एक दृष्टि से अपनी रक्षा करना है। अतः दुनियाँ की रक्षा करना जरूरी है। संक्षिप्त में कहा जाय तो स्वार्थ की रक्षा के लिए परमार्थ की रक्षा जरूरी है। भगवान महावीर कहते हैं आत्मा की रक्षा करनी जरूरी है, कई बार लोग इसका उलटा अर्थ लेते हैं। यह बात सही है– आत्मा की रक्षा करनी है।

आज आदमी ने स्वार्थ का गलत अर्थ ले लिया है। बात सही है कि स्वार्थ से ही परमार्थ की सिद्धि होती है। पर आज इसका संकुचित अर्थ कर लिया है। जो व्यक्ति सोचता है कि मेरे ही लॉकर की रक्षा करनी है वह व्यक्ति भी अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं कर सकता। स्वार्थ की सिद्धि के लिए दुनियाँ की रक्षा करना जरूरी है। अगर दुनियाँ की रक्षा करली तो स्वार्थ की रक्षा हो जायेगी।

आज सोचते हैं मुझे अपनी रक्षा करनी है। घर वाले मरे तो मरे। तो सब में स्वार्थ की भावना है। जिससे एक दूसरे का भक्षण हो रहा है, शान्ति की अनुभूति नहीं हो पा रही है। स्वार्थ सिद्धि में लगे हैं तो शान्ति मिलेगी कैसे ? आप ट्रेन यात्रा करते हुए सोचें मेरी सीट महत्त्वपूर्ण है। लेकिन उसके आसपास और सीटें भी महत्त्वपूर्ण है।

इन सबको आपको मानना पड़ेगा। आप सोचें मुझे क्या लेना देना। पड़ौसी की सीट वाला मरे तो मरे तो काम नहीं चलेगा। ड्राइवर तक हम जुडेंगे तभी हमारी सीट आगे चलेगी। पर लोगों में यह धारणा बन गई है कि हमें अपनी सीट से मतलब है। यदि यह सोच रहेगी तो उनकी गन्तव्य स्थान तक यात्रा नहीं हो सकेगी। वे वहीं के वहीं रहेंगे।

अरब कन्ट्री (Country) में बगदाद का एक बादशाह बीमार हो गया। साइक्लोजिकल (Psychological) वैद्य ने सारी बातें सुनी, वह बोला–

बादशाह ठीक हो सकता है पर एक शर्त है ? तब पूछने पर बताया कि 10 हजार बच्चों के खून से बादशाह को स्नान करवाया जाय तो बादशाह ठीक होगा ? एक बार तो सुनते ही सारा मंत्री मण्डल और अन्तःपुर घबराया। आपातकालीन बैठक में निर्णय लिया गया कि 10 हजार बच्चों की जिन्दगी से राजा की जिन्दगी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। अतः निर्णय के अनुसार छोटे–छोटे बच्चों को पकड़ा जाने लगा। सभी लोग अपने बच्चों को छुपाने लगे पर राजा की आज्ञा से कोई बच नहीं पाता। खींच–खींच कर बच्चों को घरों से बाहर लाने लगे। पूरे शहर में त्राहिमाम्–त्राहिमाम् होने लगा।

बादशाह को जब यह मालूम हुआ तो 10 हजार बच्चों के खून की कल्पना से ही उनकी आत्मा कांप उठी। इस तरह का घमासान होगा तो क्या होगा ? पर मंत्रीमण्डल मान नहीं रहा था। 5–7 दिन में व्यवस्था हो गई। कल उन 10 हजार बच्चों का कत्ल होगा। बादशाह को स्नान कराने के लिए। अब 10 हजार तो बच्चे और 10 हजार मां–बाप अन्य परिजन लगभग 30 हजार लोगों में त्राहिमाम्–त्राहिमाम् होने लगा। लोग सोचने लगे– यह कैसा क्रूर राजा जो ऐसा घमासान कर रहा है। इधर राजा की आत्मा भी कंपित हो रही थी। एक जीव के पीछे कितनों का कत्ल, कितनों की आत्मा दुःखी होगी और मुझे इतने लोगों की बददुआ जो लगेगी। क्या इन लोगों की बददुआ से, इतने लोगों को दुःखी व पीड़ित करके मैं अमर हो जाऊँगा ? आखिर तो मरना ही है फिर यह सब क्यों ? बादशाह ने निश्चिय किया कि ऐसी जिन्दगी से मौत अच्छी है। वह आदेश करता है कि ऐसे बच्चों के खून से स्नान करने के बजाय मुझे मरना मंजूर है। मैं कभी ऐसा क्रूर काम नहीं करूँगा। एकदम सख्त आदेश दिया– सुन लो, मैं ऐसा काम नहीं कर सकता। रानियाँ मंत्री सब परेशान हो गये, यह क्या ? किन्तु बादशाह समझने को तैयार नहीं। सभी को मुक्त कर दिया गया।

जो लोग कुछ क्षण पूर्व राजा के प्रति आक्रोश के भाव लिये थे वे सब राजा के दीर्घायु होने की कामना करने लगे और एक चमत्कार घटित हुआ। असाध्य समझी जाने वाली बीमारी से ग्रस्त राजा ठीक हो गया क्योंकि 10 हजार बच्चों का क्रन्दन उसे देखा नहीं जाता। बार–बार उसकी आँखों के सामने बच्चे आने लगे। वह भूल गया अपनी बीमारी को दिमाग डाइवर्ट हो गया। इधर 10 हजार बच्चों के छूटने से उनकी शुभ भावना का भी चमत्कार रहा कि राजा स्वस्थ हो गया। जबकि 10 हजार बच्चों की हाय से स्वस्थ

होता या नहीं, जरूरी नहीं था। अतः कई लोग यह कहने लगे कि अगर मंत्री के कहने से बच्चों को मार देते तो क्या होता। अब एक दूसरे की गलती निकालने लगे। जब कोई पार्टनर (Partner) होता है तब नुकसान होने पर इसे तूने किया और वह कहता है मैंने नहीं तूने किया तो इस प्रकार तूं–तूं मैं–मैं करने से नुकसान तो होता ही है परस्पर वैमनस्य भी बढ़ता है। यदि साथ चलना है तो यह मानकर चलना होगा तेरी गलती है वह मेरी है और मेरी कमी है वह तेरी कमी है। तभी वह एक छत के नीचे जी सकता है। नहीं तो घर–घर में पल–पल पर लड़ाई होती चली जाती है। परिवार बिखरते–बिखरते चले जाते हैं। अतः हम अपने जीवन में यह चिन्तन करें कि हम एक दूसरे का सहयोग करें व एक दूसरे की गलती को अपनी गलती समझें।

लोग सब मंत्री से लड़ने लगे। तूने राजा को ऐसा ऐसा करने का क्यों कहा ? मंत्रीं वैद्य से लड़ने लगा। मैं क्या करता मुझे इस वैद्य ने ऐसा कहा था और राजा को स्वस्थ करना जरूरी था। वह वैद्य पर दोष ठहराने लगा। वैद्य ने भी यह सुना वह तो पहले से ही तैयार था। उसने कहा– मैंने आपकी साइक्लोजिकल स्थिति को समझ लिया। मैंने सोचा आपके दिमाग को डाइवर्ट करना जरूरी है अन्यथा आप स्वस्थ नहीं हो सकते। इसलिए मैंने यह कार्य किया। कभी–कभी ऐसा होता है, व्यक्ति के स्वास्थ्य की अपेक्षा साइक्लोजिक स्थिति को समझना ज्यादा जरूरी है। आप यह कार्य होने नहीं देंगे पर इससे आपका दिमाग डाइवर्ट हो जायेगा और आप स्वस्थ हो जायेंगे।

बड़े लोगों को ठीक करना हो तो खुद बीमार पड़ जाओ। मां को ठीक करना है तो बेटा बीमार पड़ जाये। वह बेटे के दुःख को सहन नहीं कर पाएगी। वह उठकर काम करने लग जायेंगी। यह एक साइक्लोजिकल स्थिति है। वैसे ही यदि बहू को बीमार करना है तो सास को बीमार होना पड़ेगा। सास बीमार होगी तो बहू पहले ही बीमार हो जायेगी। वह पहले बिस्तर पकड़ेगी। यह एक मानसिकता है। यह सब एक अपेक्षा से कथन है।

वैद्य ने कहा– आप करुणालू हैं। 10 हजार बच्चों को मार नहीं सकते। हुआ भी यही। ज्यों–ज्यों प्रशासन द्वारा बच्चे एकत्रित किए जाने लगे। त्यों–त्यों शहर में हाहाकार मचने लगा। न्यायवान बादशाह का मन भी दहलने लगा। वह नहीं चाहता था कि उसके लिए 10 हजार बच्चों की हत्या हो पर प्रशासन का भारी दबाव था। पर यह हाहाकार उसकी सहनशक्ति से बाहर हुआ तो उसने सारे बच्चों को छुड़ा दिया। व्यक्ति भीतर से स्वस्थ हो

जाय तो यह बाहरी स्वस्थता भी आ जाती है। दुनियाँ को ठीक करने से पहले अपने मन, वचन, काया को ठीक करना बहुत जरूरी है। जब तक स्वयं के मन वचन काया को ठीक नहीं करता तब तक बाहरी दुनियाँ को ठीक करने से कोई फायदा नहीं। आज के लोग दुनियाँ की बात करने कराने वाले बहुत मिल जायेंगे। पर आत्मा की खोज करने वाले, आत्मा की जानकारी करने वाले बहुत कम मिलेंगे। अतः महावीर ने कहा– तू पहले अपने आप की खोजकर अपने आप को ठीक कर, अपने को ठीक कर लिया तो सर्वश्रेष्ठ है। दुनियां को ठीक करने वाले बहुत मिल जायेंगे। दुनियाँ का इलाज करने वाले बहुत है।

सुज्ञ बन्धुओं मैं आपको बतला रहा था कि हम कैसे संवर सकते हैं और कैसे बिगड़ सकते हैं। इसके लिए जो हमारी बाहरी दौड़ चल रही है इस दौड़ को बदलने से पहले आन्तरिक व्यवस्था को सही करें। आपके इन्कम–टेक्स की फाइल गड़बड़ चल रही है यह बात चेकिंग अधिकारी को पता चल जाय और वह आपके ऑफिस में आया तो आप उसे क्या कहेंगे ? आप कहते हैं थोड़ा भीतर चलिये और भीतर ले जाकर उसे चाय, नाश्ता करवाकर कुछ दे ले कर सन्तुष्ट कर दिया। अब वह आपकी बाहरी फ़ाइलें भी सही कर देता है। अतः बाहर को सही करने के लिए भीतर को सही करना सबसे ज्यादा जरूरी है। जरा हम भीतरी व्यवस्था को ठीक करें। कई बार लोग कहते हैं सब कुछ ठीक है पर वाहन नहीं चल रहा है। गड़बड़ कहाँ है ? तो इसमें आवश्यक है भीतर को सुधारना। इसके लिए स्वाध्याय करना जरूरी है वह आटोमैटिक (Automatic) भीतर को सही करता चला जायेगा। आपको पता भी नहीं चलेगा। जैसे– बादशाह को पता नहीं चला मेरा इलाज किससे होने वाला है। वैसे ही बाहर को ठीक करने के लिए पहले भीतर को मोड़ना जरूरी है। यदि बाहर में वाहन गड़बड़ कर रहा है तो पहिये को ठीक करने की जरूरत नहीं है। पहले उसके इंजिन को ठीक करो। इंजिन को ठीक करना बहुत जरूरी है। जब इंजिन में गड़बड़ नहीं है तो वाहन सही चलेगा। अतः पहले हम अपने भीतर पर कन्ट्रोल करें। यदि मन का कन्ट्रोल सही है तो बाहर का कन्ट्रोल अपने आप सही हो जायेगा। कई व्यक्ति पूछते हैं कि मन को वश में कैसे किया जाय तो अलग–अलग व्यक्तियों ने अलग–अलग परिभाषाएं दी है। पूज्य गुरुदेव फरमाते हैं कि मन का निरोध भी न हो विरोध भी न हो किन्तु मन का संशोधन हो।

एक बार किसी ने गांधी जी को निन्दा भरा पत्र लिखा। कई गालियों से वह पत्र भरा था। गांधी जी ने उस पत्र पर सरसरी दृष्टि डाली और उस कागज में से आलपीन निकाल ली। पी.ए. ने पूछा यह क्या पढ़ तो लीजिये। वे बोले मैंने इसमें से सारभूत चीज निकाल ली बाकी कचरे की पेटी में डाल दी है।

बीकानेर से पूज्य गुरुदेव का विहार होने को था तो एक व्यक्ति कुछ ज्योतिष के पन्ने लेकर आया, बोला– गुरुदेव का यहाँ से विहार करना ठीक नहीं। मैंने कहा –क्यों ? तो उसने बताया–ज्योतिष में यह बतलाया है, यह ऐसा है वह वैसा है। गुरुदेव को भी उन्होंने बतलाया है पर मुझे पता था कि गुरुदेव इन बातों पर विश्वास करने वाले है नहीं। तब गुरुदेव ने कह दिया कि ज्ञानमुनि जी को बता दें। वह मेरे पास आया। पन्ने बताने लगा, मैंने एक दो पन्ने देखे, उसका सार निकाल लिया कि यह कहना क्या चाहता है ? मैंने उससे कहा मैं इन बातों पर विश्वास नहीं करता हूँ। वह पुनः बोला– इसे पढ़ तो लीजिये। मैंने कहा–नहीं पढ़ना है। मैं जानता हूं इससे होना जाना कुछ नहीं है और होगा भी नहीं पर मेरी साइकोलाजी जरूर आज ही से खराब हो जाने वाली है। फिर कभी गुरुदेव को बुखार भी आ गया तो ऐसा करने से ऐसा हुआ यह भय बना रहेगा। जबकि विहार करना या न करना गुरुदेव की इच्छा पर निर्भर है।

आखिर गुरुदेव ने विहार कर दिया। आराम से ब्यावर तक पधार भी गए। जबकि बीकानेर में हालत यह थी कि गुरुदेव पाटे से नीचे उतरते तो भी सहारे की जरूरत पड़ती।

वह सारी समीक्षा मैं करने लगूं तो बहुत समय निकल जायेगा। खैर मैं यह बता रहा था कि ज्योतिष ज्यादा जरूरी नहीं जितने व्यक्ति के विचार जरूरी हैं। हमें बाहरी ज्योतिषी को नहीं अपने विचारों को परिवर्तन करना है। हमें बाहरी कन्ट्रोल नहीं भीतरी कन्ट्रोल, मन के विचारों का कन्ट्रोल करना है, मन का विरोध, निरोध नहीं करना; किन्तु संशोधन करना है। हम व्यवस्थाओं को समझने की कोशिश करें। अपने उपादान को सही करने की कोशिश करें। यदि कन्ट्रोल भीतर का सही नहीं होता तो फाल्ट होना शुरू हो जायेंगे। गीतिका की पंक्तियों में बताया है–

दिल में तौल–तौल कर बोल वचन अनमोल,
खोल मृदुवाणी, जिससे सुधरेगी जिन्दगानी।।

एक बार बादशाह और शाहजादा दोनों नदी में स्नान कर रहे थे। दोनों ने अपने कपड़े उतारकर बीरबल को दे दिये। वह विचार करने लगा यह क्या ? फिर सोचा नौकर तो नौकर ही है चाहे बादशाह के नौकर हो या शाहजादा के। नौकर तो छोटा होता है चाहे वह वजीर ही क्यों न हो।

इधर जब दोनों नहाकर बाहर निकले तो देखा बीरबल के पास इतना सामान है। दो जोड़ा वस्त्र जो थे। शाहजादा ने मसकरी करते हुए व्यंग्य में कहा– " क्यों एक गधे का भार तो हो गया होगा।"

बीरबल बोला– जी एक नहीं दो गधों का है। उसने भी व्यंग्य में जबाब दिया। सुनकर बादशाह भी शर्मिन्दा हो गया।

जब कन्ट्रोल (Control) सही नहीं हो तो फाल्ट (Fault) होना शुरू हो जायेगा। उसे पता ही नहीं कहाँ बोलना, क्या बोलना, कितना बोलना, कब बोलना। यह ज्ञान नहीं हो तो फाल्ट होना शुरू हो जाता हैं। इसलिए मैं कहता हूँ जितनी ज्यादा जरूरत नहीं है बोलने की, उतनी जरूरत है सोचने की जितनी ज्यादा खाने की जरूरत नहीं उतनी ज्यादा आवश्यकता है घूमने–फिरने की। अच्छे स्वास्थ्य के लिए घूमने की जरूरत है वैसे ही जरूरत है संस्कारों को बदलने की, टेन्शन मुक्त होने की। जब तब व्यक्ति के विचारों का संशोधन नहीं होगा तो जीवन में कई जगह फाल्ट होने शुरू हो जायेंगे। सुना होगा अभी–अभी आपने स्तवन में तोलकर बोलें। पर होता क्या है ? व्यक्ति को पचाना बड़ा मुश्किल है। यदि यह कह दिया जाय कि– " या बात थनें ही की है और कीने ही नी की, तूं ध्यान राखजे, कीने ही मत कीजे" तो वह पचा नहीं सकता, अवश्य 1–2 लोगों को बात कहेगा ही कहेगा। मारवाड़ी में कहावत है– "रोटी पेट में टिक जावे पण बात नी टिके।" कभी–कभी आपने देखा होगा जो अखबार पहले पढ़ता है तो कोई भी न्यूज हो, जो कि आश्चर्यकारी है पहले वह 10–20 जनों को नहीं बतायेगा तब तक उसे चैन नहीं मिलेगा। चाहे वह दुर्घटना या एक्सीडेंट की घटना ही हो। वह सबसे पहले ब्रोड़ कास्टिंग करेगा। सब ऐसे नहीं होते पर अधिकांश ऐसे होते हैं। जिसमें स्त्रियों के लिए तो कहा ही जाता है। आप सब को पता है। नीतिकारों ने कहा हैं–

"स्त्रीषु गुह्यं न वक्तव्यं, प्राण कण्ठगतैरपि"

अर्थात् चाहे प्राण कण्ठ में भी आ जाये तो भी स्त्री को गुप्त बात नहीं कहनी चाहिये। वह बात को नहीं पचा सकती। सभी के लिए यह बात नहीं है। कई औरतें गंभीर भी होती हैं।

एक राजा ने अपने बाल काटने के लिये नाई को महल में बुलवाया। उसे अन्दर से अन्दर कमरे में ले गया। बाहर नंगी तलवार लिये पहरेदार खड़े थे। अन्दर से द्वार बन्द कर दियां। उस राजा के कान बकरे जैसे थे। राजा ने उसे कहा (कानों के विषय में) किसी को मत कहना और एक स्वर्ण मोहर दी। किस बात की ? बाल कटवाने की नहीं। बात को पचाने की। मोहर लेकर घर गया। मन में वह बात घूम रही थी। स्त्री से कहने लगा उसे नीति की वह उक्ति याद आ गई।

"स्त्रीषु गुह्यं न वक्तव्यं, प्राण कण्ठ गतैरपि"

और उसने बात बदल दी। पत्नी ने जिद्द की बताने की। नाई बोला– राजा को बाल काटने में इतना खुश किया कि उसने एक मोहर दे दी। तो स्त्री कहने लगी, यह बात बताने में इतनी आना–कानी क्यों कर रहे थे ? अरे ! मैं तो इसलिये ना कर रहा था कि तूं देखेगी तो गहने वगैरह मांगेगी। वह भी सोचने लगी हकीकत में मेरे बहुत गहने बन जायेंगे। पीला–पीला (सिक्का) देखकर वह खुश हो गई नाई ने सोचा जान बच गई। वह खाना खाता है पर बात पच नहीं रही है। बार–बार उसके दिमाग में बात घूम रही है– राजा के कान बकरे जैसे राजा के कान बकरे जैसे। उस रात को नींद नहीं आई। बाजार में भी गया पर किसे कहूं। किसी ने राजा से कह दिया तो मौत। उसे बात पच नहीं रही थी। वह जंगल में गया तो उसने देखा, एक वृक्ष जिसमें खोखल है, वहाँ कोई नहीं देख रहा था। वह उस खोखल में मुंह डाल कर जोर–जोर से बोलने लगा। राजा के कान बकरे जैसे राजा के कान बकरे जैसे। बस उसका मन हल्का हो गया। अब जब भी उसके पेट में आफरा आता तब दो–चार दिन में वहाँ वृक्ष की खोखल में जाकर यह बात कह आता। एक बार उधर से एक नट मण्डली निकली जो गाना बज़ाना करती थी। वह उस खोखल वाले वृक्ष के नीचे विश्राम हेतु बैठ गए। उन्होंने देखा कि यह वृक्ष पोला है इसके ढोलक, नगारा, गिटार सितार बनाई जा सकती है। बस वे वह वृक्ष काटकर ले गये, वाद्य यंत्र बनाये और राजा के यहाँ पहुँचकर गाना बजाना शुरू किया। राजा सुन रहा था। जैसे ही उन्होंने हारमोनियम बजाना शुरू किया, राजा को सुनाई दिया– राजा का न–न बकरे जिसा। इतने में नगाड़ा बजने लगा। उसमें से ऐसी आवाज आने लगी कि तुको किसने कहा अर्थात् तुझको किसने कहा। तब झालर की आवाज आई झननन मुझे भैरीया नांई ने कहा, मुझे भैरीया नाई ने कहा। राजा ने ज्योंही सुना। भैरीया नाई पर गुस्सा

आ गया। यद्यपि सितार या नगाड़े आदि से ऐसे शब्द निकल रहे थे या नहीं। यह बात अलग है। पर राजा को उन वाद्य यन्त्रों की आवाज में ऐसा ही सुनाई देने लगा। उसने सोचा मैंने नाई को इतना मना कर दिया। फिर भी उसने आखिर बात कह ही दी। मेरे से गोपनीयता की बहुत सारी सोने की मोहरें भी ले ली और बात भी नहीं पचा पाया। सच बात है– मनुष्याणां नायितोधूर्तः ! मनुष्यों में नाई धूर्त होता है। मैं उसे छोडूंगा नहीं। बुलाओ उसे इसी वक्त। बुलाया गया, भैरीया नाई को। राजा ने रोष में कहा– आखिर बात कह दी ना ? भैरीया बोला– मैंने तो किसी को कुछ नहीं कहा।

राजा बोला– कैसे नहीं कहा। सुन ये तेरे बाप क्या बोलते हैं। सितार वापस बजाया जाने लगा। उन्हें सुनकर भैरीया ने राजा के पैर पकड़ लिये। उसने कहा–राजन् ! आप तारो चाहे मारो। मैंने और तो किसी को कुछ नहीं कहा। केवल पेड़ के खोखल में कभी–कभी बोल देता था। खोज करने पर पता चला कि उसी वृक्ष के ये सब यंत्र बने हैं। फिर भी यह जरूरी नहीं कि वे ही शब्द ये बोल रहे हैं। यह तो जैसा मन में होता है वैसा उसको सुनाई देता है। अतः भैरीया ने कहा राजन् ! आप कुछ न बोले तो किसी को कुछ पता नहीं चलेगा। यह बात आप मैं ही जानता हूँ और कोई नहीं जानता है। यदि आपने इस बात को कह दिया तो ज्यादा प्रचार होगा और यह बात बाहर फैल जायेगी। अतः आप चुप रहिये। राजा समझ गया इस बात को। वह शान्त हो गया। पर यह बात ध्यान में रखने वाली है कि बात को पचाना बहुत मुश्किल है। कुछ नहीं तो वृक्ष को ही सुनाना शुरू कर दिया।

अतः बात को पचाना बड़ा मुश्किल है। स्त्रियों में गम्भीरता कम होती है। इसीलिए स्त्रियों को आचार्य पद नहीं दिया जाता। स्त्रियों, साध्वियों को केवलज्ञान हो सकता है पर आचार्य पद नहीं दिया जा सकता है। बड़ा कठिन है बात को पचाना। आचार्य को आलोचना सुननी पड़ती है और उन आलोचना के सम्बन्ध में बहुत गंभीरता रखनी पड़ती है। यद्यपि सभी ऐसी स्त्रियाँ नहीं होती है। बहुत गम्भीर भी होती किन्तु कौन उनकी पहचान करे ? क्योंकि केवलज्ञानी तो कोई है नहीं। इसलिए कहते हैं बात को पचाना सीखें, कहाँ कैसे बात करना, किसके विषय में बतलाया है ? तोलकर बोलें। यदि बिना सोचे, बोल दिया तो कहीं पर भी फाल्ट होना शुरू हो जायेगा। इसलिए हमें जो भी बात हो। न तो उसका विरोध करना, न निरोध ही करना पर मन में तोलकर संशोधन पूर्वक नपे तुले शब्दों में किसी भी बात को रखना। अपने

मन वचन पर कंट्रोल रखकर चलना सीखें। जिससे कैसी भी परिस्थिति आए, अपनी जिन्दगी में कभी भी फाल्ट नहीं होगा। प्रभु महावीर ने कहा है कि अपनी जिन्दगी को संवारने वाला और बिगाड़ने वाला तूं ही है तो वह अपनी जिन्दगी को सजाये, संवारे। इस विषय में सुनकर जरा चिन्तन करें।

एक बार बादशाह ने अपने लोगों की परीक्षा लेना चाहा। इसके लिए एक दिन सभा में उन्होंने एक छोटी चादर रखी और कहा मैं सोता हूँ। जो भी आदमी मुझे यह चादर ओढ़ा देगा, वह बुद्धिमान माना जाएगा। उसे वजीर बनाएंगे। शर्त यह है कि मेरे सारे अंग ढ़ंक जाने चाहिये। सभी लोगों ने चादर ओढ़ाने का प्रयत्न किया। किन्तु उससे तो राजा का आधा शरीर भी ढक न पाये। सोचने लगे की कैसे क्या किया जाय। इतने में बीरबल भी आ गया। बीरबल से भी यही बात कही गई। तब वह कुछ कहने एवं करने से पहले सोचने लगा कि कैसे क्या किया जाय ? मन में विचार किया बादशाह कोई बच्चा तो है नहीं जो हाथ–पांव पकड़ कर अन्दर कर दिया जाय और चादर ओढ़ा दी जाय पर बादशाह के लिए कैसे क्या किया जाय ? उसने एक कहावत कहना शुरू किया–

"ते ते पाँव पसारिये, जेती लम्बी सौर"

बादशाह समझ गये कि बीरबल क्या कहना चाह रहा है। उन्होंने अपने पाँव समेटे और सिर को भी नीचे किया वे संकुचित हो गये। बीरबल ने चादर औढा दी। बादशाह खुश हुए बोले–देखो, जो काम तुम सब नहीं कर सके वह बीरबल ने कर दिया। बीरबल ने मुझे एक कहावत याद दिलाई। आपको भी आती है पर बोलने का तरीका होना चाहिए। बीरबल ने उसका प्रयोग समझकर किया। इसलिए वह छोटी सी शॉल से भी बादशाह को ढकने में सफल हो गया। बात बोलने का कोई महत्त्व नहीं है। महत्त्वपूर्ण है तोलकर बोलना। असमीक्षित तो पशु भी बोल जाते हैं। पर कौन सुनता है उनकी। उसी प्रकार अनर्गल वार्तालाप करने वालों की कोई नहीं सुनता।

जो व्यक्ति मन में तोलकर नहीं बोलता, कभी–कभी ऐसे वचनों का घातक असर हो जाता है। तलवार का घाव तो उपचार से फिर मिटाया जा सकता है पर बोली का घाव कभी नहीं मिटाया जा सकता है। मन के तरकस से वचन के तीर सोच समझकर निकालिये। एक बार कोई वचन का तीर निकल गया तो लाखों प्रयास करने पर भी लौटकर आने वाला नहीं है।

महाभारत के युद्ध की मूल जड़ द्रौपदी का असमीक्षित वचन बतलाए जाते हैं। जब पाण्डवों ने विशिष्ट शिल्प से युक्त महल बनवाया। तब उसे दिखलाने के लिए भाई होने के नाते दुर्योधन को भी बुलाया। दुर्योधन को महल की कला निपुणता की इतनी जानकारी नहीं थी। वह गया, देखते–देखते एक स्थान पर जहाँ द्वार नहीं था, वहाँ उसे द्वार दिखलाई देने लगा तो वह अन्दर प्रवेश पाने के लिए ज्योंही बढ़ा उसका सिर टकराया। बेचारा सर मलता हुआ पीछे हटा और जहाँ पर द्वार था उसे वहाँ पर दिवाल दिखाई देती, वह आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं था। पर जब पाण्डव बढ़ गये तब वह बढ़ पाया। खैर कुछ आगे बढ़े तो जिस फर्श पर पानी नहीं था, वहाँ पर पानी दिखने लगा। तो वह अपनी धोती ऊपर करके चलने लगा। जब उन्हें बतलाया कि यहाँ पानी नहीं है। तब समझ में आया। उसे अपनी ना समझी पर बहुत तरस आया और इस बार समझदारी के साथ चलने का निर्णय लिया। आगे चलने पर उसे स्पष्ट रूप से फर्श ही दिखलाई दे रही थी पर हकीकत में वहाँ पानी था। जल्दी–जल्दी जाने से वह उस पानी के होज में गिर गया। उसे देख कर सबके हंसी के फव्वारे छूट पड़े। ठीक उसी वक्त द्रौपदी के मुंह से निकल गया कि अंधे के बेटे अंधे ही होते हैं।

दुर्योधन को भारी हीनता व सभी के सामने शर्मीन्दगी महसूस हुई। उसी वक्त द्रौपदी का वाक्य भी तीर की तरह चुभ गया। महाभारत युद्ध के लिए द्रौपदी के ये शब्द ही नींव के रूप में काम किये। इसलिए शब्दों का प्रयोग सोच समझकर पूर्ण समीक्षा के साथ करना चाहिये। गलती से यदि कोई गलत शब्द भी निकल जाय तो संबंधित व्यक्ति से वैर बढ़ाने की अपेक्षा तुरन्त अपना शब्द वापस लेकर क्षमायाचना के साथ सुधार कर लेना ज्यादा अच्छा है।

वचन का सही प्रयोग सबके साथ प्रयोक्ता को जोड़ता है और वचन का दुष्प्रयोग स्नेह पूर्ण संबंधों को भी तोड़ता है।

अतः वचनों को तोलना जरूरी है।



स्वतंत्रता को समझें

ब्रह्मज्ञान की सीढ़ियों पर कोई–कोई विरला चढ़े।
जो चढ़ जाए सीढ़ियां, चौरासी लाख उसका कटे।।टेर।।

वीतराग प्रभु महावीर ने ठाणांग के 10 वें ठाणे में धर्म की व्याख्या करते हुए बतलाया है–

दसविहेधम्मे पण्णत्ते गामधम्मे, णयर धम्मे, रट्ठधम्मे, पासंड धम्मे कुलधम्मे, गणधम्मे, संघ धम्मे, सुयधम्मे, चरित्त धम्मे, अत्थिकाय धम्मे।

इस प्रकार दस प्रकार का धर्म बतलाया गया है। ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्रधर्म, पासंडधर्म, कुलधर्म, गण धर्म, संघ धर्म, अस्तिकाय धर्म।

इन दस धर्मों में पहला धर्म ग्रामधर्म। ग्राम से नगर बनते हैं। गावों से इकट्ठे होकर नगर में आते हैं। नगरों के मूल गांव है। जंगली व्यक्तियों का समूह गांव बनते हैं। दृष्टि से सृष्टि में आता है तब सामूहिक व्याख्या हो पाती है। रहन सहन आदि में गांव की सुव्यवस्था आवश्यक है।

लोग कहते हैं परमात्मा की भक्ति करो, सुखी हो जाओगे। परमात्मा की भक्ति के लिए माहौल होना आवश्यक है। जब तक वायुमण्डल अच्छा नहीं होता है, तब तक भक्ति नहीं हो सकती। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चारों ही भक्ति के लिये अनुकूल होना आवश्यक है। किसी चीज की उपयोगिता को सफल बनाने में इन चारों की आवश्यकता है।

आप बीज बो रहे हैं तो देखना है कि बीज सही है या नहीं। उसके बाद क्षेत्र देखना कि जहाँ हम बीज बो रहे हैं वह भूमि बंजर तो नहीं है। उसके बाद काल देखना। इस बीज को बोने का यह समय है या नहीं ? यदि असमय में बीज बोया तो वह सही ढंग से खड़ा नहीं होगा। ये सब देखने के बाद बीज बोया जाता है। फिर देखा जाता है कि सींचने वाले के अध्यवसाय कैसे हैं। यदि वह शुद्ध भावों से नहीं सींच रहा है तो बढ़िया होकर भी फसल अच्छी नहीं हो पायेगी।

वैज्ञानिक वेकेस्टर ने केकट्स नामक वनस्पति जिसमें केवल कांटे ही आते हैं उसे बड़े प्रेम से प्रतिदिन पानी ही पिलाया और सींचते वक्त उसके भाव रहते थे कि इसमें कांटे न आये तो पहली बार उस वनस्पति में कांटे नहीं

आये। उसने सभी को यह दिखला दिया कि विचारों का कितना जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है।

वैज्ञानिक सिरोव ने दूसरी बात सिद्ध की। वह यह है कि यदि आपको गुस्सा आ रहा है तो पड़ौसी को भी आयेगा। यदि आप शान्त हैं और पड़ौसी को गुस्सा आ रहा है तो आपको भी आयेगा। ऐसा संभव है। जैसे पड़ौसी के घर से फूल की सुगन्ध व लहसुन के बघार की दुर्गन्ध आती है, वैसे ही क्रोध के कण अहंकार के कण निकल–निकलकर आपसे टकराकर आपको भी क्रोधी व अभिमानी बना रहे हैं। यह वैज्ञानिकों ने तो अब सिद्ध किया है पर भगवान महावीर ने तो दशवैकालिक सूत्र में बतलाया कि– "मिउंपिचण्डं पकरेंति सीसा" अर्थात् शांत गुरु को भी बार–बार क्रोध करके शिष्य चण्ड बना देता है। बार–बार के सम्पर्क से ऐसा होता है। घर में यदि पत्नी ऐसी है तो बार–बार के सम्पर्क से सामने वाले का जिगर कठोर न हो तो वह प्रभावित जरूर हो जाएगा।

ग्राम के लोगों की कैसी मेण्टीलीटी (Mentality) है यह देख कर ही ग्राम धर्म बनाया जाता है। फिर नगर धर्म, नगर की व्यवस्था सुव्यवस्था हो तो नगर धर्म का पालन हो सकता है। यदि शहर की व्यवस्था सही नहीं हो तो आप उस नियम (धर्म) का पालन नहीं कर सकेंगे, व्यवस्था सही होने पर ही कर सकेंगे। आपको उपवास करना है और यदि राष्ट्र में नियम हो जाये कि यह भूखमरी नहीं चलेगी क्योंकि इससे अराजकता फैलती है तो क्या आप उपवास के नियम का पालन कर सकेंगे। एक गुरु के शिष्यों के समुदाय को कुल व बहुत से गुरुओं के शिष्यों के समुदाय को गण कहते हैं और बहुत से गणों का समुदाय संघ कहलाता है। ये तीनों ठीक हो तो श्रुत व चारित्र धर्म का पालन कर सकेंगे तभी अस्तिकाय धर्म को भी समझ सकेंगे। तभी सही रूप से ठहरने, खड़े रहने अवगाहन करने रूप से व्यवस्था जम पायेगी।

जहाँ राष्ट्र के साथ भी जैन धर्म कैसे सहयोग करता है। देखिये 34 अस्वाध्याय के नियमों में आया है कि जब राजा मर जाये तो शास्त्र के पाठ का उच्चारण नहीं करें। जैसे सरकारी झण्डे झुक जाते हैं, पर आप कहाँ सहयोग करते हैं ? एक घण्टा भी व्यापार बंद रखना मुश्किल है, पर जैनधर्म कितना सहयोग करता है ? जब तक नये राजा की व्यवस्था नहीं हो जाये तब तक स्वाध्याय नहीं करना। कहने का मतलब है जब तक वायुमण्डल सही नहीं हो ज़ाय तब तक स्वाध्याय बंद रहती है। आज 50 वर्ष स्वतन्त्रता, स्वर्ण

जयन्ती के हो गये। पर हम देश की आजादी से कितने जुड़ें ? सैकड़ों वर्षों की परतन्त्रता की आदत छूटी नहीं। अरे बन्धन तो बन्धन ही है चाहे वह सोने का हो या लोहे का। जहाँ एक बार इन्दिरा गाँधी को बन्द किया गया, नजर कैद। वहाँ सब सुविधा पर है तो वो भी बन्धन ही। यद्यपि कई दृष्टियों से अंग्रेजी शासन की कई व्यवस्थाएं सही थी पर दमन भी जबर्दस्त था। कलकत्ता का हावड़ा ब्रीज अंग्रेजों ने बनाया, जो आज तक सुरक्षित है और यदि आज भारत बनाएं ब्रीज तो बनाते ही कई बार भयंकर पानी का जोर हो तो टूट जाता है। कई ऐसी चीजें देश को निर्देश दे रही है। पर भयंकर दमन के कारण उसका मुकाबला करने के लिये आखिर देश के जवान खड़े हो ही गये। अच्छा काम करने के लिए दूसरों का मुंह मत ताको। आदमी पैसा कमाने में तो अकेला दौड़ लगाता है। अरे मुझे अकेले आगे बढ़ना है। गांधी जी अकेले आगे बढ़े थे। बाद में मुकाबले के लिए बहुत बड़ा कारवां साथ हो गया। कई बार जैल भी गए फिर भी अपनी यात्रा अच्छी तरह से तय करी। जिन शहीदों ने देश की आजादी के लिये प्राण दे दिये और आज दो पैसे के पीछे व्यक्ति राष्ट्र को धोखा दे देता है। लेकिन स्वतन्त्रता के प्रयास के समय जब अरविन्द घोष को जेल में डाल दिया तब स्वतन्त्रता सेनानी अरविन्द घोष पर केस चल रहा था। वे जेल में थे। उस समय वकील चितरंजन दास उनकी तरफ से लड़ रहे थे फ्री में। बराबर पेशियाँ चल रही थी। इधर देश के लिए उन्होंने किसी से दो लाख का कर्ज भी ले रखा था। वह सारा पैसा देश सेवा में लग गया। इधर पैसा मांगने वाला बार बार आकर तकाजा करने लगा। तब उन्होंने कहा–भाई दे दूंगा, अपना सोना आदि बेचकर। किन्तु अभी मैं एक केश में फंसा हूँ जो कि महत्त्वपूर्ण है। कर्जदार ने पूछा कौनसा केश ? तब उसने बतलाया– अरविन्द घोष का। इधर एक व्यक्ति और आया, बोला 5 लाख रुपये ले लीजिये और मेरा यह केस आप लड़िये। उन्होंने कहा– मेरे पास इस समय एक महत्त्वपूर्ण केस है। अरविन्द घोष को जेल से निकालना। इस महत्त्वपूर्ण केस के सामने तुम्हारा केस महत्त्वपूर्ण नहीं है। 5 लाख रुपया कोई मायना नहीं रखता। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है अरविन्द घोष की जिन्दगी। जो देश के लिए जूझ रहे हैं। मैं दूसरा केस लेकर अपने दिमाग को डायवर्ट नहीं करना चाहता हूँ।

यह सुनकर दो लाख मांगने वाला व्यक्ति सोचने लगा– अहो ! यह पांच लाख के लोभ में भी नहीं आया कितना बड़ा प्रोफिट (Profit) छोड़ रहा

है। तुरन्त उसके भी विचार बदले और बुक सामने रख दी कि आगे से कभी 2 लाख रुपया नहीं मागूंगा और मैं स्वयं इस स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान दूंगा। आपको जितने पैसे चाहिये उतने और ले लीजिये।

बन्धुओं ! कई लोग कहते हैं कि ये जैनी कायर हैं वे कुछ नहीं कर सकते। लगता है उन व्यक्तियों ने जैन धर्म को समझा ही नहीं है। बिना कारण जान बूझकर निरपराधी जीव को नहीं मारना, यह जैन धर्म कहता है। जैन धर्म में जैन साधुओं को तो पूर्ण अहिंसक बतलाया है। वह छोटे से छोटे जीव की हिंसा नहीं करता। पर जैन श्रावकों को आक्रान्त का प्रतिकार करने की छूट दी है। वह अन्याय का प्रतिकार कर सकता है। चेड़ा महाराज ने अन्याय का प्रतिकार करने के लिए तो अपने हाथों से ही अपने 10 दोहितों को मारा था। जबकि रक्षा दो की करनी थी। जिस समय महाशिला एवं रथमूसल संग्राम हुआ। उस समय तो यह भी स्पष्ट हो रहा था कि युद्ध में चेड़ा महाराज की जीत असंभव है। फिर भी वे लड़े वीर गति को प्राप्त हुए। इसलिए कि अन्याय को सहकर जीना, जैन धर्म नहीं सिखाता। इससे अच्छा सामना किया जाय।

भगवती सूत्र में बताया गया कि चेड़ा महाराज के दो दिन के युद्ध में 1 करोड़ 80 लाख आदमी मरे। पर आज तो शायद गत वर्ल्डवार (World War) में भी इतना घमासान नहीं हुआ। उतना घमासान उन दो दिनों के युद्ध में हो गया। चेड़ा राजा 12 व्रतधारी श्रावक थे पर इतने युद्ध के बावजूद भी उनके एक भी व्रत में दोष नहीं लगा, यह है जैन धर्म की अहिंसा।

अरे देखिये गांधी जी ने जैनधर्म को कैसे समझा ? उन्होंने विदेश जाते समय बेचरदास जी महाराज से त्याग किये थे– मांस, अण्डा, शराब व पर–स्त्री का सेवन नहीं करूंगा। विदेश में उन्हें कई जगह समस्या आने लगी, फिर भी वे त्याग के नियम के पक्के रहे। तो उनका विलपावर (Will Power) स्ट्रोंग बना। यह उनके जीवन का फाउण्डेशन बन गया कि मैं अपने संकल्प पर दृढ़ रहूंगा। तभी यह देश स्वतन्त्र हो सकता है। यह शैली उन्हें बेचरदास जी महाराज से मिली।

इधर सुभाषचन्द बोस को भी कई झटके खाने पड़े, उन्हें जेल में बन्द भी कर दिया गया। लोगों में आन्दोलन हो गया कि हर हाल में उन्हें बाहर निकालना है। इधर अंग्रेजों ने सोचा इसे बाहर निकाला तो मुश्किल और भीतर रखना भी मुश्किल। आखिर उन्होंने यह निर्णय लिया कि इसे बाहर

निकालकर विदेश भेज दें। वहाँ इनका इलाज करके बुलवा लेंगे। लेकिन जिस जहाज में इन्हें भेजने का है उसके बीच भारत का एक बन्दरगाह है वहाँ यह जहाज नहीं रोकना क्योंकि वहाँ फिर लोग मिलेंगे भीड़ इकट्टीं हो जायेगी। पर जब यह बात सुभाष चन्द बोस को मालूम पड़ी कि अमुक बन्दरगाह पर जहाज नहीं रूकेगा तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया तब मुझे अपना इलाज भी नहीं करवाना है। जो प्रशासन मुझे मेरे देशवासियों से न मिलने दे, मुझे उसका इलाज भी नहीं लेना। मैं मर गया तो क्या, पीछे करोड़ों सुभाष चन्द बोस पैदा हो जाएंगे। आजादी के दिवाने व दृढ़ संकल्प देख, उन्हें विदेश भेजने का कार्यक्रम स्थगित कर सरकार को बिना किसी शर्त उन्हें मुक्त करना पड़ा। यह है राष्ट्र पर कुर्बानी। पर आज तो देश को ही स्वयं के लिए कुर्बान किया जा रहा है। बेईमानी करना, दो नम्बर का पैसा कमाना आदि। आज तो मजदूर प्रतिदिन 50 रुपये दहाड़ी लेता है। उसे कह दिया जाय कि यह मिट्टी इधर से उधर डालना है तो वह मुर्दे की तरह उठकर धीरे–धीरे डालता है। यदि उसे यह कह दिया जाय तो इस मिट्टी को डालने के लिए तुम्हें कुल 500 रुपये मिलेंगे चाहे कितने भी दिनों में डालो तो वह कितने दिन लगायेगा ? एक ही दिन में डाल देगा। यह मजदूर में ही क्या सब जगह ज्यादातर बेईमानी घुस गई है और तो और शिक्षा में भी मिलावट घुस गई है।

एक बार एक सांसद किसी स्कूल के दीक्षान्त समारोह में डिग्री देने गये तो सोचा कि इतने बच्चे हैं डिग्री दे रहा हूँ जो जरा इनका परीक्षण तो कर लूं ये कितने योग्य हैं ? उन्होंने एक प्रश्न पूछा– बताइये जनक का धनुष किसने तोड़ा ? सभी बच्चे चुप हो गए। विचार में पड़ गए और नीची गर्दन कर जमीन कुरेदने लगे ?

सांसद ने एक बच्चे को खड़ा किया। बोलो– किसने तोड़ा जनक का धनुष ? लड़का– मुझे नहीं मालूम, बस मैंने नहीं तोड़ा, इतना जानता हूँ।

तब सांसद ने टीचर की ओर मुखातिब होकर कहा– इसे इतना भी नहीं मालूम की धनुष किसने तोड़ा ? मास्टर बोला– सर ! यह बच्चा तो बहुत सीधा सरल है। इसने नहीं तोड़ा होगा यदि तोड़ता तो कह देता। किसी दूसरे बच्चे ने तोड़ा होगा ? सांसद को गुस्सा आ गया सोचा यहाँ तो टीचर को भी मालूम नहीं कि धनुष किसने तोड़ा है। तब सांसद ने प्रिन्सीपल से पूछा– तब प्रिन्सीपल कहने लगा– बच्चे बड़े शैतान होते हैं आजकल के, किसी ने तोड़ दिया होगा हम पता लगायेंगे। कितने धनुष स्कूल में थे और वह धनुष किसने तोड़ा ?

है। तुरन्त उसके भी विचार बदले और बुक सामने रख दी कि आगे से कभी 2 लाख रुपया नहीं मागूंगा और मैं स्वयं इस स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान दूंगा। आपको जितने पैसे चाहिये उतने और ले लीजिये।

बन्धुओं ! कई लोग कहते हैं कि ये जैनी कायर हैं वे कुछ नहीं कर सकते। लगता है उन व्यक्तियों ने जैन धर्म को समझा ही नहीं है। बिना कारण जान बूझकर निरपराधी जीव को नहीं मारना, यह जैन धर्म कहता है। जैन धर्म में जैन साधुओं को तो पूर्ण अहिंसक बतलाया है। वह छोटे से छोटे जीव की हिंसा नहीं करता। पर जैन श्रावकों को आक्रान्त का प्रतिकार करने की छूट दी है। वह अन्याय का प्रतिकार कर सकता है। चेड़ा महाराज ने अन्याय का प्रतिकार करने के लिए तो अपने हाथों से ही अपने 10 दोहितों को मारा था। जबकि रक्षा दो की करनी थी। जिस समय महाशिला एवं रथमूसल संग्राम हुआ। उस समय तो यह भी स्पष्ट हो रहा था कि युद्ध में चेड़ा महाराज की जीत असंभव है। फिर भी वे लड़े वीर गति को प्राप्त हुए। इसलिए कि अन्याय को सहकर जीना, जैन धर्म नहीं सिखाता। इससे अच्छा सामना किया जाय।

भगवती सूत्र में बताया गया कि चेड़ा महाराज के दो दिन के युद्ध में 1 करोड़ 80 लाख आदमी मरे। पर आज तो शायद गत वर्डवार (World War) में भी इतना घमासान नहीं हुआ। उतना घमासान उन दो दिनों के युद्ध में हो गया। चेड़ा राजा 12 व्रतधारी श्रावक थे पर इतने युद्ध के बावजूद भी उनके एक भी व्रत में दोष नहीं लगा, यह है जैन धर्म की अहिंसा।

अरे देखिये गांधी जी ने जैनधर्म को कैसे समझा ? उन्होंने विदेश जाते समय बेचरदास जी महाराज से त्याग किये थे– मांस, अण्डा, शराब व पर-स्त्री का सेवन नहीं करूंगा। विदेश में उन्हें कई जगह समस्या आने लगी, फिर भी वे त्याग के नियम के पक्के रहे। तो उनका विलपावर (Will Power) स्ट्रोंग बना। यह उनके जीवन का फाउण्डेशन बन गया कि मैं अपने संकल्प पर दृढ़ रहूंगा। तभी यह देश स्वतन्त्र हो सकता है। यह शैली उन्हें बेचरदास जी महाराज से मिली।

इधर सुभाषचन्द बोस को भी कई झटके खाने पड़े, उन्हें जेल में बन्द भी कर दिया गया। लोगों में आन्दोलन हो गया कि हर हाल में उन्हें बाहर निकालना है। इधर अंग्रेजों ने सोचा इसे बाहर निकाला तो मुश्किल और भीतर रखना भी मुश्किल। आखिर उन्होंने यह निर्णय लिया कि इसे बाहर

निकालकर विदेश भेज दें। वहाँ इनका इलाज करके बुलवा लेंगे। लेकिन जिस जहाज में इन्हें भेजने का है उसके बीच भारत का एक बन्दरगाह है वहाँ यह जहाज नहीं रोकना क्योंकि वहाँ फिर लोग मिलेंगे भीड़ इकट्टी हो जायेगी। पर जब यह बात सुभाष चन्द बोस को मालूम पड़ी कि अमुक बन्दरगाह पर जहाज नहीं रूकेगा तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया तब मुझे अपना इलाज भी नहीं करवाना है। जो प्रशासन मुझे मेरे देशवासियों से न मिलने दे, मुझे उसका इलाज भी नहीं लेना। मैं मर गया तो क्या, पीछे करोड़ों सुभाष चन्द बोस पैदा हो जाएंगे। आजादी के दिवाने व दृढ़ संकल्प देख, उन्हें विदेश भेजने का कार्यक्रम स्थगित कर सरकार को बिना किसी शर्त उन्हें मुक्त करना पड़ा। यह है राष्ट्र पर कुर्बानी। पर आज तो देश को ही स्वयं के लिए कुर्बान किया जा रहा है। बेईमानी करना, दो नम्बर का पैसा कमाना आदि। आज तो मजदूर प्रतिदिन 50 रुपये दहाड़ी लेता है। उसे कह दिया जाय कि यह मिट्टी इधर से उधर डालना है तो वह मुर्दे की तरह उठकर धीरे–धीरे डालता है। यदि उसे यह कह दिया जाय तो इस मिट्टी को डालने के लिए तुम्हें कुल 500 रुपये मिलेंगे चाहे कितने भी दिनों में डालो तो वह कितने दिन लगायेगा ? एक ही दिन में डाल देगा। यह मजदूर में ही क्या सब जगह ज्यादातर बेईमानी घुस गई है और तो और शिक्षा में भी मिलावट घुस गई है।

एक बार एक सांसद किसी स्कूल के दीक्षान्त समारोह में डिग्री देने गये तो सोचा कि इतने बच्चे हैं डिग्री दे रहा हूँ जो जरा इनका परीक्षण तो कर लूं ये कितने योग्य हैं ? उन्होंने एक प्रश्न पूछा– बताइये जनक का धनुष किसने तोड़ा ? सभी बच्चे चुप हो गए। विचार में पड़ गए और नीची गर्दन कर जमीन कुरेदने लगे ?

सांसद ने एक बच्चे को खड़ा किया। बोलो– किसने तोड़ा जनक का धनुष ? लड़का– मुझे नहीं मालूम, बस मैंने नहीं तोड़ा, इतना जानता हूँ।

तब सांसद ने टीचर की ओर मुखातिब होकर कहा– इसे इतना भी नहीं मालूम की धनुष किसने तोड़ा ? मास्टर बोला– सर ! यह बच्चा तो बहुत सीधा सरल है। इसने नहीं तोड़ा होगा यदि तोड़ता तो कह देता। किसी दूसरे बच्चे ने तोड़ा होगा ? सांसद को गुस्सा आ गया सोचा यहाँ तो टीचर को भी मालूम नहीं कि धनुष किसने तोड़ा है। तब सांसद ने प्रिन्सीपल से पूछा– तब प्रिन्सीपल कहने लगा– बच्चे बड़े शैतान होते हैं आजकल के, किसी ने तोड़ दिया होगा हम पता लगायेंगे। कितने धनुष स्कूल में थे और वह धनुष किसने तोड़ा ?

तब सांसद ने माथा ठोक लिया। उन्हें बड़ा क्रोध आ रहा था आज की शिक्षा पर– कैसी अराजकता फैल गई। सांसद वहाँ से निकलकर शिक्षा मंत्री के पास पहुँचा और उसने शिकायत की तथा स्कूलों की हालत बतलाई। तब शिक्षा मंत्री प्रत्युतर में बोले– इतने चिल्ला क्यों रहे हो ? शांत रहो अभी बजट पास होने वाला है। मैं इस बार ज्यादा पैसा दिलवा दूंगा। तब धनुष ठीक करवा लेना। इतनी सी बात के लिए हो हल्ला नहीं मचाना। ये देखिये ऊपर से नीचे वालों तक के हाल।

आज पुलिस व्यवस्थाओं के भी ऐसे ही हाल हैं। एक चुटकला ही लीजिये। एक बार भारतीय, अमेरिकन व जापानी इन तीनों व्यक्तियों में बात हो रही थी चोरी होने के कितने समय बाद चोर का पता लगता है। जापानी कहता है। हमारे यहाँ चोरी होने पर 24 घंटे के भीतर पुलिस चोर का पता लगा लेती है। तब अमेरिकन कहता है– हमारी पुलिस 12 घण्टे में चोर का पता लगा लेती है। तब भारतीय कहता है कि हमारे यहाँ की पुलिस तो इतनी एडवांस (Advance) है कि उसे 24 घंटे पहले ही पता होता है कि चोरी कहाँ होने वाली है क्योंकि ये बस (चोर व पुलिस) मिले रहते हैं। चोरी हो जाएगी फिर डण्डा पटकती आएगी। कहने का मतलब है आज भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार है। घोटाले ही घोटाले चल रहे हैं। पहले हर्षद घोटाला काण्ड, फिर घास का, फोन का, शराब का। घी के चर्बी काण्ड में जैन हैं तो C.R.B. घोटाले में भी जैन हैं।

आज गांधी होते तो शायद माथा ठोक कर बैठ जाते ? सोचते कि यह कैसा स्वतन्त्रता का उपयोग किया जा रहा है। अरे ! उन्होंने कितना कष्ट सहा तब कहीं जाकर यह देश स्वतन्त्र हुआ ? देश के बंटवारे के समय कितना झगड़ा हुआ। आज देश को स्वतन्त्र हुए 50 वर्ष हो गए हैं। लेकिन मानसिक रूप से आज भी परतन्त्र है। विदेशी चीजों से कितना हमें आकर्षण है। मेड इन जापान, मेड इन चाइना चीज पर लिखा हो तो हम उसे खरीदने में गौरव की अनुभूति करते हैं। अहो ! हम कितने स्टेण्डर्ड (Standard) हैं। जितना हमें फॉरेन की चीजों से आकर्षण है, उतना इंडिया की चीजों से नहीं। बाहर की चीज ज्यादा पैसा देकर भी हम खरीद लेते हैं।

एक भाई फॉरेन गया वहाँ से कई चीजें लाया, उसमें एक शर्ट का कपड़ा भी था। घर आकर देखा तो उस पर लिखा था मेड इन इण्डिया। अरे लाया वहाँ से तो क्या हुआ, वह एक्सपोर्ट यहीं से हुआ है और कितना मूल्य बढ़ाकर पुनः यहाँ एक्सपोर्ट किया गया है।

पूज्य जवाहराचार्य के प्रवचन श्रवण करने हजारों व्यक्ति आते थे। उनमें से कितनों ने विदेशी चीजें काम में लेने के त्याग कर लिए। चमड़े के जूते पहनने छोड़ दिये। खादी पहननी शुरू कर दी। जवाहंराचार्य ने उन श्रोताओं के रगों में स्वतन्त्रता उतार दी। देखिये पाश्चात्य संस्कृति की नकल कर डायनिंग टेबल पर खायेंगे। पिता जी को डेडी भी नहीं इन्सान डेड बोल रहे हैं। डेड किसे कहते है पता होगा ? आपका फोन खराब हो जाता है तो आप बोलते हैं फोन डेड हो गया। इधर आप बोल रहे हैं पापा को डेड। पहले पहले महिलाएं लम्बे लम्बे बाल रखती थी और अब टी.वी. पर जैसी फैशन चली वैसे रख लेती है। स्नो, पाउडर, लिपिस्टिक आदि के द्वारा अपने को सजाने में लगी है पर पता नहीं ये चीजें किससे बनी है।

जिस जलियांवाला बाग आदि में हजारों लोग कुर्बान हो गये। हजारों माताओं के पुत्र स्वाहा हो गये। हजारों ललनाओं का सिन्दूर मिट गया। कितनी आहूतियों के बाद स्वतन्त्र हुए भारत की आज क्या दयनीय स्थिति हो रही है। इस फैशन के गुलामों के कारण भारी विदेशी कम्पनियां यहाँ से पैसे ले जा रही है।

आज से करीब 67 वर्ष पूर्व दिनांक 11.7.31 को आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. ने दिल्ली चातुर्मास की घोषणा की थी और वह चातुर्मास चांदनी चौक में महावीर भवन में हुआ। उस समय का प्रसंग है कि स्वतंत्रता आन्दोलन बड़े जोरों पर था। आजादी के दिवाने जोर शोर से देश को आजाद करने में अपनी शक्ति लगा रहे थे। ब्रिटिश सरकार इस भावना का शक्ति के साथ दमन करने में लगी थी। उन दिवानों को भारी मात्रा में जेल में ठूंसा जा रहा था। जिस समय भारत में एक छोर से दूसरे छोर तक क्रान्ति की लहरें लहरा रही थी। महात्मागांधी के नेतृत्व में कई बार सत्याग्रह के आन्दोलन हो रहे थे तो सुभाष चन्द बोस का "तुम मुझे खून दो मैं तुम्हे आजादी दूंगा" का नारा गूंज रहा था। उस वक्त साधुमार्गी संघ के षष्ठम आचार्य श्री जवाहराचार्य ने देश की स्वतंत्रता पर भारी वजन दिया। उनके प्रवचन भी बड़ी निर्भीकता के साथ देश को आजाद करने के लिए लोगों को जगाने हेतु होने लगे। वे जैन धर्म के आचार्य होकर भी राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए अपनी मर्यादा में होकर भी अपनी पूरी शक्ति के साथ जुट गए। जिस समय लोगों की धारणा थी कि धर्म अलग है, राष्ट्र अलग है। धर्मी व्यक्ति राष्ट्र के पचड़े में नहीं पड़ते। उस समय भगवान महावीर की वाणी को नवीन

परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर आचार्य प्रवर ने अपने साहस व बुद्धिमता एवं अनूठी शैली का दुनियाँ को परिचय दिया। उनका नारा था कि **धर्म की सुरक्षा के पहले राष्ट्र सुरक्षा आवश्यक है।** बस उसके बाद उनके प्रवचन एक के बाद एक राष्ट्रीयता से सने होने लगे। स्वदेशी अभियान, विदेशी बहिष्कार, खेती में अल्पारंभ आदि विभिन्न आयामों के माध्यम से जनता को उद्‌बोधित किया। परिणामस्वरूप जैनधर्म के आचार्य होते हुए भी वे जन जन के आचार्य बन गए। हजारों लोग उनके प्रवचनों का लाभ लेने लगे। आचार्य प्रवर ने राष्ट्रधर्म की व्याख्या में दो धाराओं का सामना किया। एक तो उन परम्परागत लोगों का जिन्हें पहले पहल ऐसी व्यवस्था समझ में नहीं आई। फिर धीरे-धीरे सब समझ गए। दूसरा सामना किया ब्रिटिश सरकार का। जब ब्रिटिश सरकार ने शुद्ध खादी वस्त्रधारी आचार्य श्री जवाहराचार्य के मुख से राष्ट्रीयता से सनी ओजस्विता की वाणी का हजारों लोगों पर जादू सा असर देखा तो उसके कान खड़े हो गए। धर्माचार्य के रूप में यह दूसरा राष्ट्रीय नेता सरकार की आँखों में खटकने लगा। सरकार ने गुप्त रूप से इस आचार्य को भी जेल में डालने हेतु उनके विपरीत तथ्य एकत्रित करने के लिए उनके पीछे घूमने लगे।

जब जैन श्रावकों को यह मालूम हुआ तो वे बड़े भयभीत हुए और आचार्य श्री के पास पहुँच कर निवेदन करने लगे कि आप अपने प्रवचन धर्म तक ही सीमित रखें। राष्ट्रीय बातों के आने से सरकार को सन्देह हो रहा है। कहीं ऐसा न हो कि वह आपको गिरफ्तार करके जेल में डाल दे। जिसके कारण सारे जैन समाज को नीचा देखना पड़े। लोग यह कहें कि जैनियों के आचार्य भी जेल में गए। श्रावकों की इस उहापोह भरी बात का जबाब देते हुए उन्होंने कहा कि मैं अपने कर्त्तव्य को भलीभांति जानता हूँ। मुझे अपने उत्तरदायित्व का भी पूरा भान है। मैं जानता हूँ कि धर्म क्या है। मैं साधु हूँ, अधर्म के मार्ग पर नहीं जा सकता किन्तु परतन्त्रता पाप है। परतन्त्र व्यक्ति ठीक तरह से धर्म की आराधना नहीं कर सकता। मैं अपने व्याख्यान में प्रत्येक बात सोच समझकर मर्यादा के भीतर कर रहा हूँ। इस पर भी राजसत्ता हमें गिरफ्तार करती है तो हमें डरने की क्या जरूरत है। कर्त्तव्य पालन में डर कैसा ? साधु को सभी उपसर्ग व परीषह सहने चाहिये। सभी परिस्थितियों में धर्म का मार्ग मुझे मालूम है। यदि कर्त्तव्य का पालन करते हुए जैन संत समाज का आचार्य गिरफ्तार हो जाता है तो इसमें जैन समाज के लिए किसी प्रकार

के अपमान की बात नहीं है। इसमें तो अत्याचारी का अत्याचार सभी के सामने आ जाता है।

इस प्रकार का निर्भीक उद्‌बोधन हुआ जिसके सामने सभी श्रावक श्रद्धावनत थे। आचार्य प्रवर अपनी उसी निर्भीक शैली में कहते चले गए। उस तेजस्वी शेर को शिकंजे में डालने की ताकत ब्रिटिश सरकार में नहीं थी। ऐसे आचार्य तो कई शताब्दियों में पैदा होते हैं, जिनमें युग की धारा को मोड़ने की ताकत होती है। आचार्य श्री जवाहर ने कहा है– जिसका राष्ट्र सुरक्षित नहीं है उसका धर्म सुरक्षित नहीं है।

यह गोल्डन चांस (Golden Chance) है हमारी 50वीं स्वतन्त्रता की वर्ष गांठ है। पर क्या हाल हो रहे हैं इस स्वतन्त्रता के– केप्सूल में घोड़े की लीद। खाने पीने की चीजों में भी न मालूम क्या–क्या मिलावटें चल रही है। आज सही जनरेशन (Generation) भी तो कहीं मिक्चर (वर्ण शंकर) पैदा हो रही है। जहाँ महिलाएं पति को रिझाने के लिए श्रृंगार करती थी वहाँ आज बाजार के लोगों को दिखाने के लिए श्रृंगार किया जा रहा है। पति के सामने तो चाहे कैसी ही फिरे पर लोगों में अच्छा दिखना चाहिये। माँ–बाप चरित्रहीन हैं तो उनका ब्लड बच्चों में आयेगा और वैसी ही देश की भावी सन्तानें पैदा होगी। भ्रष्टाचारी दुराचारी लोग देश के शीर्षस्थ पर जाकर बैठ जाते हैं पता नहीं कैसे देश का काम चल रहा है। नाव में एक छेद हो तो पूरी नाव डूब जाती है। यहाँ तो पूरी की पूरी नांव में ही छेद हो रहे हैं। फिर भी तैर रही है भारत की नाव। आखिर कैसे ? तो बताया जाता है अग्नि प्रक्षेपास्त्र आ गया है। अणुबम आ गया है, पर इससे नहीं।

भारत कितने ही शस्त्र बनाले पर फिर भी जीत नहीं सकता क्योंकि अन्य देशों के पास अणु बंमों के भारी जखीरे पड़े हैं। उनके सामने भारत के पास कुछ नहीं है। पर एक महत्त्वपूर्ण शक्ति है भारत के पास अहिंसा की। कई शास्त्र तो यहाँ से जर्मन एक्सपोर्ट हो गये है। पर यहाँ तो कई आदमी खुद शास्त्र रूप में बैठे हैं, जो खुद अहिंसा सत्य का पालन करने वाले हैं। कितने ही शास्त्र एक्सपोर्ट कर दो पर ऐसा आदमी इंडिया के अलावा क्या किसी भी देश में हैं ? जो पूर्ण अहिंसा आदि का पालन करता हो। एक बार एक संन्यासी को सिकन्दर ने भारत से अपने देश के लिए एक्सपोर्ट करना चाहा। संन्यासी को मरना मंजूर हो गया पर वह एक्सपोर्ट नहीं हुआ। आज श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज में, प्रतिनिधित्व करने की सीनियरीटि (Seneority) में

आचार्य नानेश हैं। अभी उधर की तरफ जितने भी आचार्य हैं उन सबमें वृद्ध आचार्य प्रवर की दृष्टि से आप ही हैं। भगवान महावीर ने कहा है मेरा शासन 21 हजार वर्ष तक चलेगा और अन्तिम समय तक एक साधु, एक साध्वी, एक श्रावक और एक श्राविका एकाभवतारी होंगे। जिस समय स्व. गणेशाचार्य एवं आचार्य श्री आत्माराम जी म.सा. का स्वर्गवास हो गया था तब इधर स्थानकवासी समाज में कोई भी आचार्य हो ऐसा मुझे ध्यान नहीं है। आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. भी उस समय श्रमण संघ के उपाध्याय पद पर थे। आचार्य श्री के आचार्य बनने के करीब 13 महीने बाद आ. श्री आनन्द ऋषि जी म.सा. को अजमेर में आचार्य पद दिया गया। उससे पहले वे प्रधानमंत्री पद पर थे। इस क्षेत्र में मात्र आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. ही ऐसे थे, स्थानकवासी परम्परा में। जिन्होंने भगवान महावीर के पाट परम्परा की उस कड़ी को 13 माह तक जोड़े रखा।

हमें ऐसे सौभाग्यशाली आचार्य के चरणों में स्वतन्त्रता की गोल्डन जुबली मना रहे हैं तो आज के दिन सब को त्याग करना चाहिये कि कम से कम हम 12 माह तक फॉरेन की चीजें काम में नहीं लेंगे। कम से कम श्रृंगार आदि चीजों को त्याग तो कर ही सकते हैं। राष्ट्र के साथ गद्दारी नहीं करेंगे। जिस कार्य से समूचा राष्ट्र खतरे में पड़ जाय, ऐसा काम नहीं करेंगे। सुई से लेकर मूसल तक इंडिया की कम्पनियां बना रही है। यदि आप उनसे नहीं खरीदेंगे तो सारी कम्पनियां ठप्प हो जाएगी और जो ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भारत में आ रही हैं वे अपना अधिपत्य जमाने लगेगी जिससे धीरे धीरे कहीं पुनः विदेशी शासन नहीं आ जाए। इसलिए हमें समय रहते ही सावधान होना है।

क्योंकि ग्रामधर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म के बाद ही कुल गण और संघ धर्म है अतः पहले राष्ट्र की सुरक्षा करना जरूरी है। इसके लिए सभी को अपनी अपनी क्षमता, योग्यता एवं मर्यादा के साथ चलने का प्रसंग है।

